MAEC-111(N)
समष्टिभावी अर्थशास्त्र

परामर्श–समिति	
प्रोफेसर सत्यकाम	कुलपति–अध्यक्ष
प्रो. सत्यपाल तिवारी	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा–कार्यक्रम संयोजक
श्री विनय कुमार	कुलसचिव–सचिव

विशेषज्ञ समिति		
प्रो. सत्यपाल तिवारी	अध्यक्ष	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ अनिल कुमार यादव	संयोजक	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो.किरन सिंह		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एम.के. सिंह		एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
डॉ. विश्वनाथ कुमार		एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी
डॉ. अनूप कुमार		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक	
डॉ. अनिल कुमार यादव	सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सम्पादक	
डॉ. अनीता त्यागी,	सह आचार्य, विभागाध्यक्ष (अर्थशास्त्र), मानविकी विभाग, एम.जे.पी. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली उत्तर प्रदेश

परिमापक	
डॉ. अनिल कुमार यादव	सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

लेखक मण्डल

लेखक

डॉ. अनिल कुमार यादव — खण्ड–4 इकाई–04, 05
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

डॉ. दिनेश यादव, सह0आ चार्य, अर्थशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
खण्ड–1 इकाई–01,02,03,04,05
खण्ड–2 इकाई–01,02,03,04,05,06
खण्ड–3 इकाई–01,02,03,04,05,06
खण्ड–4 इकाई–01,02,03,06
खण्ड–5 इकाई–01,02,03,04,05,06

मुद्रित– (माह), (वर्ष)
@उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (वर्ष)
ISBN-

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (माह) (वर्ष), (मुद्रक का नाम व पता)

MAEC-111(N)
समष्टिभावी अर्थशास्त्र

खण्ड 01 समष्टि अर्थशास्त्र की अवधारणा एवं राष्ट्रीय आय

इकाई 01 समष्टि अर्थशास्त्र : विकास की सीमाएँ

02 अर्थव्यवस्था का चक्रीय प्रवाह

03 राष्ट्रीय आय : अवधारणाएँ, संरचना एवं मापने की विधियाँ

04 रोजगार : अर्थ एवं बेरोजगारी के प्रकार, क्लासिकी उत्पादन एवं रोजगार का सिद्धान्त– से का बाजार नियम

05 कीन्सोत्तर आय निर्धारण सिद्धान्त : हिक्स एवं IS – LM अवधारणा

खण्ड 02 उपभोग एवं विनियोग

इकाई 01 उपभोग फलन : कीन्स का निरपेक्ष उपभोग सिद्धान्त,संकल्पना

02 आय निर्धारण का कीन्स का सिद्धान्त, बचत, विनियोग एवं आय में सम्बन्ध, सापेक्ष आय डयूसनबेरी
परिकल्पना

03 स्थायी आय परिकल्पना : फ्रीडमैन का उपयोग सिद्धान्त

04 उपभोग का जीवन चक्र परिकल्पना एवं उपभोग को प्रभावित करने वाले गैर आर्थिक कारक

05 विनियोग एवं पूंजी निर्माण का सिद्धान्त : कीन्स का सिद्धान्त

06 गुणक एवं त्वरक का सिद्धान्त

खण्ड 03 आर्थिक विकास के सामान्य सिद्धान्त

इकाई 01 आर्थिक विकास के सिद्धान्त–प्रतिष्ठित सिद्धान्त

02 मार्क्स तथा शुम्पीटर का आर्थिक विकास सिद्धान्त

03 रोस्टोव का सिद्धान्त तथा कीन्स एवं कीन्स पश्चात के सिद्धान्त

04 संवृद्धि मॉडल हैरेड–डोमर

05 नव क्लासिकल मॉडल–कैल्डार रॉबिन्सन

06 तकनीकी परिवर्तन तथा संवृद्धि

खण्ड 04 व्यापार चक्र एवं समष्टिभावी आर्थिक नीतियां

इकाई 01 व्यापार चक्र अवधारणा सिद्धान्त : व्यापार चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त हाट्रे, हेयक एवं शुम्पीटर का सिद्धान्त

02 कीन्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त, काल्डर एवं सैमुएलसन के सिद्धान्त

03 हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त, वास्तविक व्यापार चक्र (RBC)

04 मौद्रिक नीति : अवधारणा, उद्देश्य एवं मौद्रिक नीति के अस्त्र

05 राजकोषीय नीति : अवधारणा, उद्देश्य एवं अस्त्र

06 आन्तरिक एवं वाह्य संतुलन, IS – LM – FE मॉडल

खण्ड 05 कल्याणवादी अर्थशास्त्र

इकाई 01 समाजिक कल्याण के मानक राष्ट्रीय आय में वृद्धि, बेन्थम मानक

02 पेरेटो अनुकूलतम

03 काल्डर – हिक्स ''प्रतिपूरक प्रतिमान''

04 बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन

05 कल्याण का निर्धारण – अधिकता अवस्था –वरदान का बिन्दु

06 सामाजिक कल्याण एवं सामाजार्थिक न्याय के मुद्दे तथा संपोषणीय विकास के प्रश्न

खण्ड–1

समष्टि अर्थशास्त्र की अवधारणा एवं राष्ट्रीय आय

इकाई–01

समष्टि अर्थशास्त्रः विकास की सीमाएं

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता

1.2 समष्टि भावी संतुलन विश्लेषण (स्थैतिक, प्रावैगिक व तटस्थ संतुलन)

1.3 समष्टि अर्थशास्त्र व व्यष्टि अर्थशास्त्र में अंतर

1.4 समष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएँ

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 उपयोगी पुस्तके

1.8 बोध प्रश्न

1.9 वस्तुपरक प्रश्न

समष्टि अर्थशास्त्र–परिचय

अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत उत्पादन, उपभोग, वितरण इत्यादि आर्थिक क्रियाओं सम्बन्धी सिद्धान्तों व व्यवहारों का विश्लेषण करते है। अर्थशास्त्र शब्द संस्कृत शब्द 'अर्थ' जिसका आशय है 'धन' तथा 'शास्त्र' जिसका आशय 'अध्ययन' है, से मिलकर बना है अर्थात् अर्थशास्त्र का आशय 'धन का अध्ययन' है। अर्थशास्त्र के जनक कहे जाने वाले एड्म स्मिथ ने 1776 ई0 में अपनी पुस्तक में अर्थशासत्र को 'धन का विज्ञान' के रूप में परिभाषित किया जिसकी आलोचना प्रो0 पीगू, राविंसन इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने किया।

प्रो0 राविंसन ने अर्थशास्त्र को सीमित दुर्लभ संसाधनों व असीमित मानवीय आवश्यकताओं के मध्य अधिकतम साम्य बिन्दु का विश्लेषण करने वाला विषय माना है।

अर्थशास्त्र की दो शाखाएँ है व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र। जब आर्थिक चरों का व्यक्तिगत स्तर पर संतुलन तथा विश्लेषण करते है तो इसे व्यष्टि अर्थशास्त्र कहते है, जैसे– उपभोक्ता संतुलन, फर्म संतुलन, उपभोक्ता बचत इत्यादि। इसके विपरीत जब सभी आर्थिक चरों अथवा इकाईयों का एक साथ अध्ययन करते है, समष्टि अर्थशास्त्र कहते है जैसे– राष्ट्रीय आय व रोजगार निर्धारण, IS-LM मॉडल विश्लेषण, भुगतान संतुलन विश्लेषण इत्यादि। व्यष्टि तथा समष्टि दोनों शब्दावली का प्रयोग प्रो0 रैगनर फ्रिश द्वारा 1935 में किया गया।

वैश्विक आर्थिक महामंदी (1930) के पूर्व अर्थशास्त्रियों का ध्यान मुख्यतः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण पर केन्द्रित था क्योंकि उनका मानना था कि जो चीज व्यष्टि स्तर पर लागू होता है वही समष्टि स्तर पर भी लागू होगा। क्लासिकल अर्थशास्त्री एड्म स्मिथ, मार्शल, रिकार्डो इत्यादि ने इसी आधार पर रोजगार अथवा राष्ट्रीय आय निर्धारण सिद्धान्त दिया। उनके अनुसार अहस्तक्षेप की नीति, 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' ग्रंथ कौटिल्य (चाणिक्य) द्वारा 321 ठब से 300 ठब के गथ्य लिखा गया 1 पह प्रयत्न ग्रंथ है जो के विभिन्न पहलूयों पर विस्तार से अमारा जाता है। इस प्रकार अर्थशास्त को जनक 'चाणक्य' ही माने जाने चाहिए ।

और मजदूरी तथा ब्याजदर की लोचशीलता के कारण अर्थव्यवस्था सदैव पूर्ण–रोजगार स्तर पर संतुलन में होगी तथा यदि इसमें असंतुलन आयेगी तो वह स्वतः समायोजित हो जायेगी फलतः बेरोजगारी व अधि उत्पादन की स्थिति नही पायी जायेगी। किन्तु 1929 की महामंदी ने क्लासिकल अवधारणा को ध्वस्त कर दिया, फलतः कींस ने उन कारणों की तलाश व पड़ताल की जिसके कारण मंदी अथवा अधि उत्पादन होता है।

कींस ने 1936 में अपनी पुस्तक 'जनरल थिअरी' में इस क्लासिकल मान्यता कि अर्थव्यवस्था सदैव पूर्ण रोजगार पर संतुलन में होगी का खण्डन किया। उनके अनुसार पूर्ण रोजगार एक दुर्लभ प्रतिभाष है जबकि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के पूर्व ही संतुलन बिन्दु आ जाता है। अतः कींस ने समग्र मांग तथा प्रभावी मांग को बढ़ाकर रोजगार स्तर

बढ़ाने का सुझाव दिया है। समग्र मांग बढ़ाने के लिए कींस ने राजकोषीय नीति का समर्थन किया।

अर्थशास्त्र में कींसीय विचार को 'कींसीय क्रांति' कहा गया। किन्तु 1970 के दशक में अल्प विकसित व विकासशील देशों में कींसीय उपचार आर्थिक समस्याओं के समाधान में विफल रहे क्योंकि फलतः कींसीय विचारों की आलोचना करते हुए मीड, रॉविंसन इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने क्लासिकल विचारों में संशोधन करते हुए नव क्लासिकल अवधारणा प्रस्तुत की जिसका समर्थन फिशर, फ्रीडमैन आदि मुद्रावादी अर्थशास्त्री ने भी किया।

समष्टि भावी आर्थिक विश्लेषण के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया को निम्नवत् समझा जा सकता है–

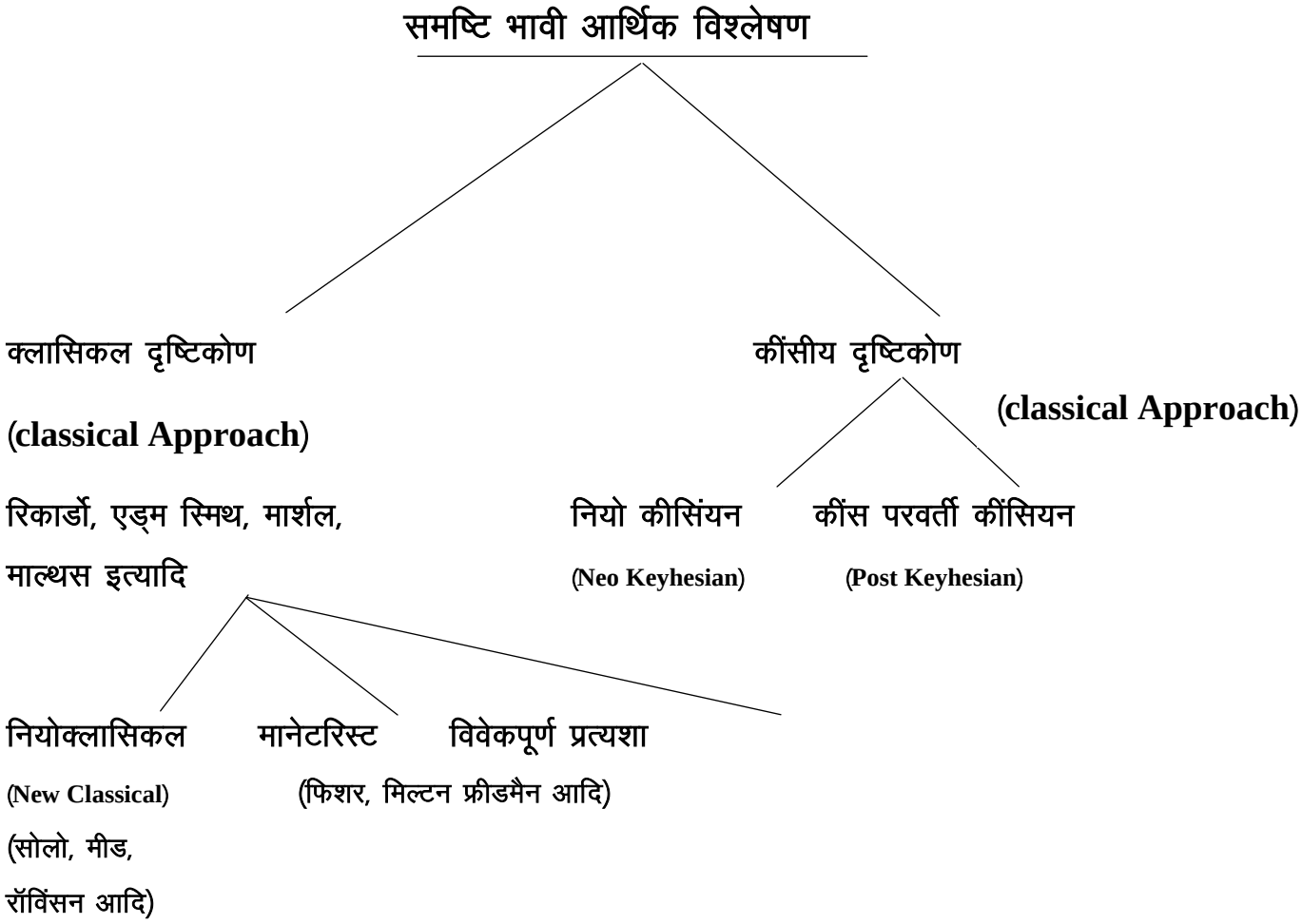

व्याष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र में अंतर

व्यष्टि तथा समष्टि, दोनों अर्थशास्त्र की महत्वपूर्ण अवधारणा है किन्तु दोनों में निम्नवत् मूलभूत अन्तर है–

व्याष्टि अर्थशास्त्र व समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर

➢ 'व्यष्टि' शब्द ग्रीक शब्द 'Micros' से बना है जिसका अर्थ 'सूक्ष्म' अथवा 'छोटा' होता है जबकि 'व्यष्टि' शब्द ग्रीक शब्द 'Macros' से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ–'समग्र' अथवा 'बड़ा' होता है।

➢ व्यष्टि अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ता या फर्म के लिए न्यूनतम लागत पर अधिकतम कल्याण बिन्दु का विश्लेषण करना जबकि समष्टि भावी अर्थशास्त्र का उद्देश्य पूर्ण रोजगार, कीमत स्थिरता, आर्थिक संवृद्धि, भुगतान संतुलन इत्यादि का विश्लेषण करना है।

➢ व्यष्टि अर्थशास्त्र में उपभोक्ता विवेकशील है, अन्य बातें समान रहने पर इत्यादि मान्यताओं के सहारे उपभोक्ता व्यवहार अथवा फर्म संतुलन का अध्ययन करता है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत मजदूरी दर लोचशीलता, ब्याजदर लोचशीलता, सामान्य कीमत स्तर स्थिरता इत्यादि मान्यताओं के सहारे रोजगार व राष्ट्रीय उत्पादन संतुलन का विश्लेषण करता है।

➢ व्यष्टि अर्थशास्त्र, आंशिक संतुलन विश्लेषण पर आधारित है जो एकल उपभोक्ता, एक फर्म, कीमत स्तर इत्यादि का संतुलन विश्लेषण करता है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र समान्य संतुलन विश्लेषण है इसके अन्तर्गत समग्र आर्थिक चरों के साथ मौद्रिक क्षेत्र का वास्तविक क्षेत्र का एक साथ अध्ययन करते है।

➢ व्यष्टि अर्थशास्त्र एक स्थैतिक संतुलन विश्लेषण है जबकि समष्टिभावी अर्थशास्त्र गत्यात्मक संतुलन विश्लेषण है।

समष्टि अर्थशास्त्र अध्ययन का महत्व

समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थशास्त्र के अध्ययन में व्यापक सैद्धांतिक व व्यवहारिक महत्व है जिसे निम्नवत् समझा जा सकता है–

➢ आर्थिक चरों के कार्यकरण को समझने में राष्ट्रीय आय, रोजगार, मौद्रिक व राजकोषीय नीति इत्यादि न केवल एक दूसरे से प्रभावित होते है बल्कि एक–दूसरे को

प्रभावित करते है, अतः इनके मध्य कार्यकरण सम्बन्ध विश्लेषण में समष्टि भावी अर्थशास्त्र अति उपयोगी है।

➢ व्यष्टि अर्थशास्त्र के विपरीत समष्टि अर्थशास्त्र गत्यात्मक विश्लेषण पर आधारित है, ज्ञातव्य हो कि समय के साथ जनसंख्या प्रोद्योगिकी स्तर, राष्ट्रीय आय व कीमत स्तर में परिवर्तन होता है तथा इन परिवर्तनों के अनुरूप उपयुक्त मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति व व्यापारिक नीति इत्यादि के निर्माण में समष्टि अर्थशास्त्र का विशेष महत्व है।

➢ सामान्य बेरोजगारी, समान्य कीमत स्तर व विनिमय स्तर में व्यापक उच्चावचन, समावेशी विकास व वितरणात्मक न्याय इत्यादि के संदर्भ में समष्टि अर्थशास्त्र बेहद महत्वपूर्ण अवधारणा है।

➢ व्यापार चक्र व भुगतान संतुलन को समझने में, समष्टि भावी आर्थिक शाखा व्यापार चक्रों (मंदी और मुद्रा स्फीति), व्यापार घाटा व भुगतान संतुलन संकट को समझने व इनके विरूद्ध उपयुक्त राजकोषीय नीति। जैसे क्षतिपूरक राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति तथा व्यापारिक नीति बनाने में अत्यंत उपयोगी है।

➢ **मौद्रिक समस्याओं को समझने में,** मुद्रा आपूर्ति जनित आर्थिक समस्याओं जैसे– मुद्रा स्फीति, मुद्रा अपस्फीति, मुद्रा अवस्फीति इत्यादि को समझने तथा इनसे उबरने हेतु उपयुक्त राजकोषीय व मौद्रिक रणनीति के निर्माण में समष्टि भावी विश्लेषण महत्वपूर्ण है।

➢ राष्टीय आय की महत्वपूर्ण अवधारणाओं जैसे–सकल घरेलू उत्पाद (GDP) सकल राष्टीय उत्पाद, (GNP), शुद्ध सकल घरेलू उत्पाद इत्यादि को समझने तथा उनकी गणना में समष्टि अर्थशास्त्र ही उपयोगी है।

समष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएँ (Limitation of Macro Economics)

➢ **आर्थिक विरोधाभाष, या संरचनात्मक दोष,** समष्टि भावी अर्थशास्त्र, अर्थव्यवस्था की सभी व्यक्तिगत आर्थिक इकाईयों, चरो की आर्थिक गतिविधियों का जोड़, योग होता है। परन्तु आवश्यक नही जो व्यक्तिगत स्तर पर सही है वही समग्र स्तर पर सही हो इसे निम्नवत् समझा जा सकता है–

(i) बचत सम्बन्धी विरोधाभाष, बचत व्यक्तिगत स्तर पर तो अच्छा होता है किन्तु समग्र स्तर/समष्टि स्तर पर नकारात्मक होता है।

(ii) बैंक जमा समबन्धी, एक व्यक्ति अथवा एक फर्म द्वारा अपनी बैंक जमाओं को निकालना कोई संकट पैदा नहीं करता है जबकि यदि सभी व्यक्ति और फर्म ऐसा करने लगे तो बैंकिंग प्रणाली ध्वस्त हो जायेगी।

(iii) मजदूरी में कटौती तथा रोजगार सम्बन्धी विरोधाभाष, क्लासिकल अर्थशास्त्री सामान्य कीमत स्तर में कटौती द्वारा रोजगार वृद्धि का समर्थन करते है जबकि कींस मानते है कि सामान्य मजदूरी में कटौती व्यय योग्य आय व समग्र मांग को कम कर देगी, जिससे बेरोजगारी में वृद्धि हो जायेगी।

- **विजातीय समूहों के जोड़ की समस्या,** समष्टि अर्थशास्त्र सभी व्यक्तिगत चरो के आर्थिक व्यवहारों का जोड़ होता है, यदि आर्थिक व्यवहार समान हो अथवा समरूप हो, तो आर्थिक क्रियाओं के योग में कोई समस्या नहीं होती हैं किन्तु अर्थव्यवस्था में आर्थिक व्यवहार विजातीय होते है जिनके योग में समस्या आती है जैसेः– राष्ट्रीय आय की गणना में मौद्रिक व गैर मौद्रिक चरों का योग।

उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद समष्टि भावी अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्तों व व्यवहारों को समझने में उपयोगी साधन है।

सारांश

उत्पादन, उपभोग तथा वितरण मनुष्य की मूलभूत आर्थिक क्रियाएँ है ज्ञातव्य हो कि ये उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव सभ्यता। वैचारिक व तकनीकि उन्नति के साथ मनुष्य की आर्थिक चिंतन तथा व्यवहार में भी व्यापक परिवर्तन हुए। 1776 ई0 में एड्म स्मिथ की पुस्तक 'वेल्थ ऑफ नेशन' से अर्थशास्त्र को अलग विषय के रूप में पहचान मिली फलतः इन्हें अर्थशास्त्र का पिता कहा जाता है। एड्म स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस व मार्शल ने समष्टि भावी अर्थशास्त्र के संदर्भ में क्लासिकल आय व रोजगार की अवधारणा दी, इस क्लासिकल विचार को पहली चुनौती 1929 की मंदी से उपजे कींसीय विचार से मिली जिन्होंने क्लैसिकल अहस्तक्षेप के बजाए राजकोषीय हस्तक्षेप द्वारा प्रभावी मांग को बढ़ाकर आय व रोजगार विस्तार का समर्थन किया। 1960–70 के दशक में अनेक नव स्वतंत्र राष्ट्रों ने अपनी आर्थिक समस्याओं के प्रभावी समाधान हेतु कींसीय उपचार को अपनाया किन्तु इन देशों में मुद्रा स्फीति, मुद्रा संस्फीति (स्टैग फ्लेशन) इत्यादि समस्याओं

ने जन्म ले लिया क्योंकि इन देशों में मुख्य समस्या मांग की कमी नही बल्कि पूर्ति की कमी रही। कालांतर में कींसीय कमजोरियों की आलोचना नव क्लासिकल व मुद्रावादी अर्थशास्त्रियों ने की तथा क्लेंसिकल विचारों की कमियों को दूर कर नव क्लासिकल विचार प्रस्तुत किया। इस प्रकार देखा जा सकता है कि सभ्यता परिवर्तन का प्रभाव आर्थिक चिंतन व गतिविधियों पर पड़ा।

शब्दावली

राष्ट्रीय आय, एक वित्तीय वर्ष में किसी अर्थव्यवस्था की घरेलू सीमा के भीतर उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं व सेवाओं का मौद्रिक मूल्य जिसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध आगम भी जोड़े जाते है।

आय = GDP + विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय (X-M)

रोजगार

वह सामाजिक आर्थिक स्थिति जिसमें कोई साधन वैधानिक उत्पादक गतिविधियों में संलग्न हो।

मुद्रा स्फीति–सामान्य कीमत स्तर में सत्त तीव्र वृद्धि (वहनीय सीमा के बाहर) मुद्रा स्फीति कहलाता है।

स्टैग फ्लेशन (मुद्रा संस्फीति)– वह स्थिति जबकि अर्थव्यवस्था में मंदी तथा बेरोजगारी दोनों एक साथ पायी जाती है, स्टैग फ्लेशन कहलाता है।

प्रभावी मांग–वह बिन्दु, जिस पर अर्थव्यवस्था में समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति बराबर हो प्रभावी मांग बिन्दु कहलाता है। यह मूलभूत कींसीय अवधारणा है।

मांग= समग्र मांग = समग्र पूर्ति

राजकोषीय नीति, विशिष्ट वांछित आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सरकार द्वारा अपनी आय तथा व्यय में उपयुक्त समयोजन की रणनीति, राजकोषीय नीति कहलाता है।

राजकोषीय नीति के अंतर्गत करारोपण, राजकोषीय व्यय, सार्वजनिक ऋण इत्यादि उपकरण शामिल है।

मंदी (recession) जब लगातार दो तिमाही (Ouarter) में GDP संवृद्धि दर नकारात्मक बनी रहे, मंदी कहलाता है।

भुगतान संतुलन–एक वित्तीय वर्ष में किसी देश का शेष विश्व के साथ होने वाले समस्त आर्थिक लेन–देन का लेखांकन भुगतान संतुलन (Balence of Payment) कहलाता है।

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) एक वित्तीय वर्ष में किसी अर्थव्यवस्था की घरेलू सीमा के भीतर उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं ओर सेवाओं का मौद्रिक मूल्य, सकल घरेलु उत्पाद कहलाता है।

उपयोगी पुस्तके

उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त (एम0एल0झिंगन, एच0एल0 आहुजा, एस0एन0 लाल)

खण्ड–1

इकाई–02

अर्थव्यवस्था का चक्रीय प्रवाह

इकाई की रुपरेखा

2.1 भूमिका

2.2 द्विक्षेत्रीय मॉडल

2.3 तीन क्षेत्रीय मॉडल

2.4 चार क्षेत्रीय मॉडल

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

अर्थव्यवस्था का चक्रिय प्रवाह

उत्पादन, उपभोग तथा वितरण मूलभूत आर्थिक क्रियाएँ है। इन क्रियाओं में संलग्न फर्म, श्रमिक, उपभोक्ता, उत्पादक इत्यादि आर्थिक चर परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होते है, जिससे किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन व आय का चक्रीय प्रवाह बना रहता है। ज्ञातव्य हो कि उत्पादन प्रक्रिया में शामिल साधनों जैसे श्रम, पूंजी, भूमि तथा साहसी को उनके उत्पादन के प्रतिफल रूप में क्रमशः मजदूरी, ब्याजदर, लगान तथा लाभ प्राप्त होता है। उत्पादन के साधन प्राप्त प्रतिफल को स्वयं द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं पर क्रय करते है जिससे उत्पादन तथा आय का चक्रिय प्रवाह उत्पन्न हो जाता है जिसे अर्थव्यवस्था का चक्रिय प्रवाह भी कहते है।

आर्थिक क्रियाओं के चक्रिय प्रवाह में निम्नलिखित घटक शामिल होते है–

घरेलू क्षेत्र (Domestic Area) ये उत्पादन के साधनों (श्रम, पूंजी, भूमि तथा साहसी) के स्वामी होते है जिसके बदले घरेलू क्षेत्र को साधन आय के रूप में मजदूरी, ब्याज, लगान

तथा लाभ प्राप्त होता है। घरेलू क्षेत्र के अंतर्गत परिवार तथा व्यक्तिगत उपभोग इकाईयाँ शामिल है, जो वस्तुओं व सेवाओं के बजाए केवल उत्पादन के साधन की आपूर्ति करती है तथा प्राप्त प्रतिफल को वस्तुओं व सेवाओं पर व्यय करती है फलतः इन्हें उपभोग क्षेत्र भी कहते है।

व्यापारिक क्षेत्र (Commercial Sector) इसके अंतर्गत फर्म, उद्योग इत्यादि उत्पादन इकाईयाँ शामिल है जो समस्त वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करती है, फलतः इन्हें उत्पादक क्षेत्र भी कहा जाता है। व्यापारिक क्षेत्र अपने समस्त उत्पादन को घरेलू क्षेत्र में बेचती है तथा बदले में विक्रय आय प्राप्त करती है।

सरकारी क्षेत्र (Government sector) सरकारी, क्षेत्र, करारोपण (प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर/परोक्षकर) सार्वजनिक ऋण इत्यादि के माध्यम से घरेलू क्षेत्र तथा व्यापारिक क्षेत्र से राजस्व प्राप्त करती है जिसे वह विभिन्न हस्तांतरण विधियों (जैसे– प्रत्यक्ष हस्तांतरण, कर छूट) द्वारा घरेलू क्षेत्र तथा व्यापारिक क्षेत्र पर व्यय करती है। फलतः आय का चक्रिय प्रवाह बना रहता है।

विदेशी क्षेत्र (External sector) खुली अर्थव्यवस्था में कोई देश घरेलू उत्पादन तथा उपभोग के साथ शेष विश्व के साथ आर्थिक व्यवहार करता है। एक ओर तो वह शेष विश्व को वस्तुओ, सेवाओं तथा पूंजी का निर्यात करता है तो वही दूसरी ओर इन्हीं वस्तुओं–सेवाओं का आयात करता है, फलतः भुगतान संतुलन के माध्यम से आय का चक्रिय प्रवाह बना रहता है।

उत्पादन तथा आय के चक्रिय प्रवाह के तीन मॉडल है बन्द अर्थव्यवस्था में द्विक्षेत्रीय तथा त्रिक्षेत्रीय मॉडल तथा खुली अर्थव्यवस्था में चार क्षेत्रीय मॉडल। आर्थिक क्रियाओं के चक्रिय प्रवाह मॉडल को निम्नवत् समझा जा सकता है–

द्विक्षेत्रीय मॉडल (Two sector economy) माना अर्थव्यवस्था में केवल दो क्षेत्र घरेलू उपभोग क्षेत्र तथा व्यापारिक उत्पादक क्षेत्र है। घरेलू क्षेत्र केवल उत्पादन के साधनों की आपूर्ति करता हैं तथा बदले में प्राप्त प्रतिफल, उत्पादक क्षेत्र द्वारा विनिर्मित वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय करता है।

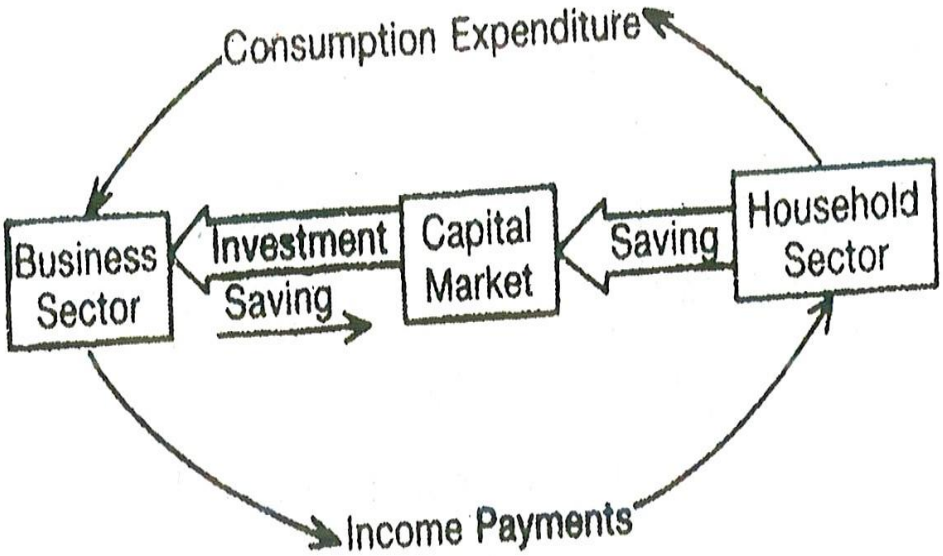

चित्र संख्या–1

प्रवाह चित्र संख्या–1 से स्पष्ट है कि घरेलू क्षेत्र से उत्पादन के साधन श्रम, पूँजी, भूमि व उद्यमिता की पूर्ति होगी, जिसके बदले में व्यापारिक अथवा उत्पादक क्षेत्र से घरेलू क्षेत्र की ओर मजदूरी, लाभ, लगान तथा ब्याज के रूप में साधन आय का प्रवाह होगा। घरेलू क्षेत्र द्वारा प्राप्त आय, उत्पादक क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तु और सेवा पर होगा जिससे घरेलू क्षेत्र से उत्पादक क्षेत्र की ओर विक्रय आय का प्रवाह होगा, ज्ञातव्य हो, कि आय का जो भाग बच जायेगा, वित्तीय क्षेत्र के माध्यम से उत्पादक क्षेत्र में निवेश हो जायेगा, जिससे चक्रिय प्रवाह बना रहेगा।

तीन क्षेत्रीय मॉडल– माना बंद अर्थव्यवस्था है जिसमें केवल तीन क्षेत्र घरेलू क्षेत्र, उत्पादन क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र पाया जाता है।

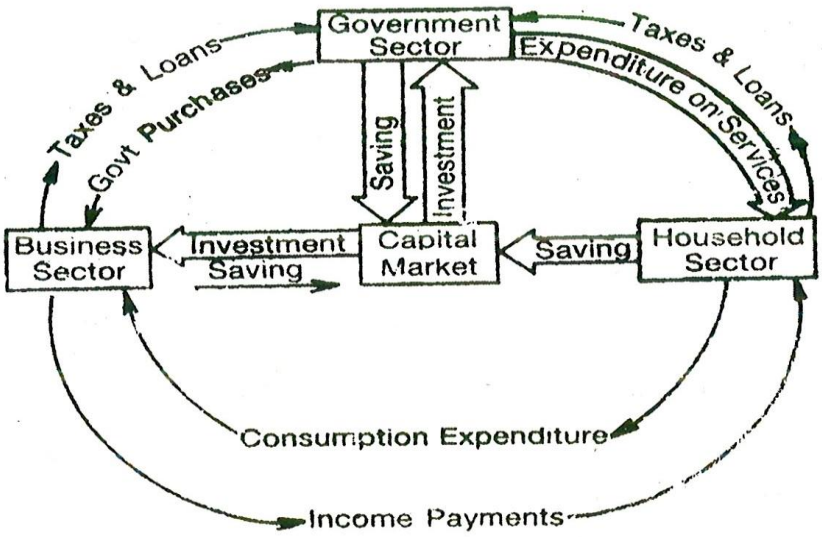

चित्र संख्या–2

प्रवाह चित्र संख्या 2 से स्पष्ट है कि उत्पादक क्षेत्र से घरेलू क्षेत्र की ओर मजदूरी, लाभ, ब्याज तथा लगान के रूप में प्राप्त साधन आय, उत्पादित वस्तुओं और सेवाओ पर व्यय हो जाता है, जो उत्पादक क्षेत्र को विक्रय आय के रूप में प्राप्त होता है। सरकारी क्षेत्र को घरेलू क्षेत्र तथा उत्पादक क्षेत्र तथा उत्पादक क्षेत्र दोनों से प्रत्यक्ष कर तथा अप्रत्यक्ष कर के रूप में राजस्व प्राप्त होता है, जिसे सरकार द्वारा साधन आय, हस्तांतरण भुगतान, वस्तुओं तथा सेवाओं द्वारा व्यय तथा सब्सिडी इत्यादि के माध्यम से घरेलू क्षेत्र तथा उत्पादक क्षेत्र को लौटा दी जाती है, जिससे आय तथा उत्पादन प्रवाह बना रहता है।

चार क्षेत्रीय मॉडल (Four seclor madal)

माना अर्थव्यवस्था में मुक्त व्यापार नीति के कारण घरेलू क्षेत्र, उत्पादक क्षेत्र, तथा सरकारी क्षेत्र के साथ विदेशी क्षेत्र भी उपस्थित है तथा उत्पादन और आय का प्रवाह इन्हीं क्षेत्रों के मध्य होता है।

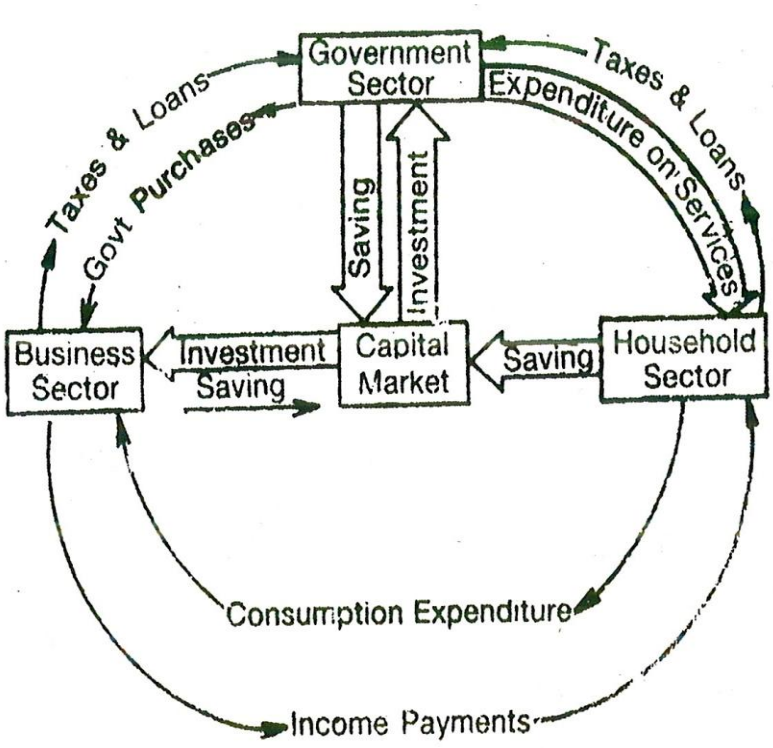

चित्र संख्या–3

प्रवाह चित्र संख्या–3 से स्पष्ट है कि व्यापारिक। उत्पादक क्षेत्र से घरेलू क्षेत्र को प्राप्त साधन आय, वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय के रूप में उत्पादक क्षेत्र को विक्रय आय प्राप्त होगा। सरकारी क्षेत्र को प्रत्यक्ष परोक्ष कर के रूप में प्राप्त राजस्व, साधन आय, वस्तु तथा सेवा व्यय, सब्सिडी तथा एक पक्षीय हस्तांतरण आदि के माध्यम से घरेलू क्षेत्र तथा उत्पादक क्षेत्र की ओर आय का हस्तांतरण होगा। विदेशी क्षेत्र के शामिल हो जाने से घरेलू क्षेत्र को साधन आय तथा एकपक्षीय हस्तांतरण भुगतान प्राप्त होगा जिन्हे वह विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात पर व्यय करेगा, इसी प्रकार उत्पादक क्षेत्र से एक ओर वस्तु, सेवा तथा पूंजी का निर्यात होगा वही दूसरी हो विदेशी वस्तुओं, सेवाओं तथा पूंजी का आयात होगा। इस प्रकार खुली अर्थव्यवस्था में भी आय का चक्रिय प्रवाह बना रहेगा।

सारांश

आर्थिक क्रियाओं में उत्पादन, उपभोग तथा वितरण इत्यादि सम्बन्धी मूलभूत आर्थिक गतिविधियाँ शामिल है। इन प्रक्रियाओं में भाग लेने वाले आर्थिक चर जैसे– उपभोक्ता, उत्पादक (फर्म), सरकार इत्यादि परस्पर सम्बद्ध होते है फलतः उत्पादन तथा आय का एक क्षेत्र से अन्य क्षेत्र की ओर प्रवाह बना रहता है, जिसे आय का चक्रिय प्रवाह कहते है। आर्थिक क्रियाओं का यह प्रवाह अग्रिम काल (वस्तु विनिमय प्रणाली) से लेकर वर्तमान तक जारी है परन्तु समय के साथ विभिन्न आर्थिक चरों जैसे वित्तीय संस्थाओं तथा अन्य संस्थाओं के विकास के साथ इसमें महत्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन आया है। उत्पादन तथा आय प्रवाह के कारण किसी समय बिन्दु पर समग्र उत्पादन, समग्र आय तथा समग्र व्यय समान बना रहता है।

शब्दावली

उपभोग

वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से किसी वस्तु तथा सेवा की उपयोगिता को नष्ट अथवा अवशोषित किया जाता है, उपभोग कहलाता है।

उत्पादन

उत्पादन के साधनों (आगतों) के माध्यम से निर्गत (उत्पाद) प्राप्त करने की प्रक्रिया, उत्पादन कहलाती है।

फर्म

यह उत्पादन की सबसे छोटी इकाई होती है जो विक्रय के उद्देश्य से वस्तु तथा सेवा का सृजन करती है।

प्रत्यक्ष कर

जब करापात तथा कराघात एक ही आर्थिक इकाई पर हो, प्रत्यक्ष कर कहलाता है। प्रत्यक्ष कर की दशा में कर भार का मौद्रिक भुगतान उसी व्यक्ति द्वारा किया जाता है जिस पर कर लगाया जाता है। जैसे– आय कर, निगम कर आदि।

अप्रत्यक्ष कर/परोक्षकर

वह कर प्रणाली जिसमें करापात तथा कराघात बिन्दु अलग–अलग आर्थिक चरों पर हो, अर्थात् जिस आर्थिक इकाई पर करारोपण हो वह कर के मौद्रिक भार को पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से अन्य व्यक्ति पर विवर्तित कर दे, परोक्ष कर कहलाता है। जैसे बिकी कर, GST आदि।

सब्सिडी

वंचित तथा निर्धन वर्गों को, बजार कीमत से कम कीमत पर वस्तु तथा सेवा उपलब्ध कराने की प्रक्रिया सब्सिडी कहलाती है। इसके अंतर्गत बाजार कीमत तथा सब्सिडी कीमत के अंतर को सरकार द्वारा वहन किया जाता है।

आयात (Import)

किसी देश द्वारा शेष विश्व से वस्तु, सेवा तथा पूंजी को मंगाना, आयात कहलाता है।

निर्यात (Export)

किसी देश द्वारा शेष विश्व को वस्तु, सेवा तथा पूंजी भेजना, निर्यात कहलाता है।

प्रमुख शब्दावली

बंद अर्थव्यवस्था (Autarchy)

जब किसी देश का शेष विश्व के साथ कोई आर्थिक लेन–देन न हो, बंद अर्थव्यवस्था कहलाता है।

खण्ड–1

इकाई–03

राष्ट्रीय आय : अवधारणाएँ, संरचना एवं मापने की विधियाँ

इकाई की रुपरेखा

3.0 भूमिका

3.1 सकल घरेलू उत्पाद

3.2 राष्ट्रीय आय मापने की विधियाँ

3.3 राष्ट्रीय आय की गणना में आने वाली समस्याएँ

3.4 सरांश

3.5 शब्दाली

राष्ट्रीय आय

राष्ट्रीय आय, किसी अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण समष्टिभावी आर्थिक चर है जिससे उसकी संवृद्धि, विकास, संसाधनों का अनुकूतम दोहन इत्यादि प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जा सकता है। राष्ट्रीय आय की परिभाषा को लेकर अर्थशस्त्रियों में पर्याप्त मतभेद हैं मार्शल के अनुसार किसी देश का श्रम तथा पूंजी उसके प्राकृतिक संसाधनों पर क्रियाशील होकर प्रतिवर्ष भौतिक तथा अभौतिक वस्तुओं का एक शुद्ध योगफल पैदा करता है, जिसमें सभी प्रकार की सेवाएँ सम्मिलित होती है। यही उस देश की वास्तविक शुद्ध आय या देश का राजस्व या राष्ट्रीय लाभांश होता है।'' मार्शल की परिभाषा में अनेक कमियाँ है जैसे दोहरी गणना का भय, भिन्न–भिन्न वस्तुओं व सेवाओं को जोड़ने की समस्या इत्यादि। प्रो0 पीगू के अनुसार ''राष्ट्रीय आय समाज की वस्तु परक आय का वह भाग है, जिसे मुद्रा में मापा जा सकता है जिसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय भी शामिल किया जाता है।''

राष्ट्रीय आय की गणना अथवा लेखांकन को सामाजिक लेखांकन भी कहते है। राष्ट्रीय आय लेखांकन का निम्न कारणों से विशेष महत्व है–

आर्थिक संवृद्धि का अनुमान

राष्ट्रीय आय लेखांकन द्वारा हम किसी अर्थव्यवस्था की संवृद्धि अथवा प्रगति का अनुमान लगा सकते है।

राष्ट्रीय आय की संरचना या ढाँचा का अनुमान

राष्ट्रीय आय की लेखांकन के माध्यम से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राष्ट्रीय आय में प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र तथा तृतीयक क्षेत्र किस अनुपात में योगदान करते है।

अन्तर्राष्ट्रीय तुलनात्मक अध्ययन

राष्ट्रीय आय के लेखांकन द्वारा किसी अर्थव्यवस्था का विभिन्न देशों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण किया जा सकता है ज्ञातव्य हो कि विभिन्न वैश्विक संस्थाए जैसे विश्व बैंक,IMFआदि विभिन्न देशों की प्रगति, जीवन स्तर इत्यादि की तुलना के लिए राष्ट्रीय आय के आकड़ों का प्रयोग करती है।

- राष्ट्रीय आय, किसी अर्थव्यवस्थ के लिए राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, व्यापारिक नीति, वितरणात्मक रणनीति इत्यादि के निर्माण हेतु महत्वपूर्ण है।
- राष्ट्रीय आय की अवधारणा क्षेत्रीय विकास अन्तराल तथा आय असमानता को समझने हेतु महत्वपूर्ण उपागम है।

राष्ट्रीय आय सम्बन्धी समस्याओं एवं सूचनाओं तथा तथ्यों के संकलन तथा विवरणों को प्रस्तुत करने की प्रक्रिया, राष्ट्रीय लेखांकन कहलाता है। साइमन कुजनेट्स को राष्ट्रीय लेखांकन/सामाजिक लेखांकन का जनक माना जाता है जिसके लिए उन्हें अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार मिला।

राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाएँ

सकल घरेलू उत्पाद (Gross nomeshic product)

एक वित्तीय वर्ष में भारत के लिए 1 अप्रैल से 31 मार्च तक, किसी अर्थव्यवस्था की घरेलू सीमा के भीतर उत्पादित समस्त अंतिम वस्तुओं और सेवाओं का मौद्रिक मूल्य, सकल घरेलू उत्पाद GDP कहलाता है। दोहरी गणना से बचाव हेतु (GDP) में केवल अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को शामिल किया जाता है।

किसी देश की घरेलू अर्थव्यवस्था की सीमा, उसकी भौगोलिक सीमा से अधिक होता है। GDP में निम्नवत् को शामिल किया जाता है–

अनन्य आर्थिक क्षेत्र

समुद्र तट से 200 NM (नॉटिकल मील) की सीमा को अनन्य आर्थिक क्षेत्र कहा जाता है। इस सीमा के भीतर उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं को सम्बन्धित देश की GDP में शामिल किया जाता है।

- विदेशों में अवस्थित राजनीतिक व वाणिज्यिक दूतावास के भीतर उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं को सम्बन्धित देश की GDPमें शामिल किया जाता है। उदाहरण के लिए विदेशों में स्थित भारतीय दूतावास द्वारा सृजित उत्पाद भारत की GDPका भाग होगा।
- अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के भीतर उत्पादित वस्तु तथा सेवा को सम्बन्धित देश की GDPमें शामिल किया जाता है।

बजार लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNPmp) साधन लागत पर प्राप्तGNP में अप्रत्यक्ष करों को जोड़ने तथा सब्जिडी को घटा देने पर बाजार लागत पर प्राप्त GNP होता है।

, = GNP_{Fp}+ अप्रत्यक्ष कर – सब्सिडी

या

, = बाजार लागत परGNP

= साधन लागत पर GNP

नोटः–अप्रत्यक्ष कर लगाने से वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतें बढ़ जाती है जबकि सब्जिडी से कीमते कम हो जाती है फलतः बाजार लागत पर GDP या GNP ज्ञात करने के लिए अप्रत्यक्ष करों को जोड़ते है जबकि सब्सिडी को घटाते है।

राष्ट्रीय आय मापने की विधियाँ

राष्ट्रीय आय की गणना अथवा मापने की तीन विधियाँ पायी जाती है, आय विधि, व्यय विधि तथा उत्पाद विधि। तीनों विधियों से समान मूल्य प्राप्त होते है– अर्थात्

आय = राष्ट्रीय व्यय = राष्ट्रीय उत्पाद

1. आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना,

आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना के लिए उत्पादन प्रक्रिया में शामिल साधनों (जैसे– भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यमी) को मिलने वाले प्रतिफलों (जैसे– लगान, मजदूरी, लाभ व ब्याजदर) को जोड़कर राष्ट्रीय आय की गणना करते है। अर्थात्

राष्ट्रीय आय = मजदूरी + लगान + व्याजदर + लाभ P

आय = W + R + L + P

सावधानियाँ

साधनों को प्राप्त हस्तांतरण आय अथवा हस्तांतरण भुगतान को शामिल नहीं किया जाता है।

➢ यदि कोई व्यक्ति स्वयं के घर में रहता है तो उस पर प्राप्त आनुमानित किराया को राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद

एक वित्तीय वर्ष में किसी अर्थव्यवस्था की घेरलू सीमा के भीतर उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का मौद्रिक मूल्य, जिसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय भी शामिल हो, सकल घरेलू उत्पाद GNP कहलाता है।

राष्ट्रीय आय= सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय

GDP + (X-M)

जहाँ X = निर्यात तथा M = आयात

निवल GDP तथा निवल GNP

एक वित्तीय वर्ष में होने वाले टूट–फूट अथवा मूल्य हास को GDP अथवा GNP से घटाने पर निवल Net या शुद्ध सकल घरेलू उत्पाद NGDP अथवा शुद्ध सकल राष्ट्रीय आय NNP प्राप्त होता है। अर्थात्

NGDP = GDP – मूल्य हास

निवल शुद्ध GDP

NNP = GNP मूल्य हास

NNP निवल GNP

बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{mp})

साधन लागत पर प्राप्त GDP में, अप्रत्यक्ष करों को जोड़ने तथा सब्जिडी को घटा देने पर बाजार लागत पर सकल घरेलू उत्पाद प्राप्त होता है।

$$GDP_{mp} = GDP_{Fp} - \text{अप्रत्यक्ष कर} + \text{सब्सिडी}$$

या साधन लागत पर GDP में अप्रत्यक्ष करों को घटाने तथा सब्सिडि को जोड़ देने पर साधन लागत पर सकल घरेलु उत्पाद प्राप्त होता है,

$$GDP_{FP} = GDP_{MP} \text{ अप्रत्यक्ष कर} - \text{सब्सिडी}$$

स्व नियोजित पूंजी पर मिलने वाले आनुमानित ब्याज को राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाता है।

यदि कोई व्यक्ति स्वयं की भूमि पर कृषि कार्य करता है तो उसे मिलने वाले आनुमानित मजदूरी को राष्ट्रीय आय में शामिल करते है।

2. उत्पाद विधि

एक वित्तीय वर्ष में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं के मौद्रिक मूल्यों का योग, राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है। इसके अन्तर्गत सभी क्षेत्रों में उत्पादित केवल अंतिम वस्तुओं और सेवाओं को शामिल किया जाता है न कि मध्यवर्ती वस्तुओं को।

सावधानियाँ

- महिलाओं द्वारा किए जाने वाले अवैतनिक घरेलू कार्य को राष्ट्रीय आय में नहीं जोड़ा जाता है।
- दोहरी गणना से बचने के लिए केवल सम्बन्धित वर्ष में उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं को शामिल किया जाता है।
- पुरानी परिसम्पत्ति (जैसे– पुरानी गाड़ी, जमीन आदि) तथा वित्तीय परिसम्पत्ति (जैसे पुराने शेयर बाण्ड आदि) के क्रय–विक्रय को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता है।

3. व्यय विधि

इसके अन्तर्गत एक वित्तीय वर्ष में सभी आर्थिक इकाईयों द्वारा वस्तुओंतथा सेवाओं पर किए गये व्यय को जोड़ा जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत उपभोग व्यय, निवेश व्यय, सार्वजनिक व्यय के साथ विदेशी व्यय भी शामिल है।

सावधानियाँ

- सरकार द्वारा किए गये हस्तातरण भुगतान जैसे पेंशन, सब्सिडी, बेरोजगारी भत्ता इत्यादि को राष्ट्रीय आय में नहीं जोड़ा जाता है।
- केवल अंतिम उपभोग वस्तुओं तथा सेवाओं पर किए जाने वाले व्यय को ही राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाता है।

4. मूल्य बढ़ाव विधि (Value Added method)

इसके अन्तर्गत उत्पादन प्रक्रिया के प्रत्येक चरण पर होने वाले मूल्य वृद्धि को जोड़कर राष्ट्रीय आय की गणना करते है। अर्थात् उत्पादन के प्रत्येक चरण में आगतों व प्राप्त निर्गत का अंतर मूल्य बढ़ाव होता है।

विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय की गणना में आने वाली समस्याएँ

अमौद्रिक क्षेत्र

विकासशील देशों में वित्तीय समावेशन तथा वित्तीय पहुच के अभाव में व्यापक अमौद्रिक क्षेत्र पाया जाता है। फलतः राष्ट्रीय आय का मौद्रिक मूल्यांकन अनुमान से कम हो जाता है।

वित्तीय जागरूकता का अभाव

वित्तीय जागरूकता के अभाव में विकासशील देशों में आय तथा व्यय सम्बन्धी विश्वसनीय आकड़ों की उपलब्धता सीमित हो जाती है।

वस्तु विनिमय

इन देशों में अधिकांश उत्पादों का बाजार में पहुँचने से पूर्व ही विनिमय (वस्तु–विनिमय द्वारा) तथा उपभोग कर लिया जाता है जिससे राष्ट्रीय आय अनुमान से कम हो जाती है।

आकड़ों की चोरी

आर्थिक चरो द्वारा आय–व्यय सम्बन्धी आकड़ों को कम करके दिखाना अथवा चोरी भी गम्भीर समस्या है।

सारांश

राष्ट्रीय आय किसी अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण अवधारणा है। यह किसी देश के आर्थिक स्वास्थ व वित्तीय प्रगति का महत्वपूर्ण सूचक रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रों के मध्य आर्थिक प्रगति, प्रति व्यक्ति आय व मानव विकास संकेतकों के संदर्भ में तुलनात्मक विश्लेषण में महत्वपूर्ण उपागम है। यह किसी अर्थव्यवस्था की राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति तथा व्यापारिक नीतियों को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। राष्ट्रीय आय के अनेक महत्वपूर्ण घटक जैसे सकल घरेलू उत्पाद, सकल राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय इत्यादि न केवल एक दूसरे से सम्बद्ध बल्कि एक दूसरे को प्रभावित भी करते है। अर्थशास्त्र के विकास के साथ ही राष्ट्रीय आय की गणना एक प्रमुख समस्या रही है जिसके समाधान हेतु अनेक विधियाँ जैसे– उत्पाद विधि, आय विधि, व्यय विधि तथा मूल्य वर्द्धन विधि विकसित की गयी है।

शब्दावलियाँ

प्रति व्यक्ति आय(Per capita Income)

किसी राष्ट्र की कुल राष्ट्रीय आय तथा कुल जनसंख्या का अनुपात, प्रति व्यक्ति आय PCI कहलाता है।

प्रति व्यक्ति आय = कुल राष्ट्रीय आय / कुल जनसंख्या
PCI T.WNI (Total Population)

निवेश

आय का वह भाग जिसे उत्पादक गतिविधियों जैसे– मशीनों, कारखानों आदि पर व्यय किया जाता है जिससे उत्पादकता तथा उत्पादन बढ़ती है, निवेश कहलाता है।

मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

विशिष्ट आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए केन्द्रिय बैंक द्वारा मुद्रा की मात्रा (मुद्रा की मांग तथा मुद्रा की आपूर्ति) को समायोजित करने की रणनीति, मौद्रिक नीति कहलाता है। ज्ञातव्य हो कि भारत में मौद्रिक नीति का निर्माण RBI द्वारा किया जाता है।

लगान

लगान की अवधारणा डेविड रिकार्डों ने दिया। उनके अनुसार लगान, भूमि की मौलिक व अविनाशी उर्वरता शक्तियों के बदले मिलने वाला प्रतिफल है।

अंतिम उपभोग वस्तु

जब किसी वस्तु को किसी अन्य वस्तु के उत्पादन में प्रयोग करने के बजाएँ, उपभोग हेतु प्रयोग किया जाता है, अंतिम उपभोग वस्तु कहलाता है।

मध्यवर्ती वस्तु

जब किसी वस्तु का प्रयोग अन्य वस्तुओं के निर्माण में किया जाता है (जैसे–गेहूँ से आटा बनाना) तो इसे मध्यवर्ती वस्तु कहते है।

खण्ड–1

इकाई– 04

रोजगार : अर्थ बेरोजगारी के प्रकार, क्लासिकी उत्पादन एवं रोजगार का सिद्धान्त, से का बाजार नियम

इकाई की रुपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 रोजगार की परिभाषा

4.2 रोजगार के प्रकार

4.3 से का बाजार सिद्धान्त

4.4 क्लैसिकल रोजगार व आय निर्धारण मॉडल

4.5 आलोचनाएँ

राष्ट्रीय आय व रोजगार निर्धारण सिद्धान्त

राष्ट्रीय आय व रोजगार की परिभाषा व इसके निर्धारण को लेकर प्रारम्भ से ही अर्थशास्त्री चिंतनशील रहे है। राष्ट्रीय आय व रोजगार निर्धारण को लेकर पीगू व मार्शल के विचारों को सम्मिलित रूप से क्लासिकल रोजगार अथवा आय निर्धारण मॉडल का कहते है जिसकी विस्तृत व्याख्या आगे की जायेगी।

रोजगार की परिभाषा

उत्पादन के साधनों की वह सामाजिक आर्थिक स्थिति जो वे प्रचलित मजदूरी दर पर वैध उत्पादक गतिविधि में संलग्न हो, रोजगार कहलाता है। यह स्पष्ट है कि यदि कोई साधन अवैध उत्पादक अथवा वैध गैर उत्पादक गतिविधि में संलग्न है तो उसे बेरोजगार माना जायेगा जैसे– मनी लाण्ड्रिंग, सन्यासी आदि गतिविधियाँ।

बेरोजगारी के प्रकार

अनैच्छिक बेरोजगार

यदि कोई कार्यशील श्रमिक वर्तमान प्रचलित मजदूरी पर कार्य करना चाहता है किन्तु उसे उत्पादक कार्य न मिले अनैच्छिक बेरोजगारी कहलाता है।

घर्षणजनित बेरोजगारी (Frictional Unemployment)

घर्षणजनित बेरोजगारी से आशय उस अवधि से है जिसमें कोई श्रमिक वर्तमान रोजगार को छोड़कर उच्चतर रोजगार में की तलाश में जाता है, अर्थात् एक रोजगार से दूसरे रोजगार में जाने के बीच की अवधि में जब श्रमिक बेरोजगार होता है, घर्षण जनित बेरोजगारी कहलाता है। यह बेरोजगारी पूर्ण रोजगार में भी बनी रहती है।

प्रछन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment)

उत्पादन प्रक्रिया में शामिल वे श्रमिक जिनकी सीमांत उत्पादकता लगभग शून्य अथवा शून्य में कम हो, प्रछन्न बेरोजगारी कहलाता है। कृषि क्षेत्र में प्रछन्न बेरोजगारी सर्वाधिक बड़ी समस्या है।

चक्रिय बेरोजगारी (Cyclical Unemployment)

व्यापार उच्चावचन अथवा समग्र मांग में कमी अथवा मदी के कारण उत्पन्न बेरोजगारी चक्रिय बेरोजगारी कहलाती है। इस प्रकार की बेरोजगारी मंदी काल में दिखायी देती है जो अस्थायी होती है।

क्लासिकल आय तथा रोजगार निर्धारण मॉडल

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों में एड्म स्मिथ, मार्शल तथा जे0वी0 से इत्यादि सम्मिलित हैं। मांग व पूर्ति, सम्बन्धी विचार, से का बाजार नियम इत्यादि को मिलाकर क्लासिकल आय व रोजगार सिद्धान्त मॉडल कहा गया है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि बाजार तंत्र में अहस्तक्षेप की नीति हो, तो बाजार की शक्तियों (मांग तथा पूर्ति) के क्रियाशीलन से अर्थव्यवस्था सदैव पूर्ण रोजगार में स्तर पर संतुलन में होगी।

मान्यताएँ

- पूर्ण रोजगार पाया जाता है।
- सरकारी हस्ताक्षेप का अभाव अर्थात् बाजार तंत्र का पूर्ण क्रियाशीलता।
- श्रम की सभी इकाईयाँ समरूप है।
- मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त लागू होता है। अर्थात् मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।
- मुद्रा मजदूरी तथा वास्तविक मजदुरी में प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।
- बंद अर्थव्यवस्था की मान्यता।

से का बाजार नियम (Say's Low of Market)

फ्रांसीसी अर्थशास्त्री जॉन वैपस्टिन से का बाजार नियम क्लासिकल आय व रोजगार निर्धारण का मूल है। से का मानना है कि ''पूर्ति अपनी मांग स्वयं पैदा करती है।'' उनके अनुसार जैसे ही किसी वस्तु का उत्पादन होता है उत्पादन मूल्य के बराबर साधनों (भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यमी) को प्रतिफल अथवा आय (लगान, मजदूरी, ब्याज तथा लाभ) प्राप्त हो जाती है।

'से' मानते है कि साधनों को प्राप्त आय उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर ही व्यय हो जाता है क्योंकि व्यक्ति उपभोग से मिलने वाले संतुष्टि के लिए ही उत्पादक करता है। इस प्रकार 'से' मानते है कि यदि बाजार तंत्र पूर्णतः स्वतंत्र व क्रियाशील हो तो कुल उत्पादन के बराबर समग्र मांग पैदा हो जायेगी जिससे अधि उत्पादन अथवा कम उत्पादन (अपूर्ण रोजगार) की समस्या नहीं पायी जायेगी।

'से' ने अपनी बाजार नियम सम्बन्धी अवधारणा वस्तु विनिमय बाजार के लिए दिया था जिसे हैंसन ने मुद्राा बाजार में भी लागू कर दिया। हेंसन मानते है कि उत्पादन प्रक्रिया में शामिल आगतों को प्राप्त आय, उत्पादित वस्तु अथवा सेवा पर ही व्यय किया जाता है तथा आय का जो भाग उपभोग से बच जाता है व्याज दर के क्रियाशीलन से निवेशित हो जाता है जिससे समग्र माँग, समग्र पूर्ति के बराबर हो जाती है।

क्लासिकल अर्थशास्त्री ब्याज को बचत का पुरस्कार मानते है तथा ब्याज दर जितनी ज्यादा होगी बचत भी उतना ही ज्यादा होगा और विलोमशः भी। इसके विपरीत ब्याजदर तथा निवेश के मध्य नकारात्मक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् ब्याजदर जितनी कम होगी निवेश उतना ही ज्यादा होगा और विलोमश भी। इस प्रकार ब्याज दर का स्वतंत्र क्रियाशीलन, बचत व निवेश को स्वतः बराबर कर देगा जिससे अर्थव्यवस्था संतुलन में होगी। अर्थव्यवस्था के संतुलन के लिए

समग्र मांग = समग्र पूर्ति

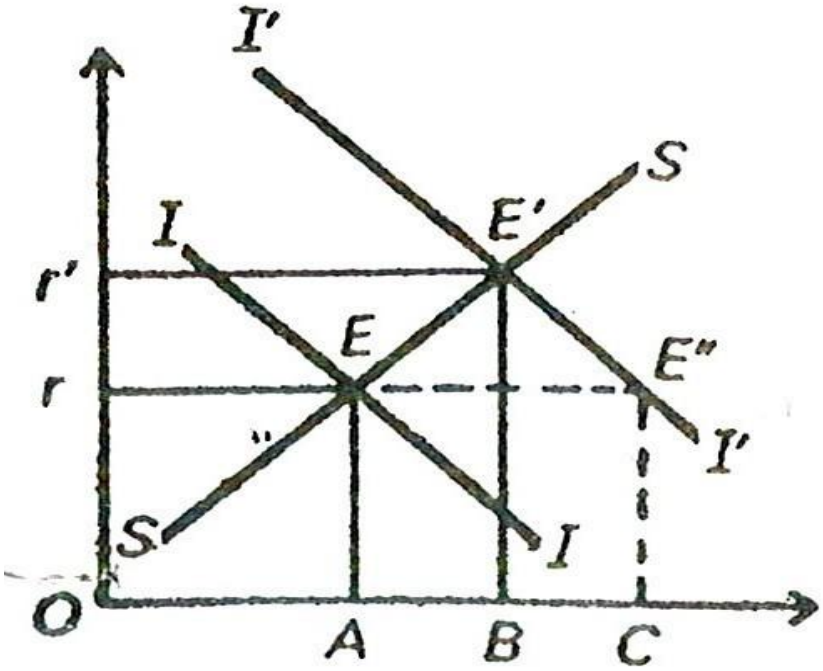

C+I = C+S (C = उपभोग, I = निवेश, S = बचत)

या I = S

चित्र–1 में बचत और निवेश तंत्र की समता को दर्शाया गया। चित्र में 1 निवेश वक्र तथा SS बचत दर्शाता है, बिन्दु EO पर दोनों एक दूसरे को काटते है जिस पर ब्याजदर oro तथा बचत और निवेश ox_o निर्धारित होता है।

यदि निवेश में वृद्धि होती है तो निवेश वक I' I' हो जाता है तथा oro ब्याजदर पर कुल निवेश, बचत से X_o X_1 मात्रा के बराबर अधिक हो जाता है फलतः व्याजदर में वृद्धि होकर Or_1 हो जाती है जिस पर बचत तथा निवेश पुनः बराबर (Ox_2) हो जाता है।

मुद्रा अर्थव्यवस्था में से का बाजार नियम मुद्रा परिमाण सिद्धान्त (MV = PT) पर निर्भर करता है। जहाँ M,V,P तथा T क्रमशः मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा का चलन वेग, सामान्य कीमत सतर T तथा वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा है। मुद्रा बाजार में संतुलन बिन्दु पर समग्र पूर्ति = समग्र मांग

$$PT = MV$$

यदि V तथा T स्थिर हो तो, मुद्रा पूर्ति तथा कीमत स्तर में प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात्

$$P \propto M$$

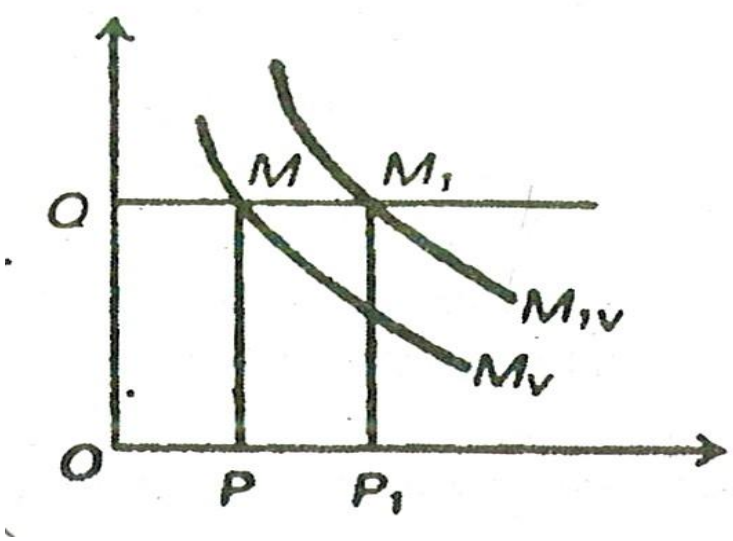

चित्र–2 में OP कुल उत्पादन है जो पूर्णरोजगार स्तर पर पूर्णतः लोचदार है। M_1 तथा M_2 मुद्रा पूर्ति है M_1मुद्रा पर कीमत स्तर P_1 तथा M_2 पर कीमत बढ़कर P_2 हो जाता है जबकि कुल उत्पादन स्थित रहता है। इस प्रकार क्लासिकल मानते है कि मुद्रा आपूर्ति केवल कीमत को प्रभावित करता है वास्तविक उत्पादन तथा रोजगार को नहीं।

पीगू समीकरण

आय व रोजगार निर्धारण को अंतिम रूप देने का श्रेय प्रो0 पीगू को जाता है। पीगू के अनुसार यदि वस्तु बाजार तथा श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो तो अर्थव्यवस्था स्वतः पूर्ण रोजगार पर पहुंच जायेगी। वे मानते है बेरोजगारी का मूल कारण सरकार व ट्रेड यूनियन के कारण मजदूरी (मौद्रिक) मजदूरी दर की कठोरता है।

रोजगार निर्धारण के संदर्भ में प्रो0 पीगू ने अपना रोजगार समी0 N=KY/W दिया जहाँ N, रोजगार में लगे श्रमिकों की संख्या, KY आय का वह भाग जो मजदूरी के रूप में दिया जाता है तथा W मौद्रिक मजदूरी है। पीगू मानते है कि KY स्थिर रहता है अतः मौद्रिक मजदूरी W में कटौती द्वारा रोजगार को बढ़ाया जा सकता है।

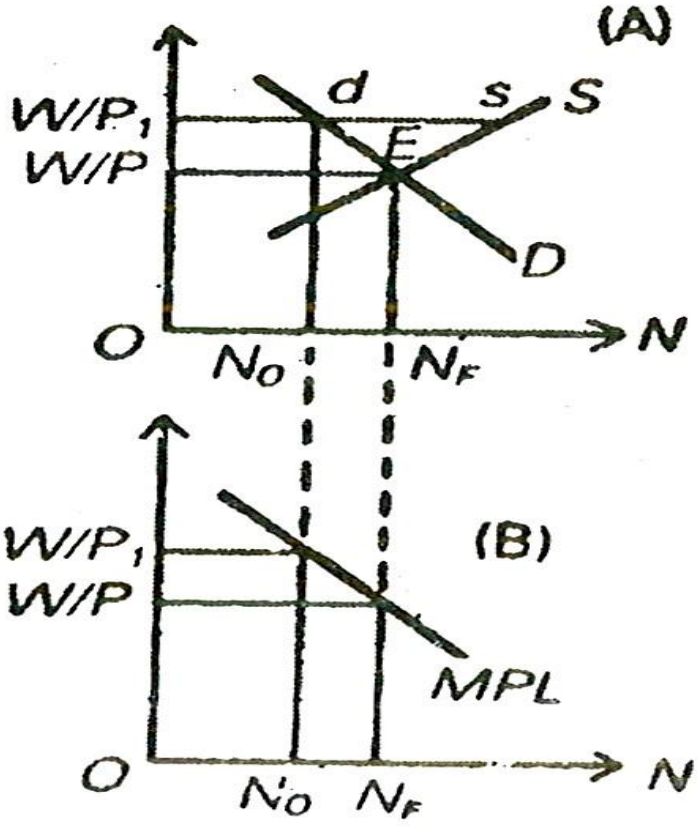

चित्र संख्या–3 के भाग (A) में श्रम की मांग (D) तथा पूर्ति (S)है। W/P वास्तविक मजदूरी पर श्रम की मांग से श्रम की पूर्ति CD के बराबर अधिक है फलतः मौद्रिक मजदूरी में कमी होगी जिससे वास्तविक मजदूरी घटकर W/P हो जायेगी जिस पर श्रम की मांग तथा पूर्ति बराबर है तथा अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर पर संतुलन में है।

चित्र (B) में MP_2 श्रम की सीमांत उत्पादकता गिरती हुई है जो क्रमागत उत्पादन हास नियम पर आधारित है। स्पष्ट है कि श्रमिको की संख्या बढ़ने के साथ सीमांत उत्पादकता (MP_2) घटती है अतः अधिक श्रमिको को रोजगार पर लगाने हेतु आवश्यक है कि वास्तविक मजदूरी (W/P) भी घटे।

क्लासिकल अर्थशास्त्री मानते है कि कुल उत्पादन (Q) श्रम (L) पूंजी,(K) तथा तकनीकि प्रगति (T) इत्यादि पर निर्भर करता है। यदि पूंजी स्टॉक K तथा तकनीकि प्रगति (T) स्थिर हो तो कुल उत्पादन, तथा रोजगार के मध्य धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात्

$$Q = f(L)$$

अतः रोजगार को बढ़ाकर कुल उत्पादन तथा आय को तब तक बढ़ाया जा सकता है जब तक कि पूर्ण रोजगार बिन्दु नहीं आ जाता है। क्लासिकल मानते है कि बाजार तंत्र के पूर्णत क्रियाशीलन द्वारा बिना मुद्रास्फीति के पूर्ण रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। पूर्ण क्लासिकल मॉडल को निम्नवत् समझा जा सकता है–

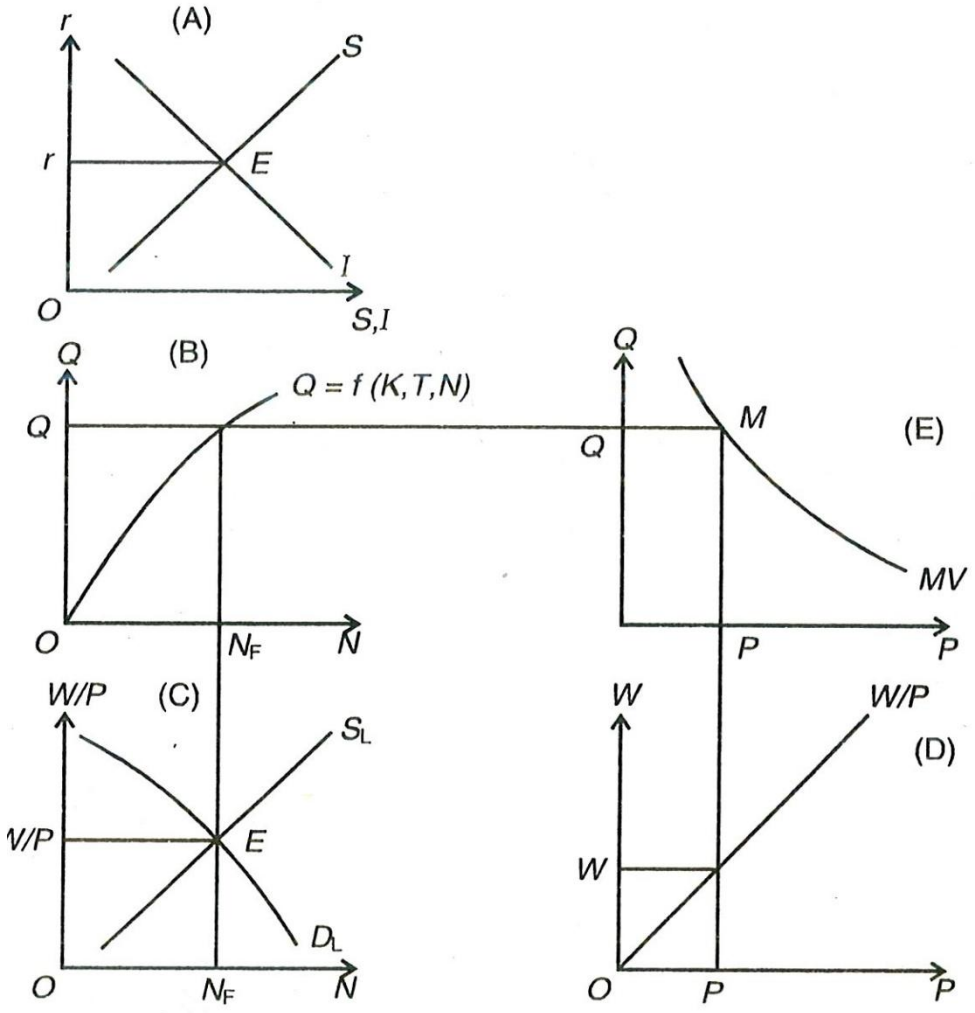

चित्र संख्या –5 के भाग A तथा D में वास्तविक बाजार (श्रम की बाजार तथा उत्पादन) संतुलन को दर्शाया गया है। D चित्र में श्रम की मांग तथा पूर्ति पूर्ण रोजगार स्तर Lf पर

कुल उत्पादन OQ निर्धारित होता है। चित्र B तथा C मुद्रा बाजार संतुलन (MV=PT) दर्शाते है, मुद्रा पूर्ति (MV) पर कीमत स्तर (P) तथा वास्तविक मजदूरी (W/P) निर्धारित होता है। चित्र E में वस्तु बाजार उस बिन्दु पर संतुलन में है जिस पर बचत तथा निवेश बराबर है।

आलोचनाएँ

- पूर्ण रोजगार की अव्यवहारिक मान्यता, जैसा कि कींस कहते है कि अल्प रोजगार सामान्य दशा है जबकि पूर्ण रोजगार विशिष्ट।
- कींस मानते है कि मौद्रिक मजदूरी में कमी, व्यय योग्य आय में कमी लायेगी जिससे समग्र मांग तथा रोजगार स्तर में कम हो जायेगा।
- क्लैसिकल अर्थशास्त्री व्याज तंत्र द्वारा बचत व निवेश ब्याज दर की समानता पर बल देते है किन्तु कींस मानते है कि निवेश ब्याजदर के बचाए सीमांत दक्षता तथा लाभ प्रत्याशा पर निर्भर करता है।
- कींस ने पूर्ति अपनी मांग स्वयं पैदा करती है का खण्डन करते हुए कहा कि साधनों को प्राप्त सम्पूर्ण आय व्यय नहीं होता है क्योंकि उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति इकाई से कम होती है अतः अधि उत्पादन सम्भव है।
- मुद्रा निष्प्रभावी नहीं है इसका आय व रोजगार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

सारांश

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने आय व रोजगार निर्धारण का कोई स्पष्ट मॉडल नही दिया था बल्कि उनके श्रम की मांग तथा आपूर्ति सिद्धान्त, से का बाजार सिद्धान्त तथा ब्याज दर सिद्धान्त को सामूहिक रूप से क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त कहा गया। यह अहस्तक्षेप तथा स्वतंत्र बाजार गतिशीलन द्वारा अर्थव्यवस्था की पूर्ण निकासी पर बल देता है। इसके अनुसार यदि अर्थव्यवस्था में असंतुलन होता है तो बाजार की शक्तियाँ मांग तथा पूर्ति क्रियाशील होकर अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार पर संतुलन में ला देंगी फलत् अधि उत्पादन नहीं पाया जायेगा।

प्रो0 पीगू मानते है कि बेरोजगारी का कारण सरकार तथा ट्रेड यूनियन के हस्तक्षेप के कारण मजदूरी दर की कठोरता है। पीगू ने अपने समी0 द्वारा दर्शाया कि किस प्रकार मौद्रिक मजदूरी में कटौती द्वारा रोजगार स्तर बढ़ाया जा सकता है।

शब्दावली

सीमांत उत्पादकता

अतिरिक्त ईकाई श्रम को बढ़ाने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि, श्रम की सीमांत उत्पादकता कहलाता है।

मनी लॉड्रिंग

वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से अवेध तरीके से अर्जित आय को बैध बनाया जाता है, मनी लॉड्रिंग कहलाता है। जैसे राउण्ड द्रिपिंग, रियल स्टेट इत्यादि में निवेश द्वारा।

वास्तविक मजदूरी

मौद्रिक मजदूरी तथा सामान्य कीमत स्तर के अनुपात को वास्तविक मजदूरी कहते है।

वास्तविक मजदूरी (Real Ware) = मौद्रिक मजदूरी
कीमत स्तर

ब्याज दर

किसी उपभोक्ता को अपनी वर्तमान उपभोग व्यय अथवा बचत के बदले मिलने वाला प्रतिफल व्याज दर कहलाता है।

व्यापार चक्र

आर्थिक गतिविधियों में समय के साथ होने वाले आर्थिक उच्चावचन (जैसे मुद्रा स्फीति के बाद मंदी तथा मंदी के बाद मुद्रा स्फीति) को व्यापार चक्र कहते है।

खण्ड–1

इकाई 05

कींसोत्तर आय निर्धारण सिद्धान्त : हिक्स एवं हैंसन

अथवा

IS-LM मॉडल अवधारणा

इकाई की रुपरेखा–

5.0 प्रस्तावना

5.1 IS तथा LM की परिभाषा

5.2 अर्थव्यवस्था संतुलन (IS तथा LM वक की सहायता से)

आय निर्धारण IS-LM का मॉडल

क्लासिकल आय तथा रोजगार निर्धारण सिद्धान्त पूर्ति पक्ष तथा क्लासिकल द्वैत अवधारणा पर आधारित था जबकि कींसीय आय तथा रोजगार सिद्धान्त मांग पक्ष पर निर्भर था। कींस तथा क्लासिकल सिद्धान्त की आलोचना करते हुए हिक्स तथा हैंसन ने मांग तथा पूर्ति पर आधारित IS-LM मॉडल प्रस्तुत किया। IS तथा LM मॉडल एक साथ वस्तु बाजार (IS वक्र) तथा मुद्रा बाजार (LM वक्र) संतुलन को दर्शाता है।

IS-LM मॉडल को आय व रोजगार निर्धारण का नियो क्लैसिकल मॉडल कहा जाता है। यह मूलतः द्विक्षेत्रीय मॉडल पर आधारित है जिसमें वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार पाया जाता है। यह सामान्य संस्थिति अवधारणा पर आधारित है जिसमें वस्तु बाजार (वास्तविक बाजार) तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन पाया जाता है। मॉडल की मान्यता है कि वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार ब्याजदर तथा निवेश चरो के माध्यम से परस्पर सम्बद्ध और आश्रित है।

IS वक्र

यह वस्तु बाजार अथवा वास्तविक बाजार संतुलन को प्रदर्शित करता है। IS वक्र, आय तथा ब्याज दर के उन बिन्दुओं को प्रदर्शित करता है जिसके प्रत्येक बिन्दु पर समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति अथवा बचत तथा निवेश बराबर होते है। अर्थात् IS वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर

समग्र मांग समग्र पूर्ति

C+I = C+S

I=S	**निवेश = वचत**

IS वक्र ऊपर से नीचे गिरता हुआ ऋणात्मक ढ़ाल वाला होगा जो दर्शाता है कि आय तथा ब्याजदर में नकारात्मक अथवा ब्याज दर तथा निवेश के मध्य नकारात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। ब्याज दर जितना कम होगा, निवेश मात्रा उतना ही ज्यादा अधिक होगा फलतः राष्ट्रीय आय अधिक होगी और विलोमशब्द भी।

चित्र–1 से IS वक्र वास्तविक बाजार (वस्तु बाजार) संतुलन को दर्शाता है जिसके प्रत्येक बिन्दु पर (I=S) होगा। स्पष्ट है कि ब्याज दर में कमी r_1 से r_2 होने पर आय Y_1 से बढ़कर Y_2 हो जाता है।

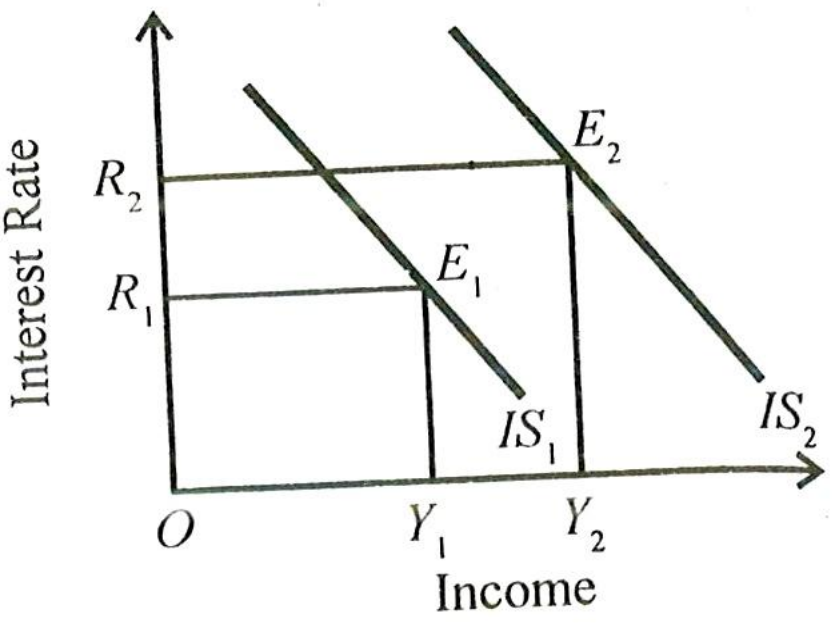

LM वक्र

यह मौद्रिक क्षेत्र के संतुलन को अभिव्यक्त करता है। LM वक्र ब्याज दर तथा आय के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिसके प्रत्येक बिन्दु पर मुद्रा की समग्र मांग तथा मुद्रा की समग्र पूर्ति बराबर होती है। अर्थात् LM वक्र पर–

मुद्रा की समग्र मांग = मुद्रा की समग्र पूर्ति

LM वक्र नीचे से ऊपर उठता हुआ धनात्मक ढ़ाल वाला होगा जो ब्याजदर तथा आय के मध्य धनात्मक सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। अर्थात् ब्याजदर बढ़ने पर आय बढ़ेगी इसके विपरीत ब्याज दर घटने पर आय घटेगी।

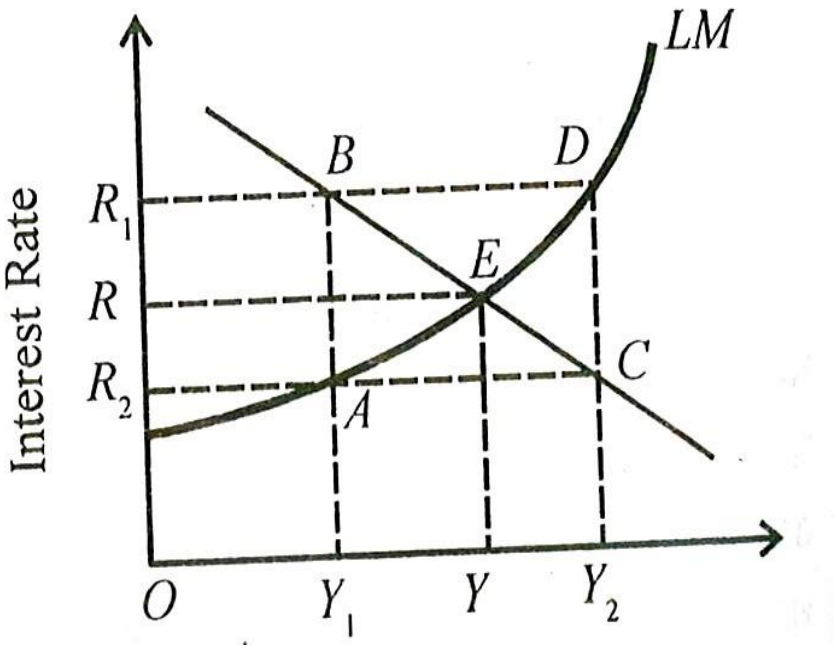

चित्र–2 से स्पष्ट है कि ब्याज दर तथा आय/निवेश के मध्य धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। r_1 ब्याज दर पर आय y_1 है जबकि ब्याज दर बढ़कर r_1 हो जाने पर आय बढ़कर y_2 हो जाता है।

आर्थिक निकाय की संस्थिति

कोई आर्थिक निकाय उस समय संस्थिति में होगा जबकि वस्तु बाजार (वास्तविक बाजार) तथा मुद्राा बाजार एक साथ संस्थिति में होगा। IS वक्र आय तथा ब्याज दरों के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिस पर वस्तु बाजार पूर्ण संतुलन में होगा जबकि LM वक्र आय तथा व्यय दर के उन संयोगों को दर्शाता है जिस पर मुद्रा बाजार संतुलन में होगा। दोनों बाजार वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार उस बिन्दु पर संतुलन में होगा जिस पर IS वक्र तथा LM वक्र एक दूसरे को काटते है अथवा एक दूसरे के बराबर हो।

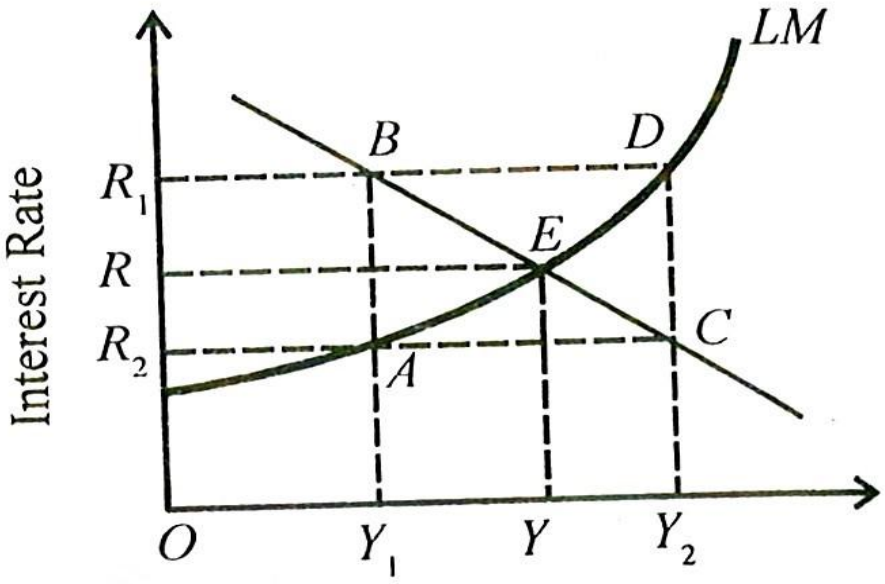

चित्र संख्या–3 में IS वक्र वास्तविक बाजार जबकि LM वक्र मुद्रा बाजार की संस्थिति को दर्शाता है। बिन्दु E_Oपर IS तथा LM वक्र एक दूसरे को काटते है, अतः E बिन्दु आर्थिक निकाय का संतुलन बिन्दु होगा जिस पर वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार एक साथ संतुलन में है।

IS तथा LM का विवर्तन

सार्वजनिक व्यय, उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति बढ़ने अथवा बचत की सीमांत प्रवृत्ति घटने पर ISवक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जायेगा (चित्र–4 से ISसे IS_1हो गया) जिससे आय तथा ब्याजदर दोनों बढ़ जायेगा।

- समग्र व्यय तथा स्वायत्त विनियोग में वृद्धि IS वक्र को ऊपर की ओर विवर्तित करेगा।
- मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि, मुद्रा मांग में कमी आदि LM वक्र को दायी ओर विवर्तित करेगा (चित्र में LM से LM_1 जिससे आय में वृद्धि जबकि ब्याज दर में कमी आयेगी।

सारांश

आय तथा रोजगार निर्धारण का क्लासिकल एवं कींसीय अवधारणा एक पक्षीय अथवा एकांगी है जो क्रमशः पूर्ति पक्ष व मांग पक्ष पर निर्भर है। कींस व क्लेसिक रोजगार सिद्धान्त की आलोचना करते हुए हिक्स तथा हैंसन ने IS-LM मॉडल सिद्धान्त दिया। यह सिद्धान्त मांग तथा पूर्ति पर आधारित IS तथा LM को की सहायकता से वस्तु बाजार/वास्तविक बाजार तथा मुद्रा बाजार का एक साथ संतुलन दर्शाया है। IS वक्र जहाँ आय तथा ब्याज दर के उन संयोगों को दर्शाता है जिस पर समग्र बचत तथा निवेश बराबर होता है वही LMवक्र आय तथा ब्याज दर के उन संयोगों को दर्शाता ह,। जिस पर मुद्रा की समग्र मांग, समग्र पूर्ति के बराबर होती है।

शब्दावली

उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति

आय वृद्धि के सापेक्ष उपभोग में होने वाली वृद्धि को उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति कहते है। यह आय (ΔY) वृद्धि तथा उपभोग वृद्धि (ΔC)का अनुपात, उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति है।

$$\text{उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति} = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$$

बचत की सीमांत प्रवृत्ति

आय वृद्धि (ΔY) के सापेक्ष बचत में होने वाली वृद्धि (ΔC) को बचत की सीमांत प्रवृत्ति कहते है।

$$\text{बचत की सीमांत प्रवृत्ति} = \frac{\Delta S}{\Delta Y}$$

बचत

आय का वह भाग जिसका आर्थिक चरों द्वारा उपभोग नहीं किया जाता है बचत कहलाता है अर्थात्

बचत = आय–उपभोग व्यय

$$S = Y - C$$

खण्ड–2

उपभोग एवं विनियोग

इकाईः–01

उपभोग फलन : कींस का निरपेक्ष उपभोग सिद्धान्त, संकल्पना

इकाई की रुपरेखा–

1.0 प्रस्तावना

1.1 उपभोग फलन की परिभाषा

1.2 कींस का निरपेक्ष उपभोग फलन

उपभोग फलनः कींस का निरपेक्ष उपभोग सिद्धान्त

क्लॉसिकल अर्थशास्त्रियों की अवधारणा में बचत को ब्याज दर का फलन माना गया है, ज्ञातव्य हो कि बचत, आय तथा उपभोग व्यय का अन्तर होता है फलतः उपभोग भी ब्याज दर पर निर्भर करेगा। कींस ने इस अवधारणा का खण्डन करते हुए अपना आधारभूत मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त, निरपेक्ष उपभोग फलन का सिद्धान्त अपनी पुस्तक जनरल थिअरी (1936) में दिया।

उपयोग योग्य आय तथा उपभोग के मध्य फलनात्मक सम्बन्ध को उपभोग फलन कहते है। कींस के अनुसार किसी व्यक्ति का उपभोग उसकी व्यय योग्य आय पर निर्भर करता है अर्थात्–

$$C = a+c.y$$

C = उपभोग

a = स्वायत्त उपभोग

C = उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति(MPC)

Y = व्यय योग्य आय।

कींसीय उपभोग फलन अल्पकालीन उपभोग फलन है। कींस मानते है कि जैसे जैसे व्यक्ति की आय बढ़ती जाती है उसका उपभोग व्यय भी बढ़ता है किन्तु उपभोग व्यय, आय में वृद्धि की तुलना में कम बढ़ता है। कींस मानते है कि उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति इकाई से कम होती है फलतः आय के साथ उपभोग कम अनुपात में बढ़ेगा अर्थात् आय के साथ बचत में भी वृद्धि होगी। कींसीय उपभोग फलन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्य–

उपभोग, व्यय योग्य आय का फलन है न कि ब्याज दर पर निर्भर करता है जैसा कि क्लॉसिकल विचारों में मिलता है।

व्यय योग्य आय में वृद्धि के साथ आय में वृद्धि होती है किन्तु व्यय में होने वाली आानुपातिक वृद्धि आय वृद्धि की तुलना में कम होती है अर्थात् आय वृद्धि के साथ बचत में वृद्धि भी होती है।

$$\Delta Y = \Delta C + \Delta S$$

या$\frac{\Delta C}{\Delta Y} + \frac{\Delta S}{\Delta Y} + \frac{\Delta Y}{\Delta Y}$ (दोनों ओर ΔY से भाग देने पर)

$$MPC + MPS = 1$$

कींसिय उपभोग फलन गैर आनुपातिक उपभोग फलन है ज्ञातव्य हो कि गैर आनुपातिक उपभोग फलन में उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति (MPC)तथा उपभोग की औसत प्रवृत्ति(APC) समान नहीं होती है अर्थात्APC>MPC होता है तथा MPC धनात्मक होता है कि किन्तु इकाई से कम। इसके विपरीत आनुपातिक उपभोग फलन में सदैव MPC तथा APC बराबर होते है।

आनुपातिक तथा गैर अनुपातिक उपभोग फलन को निम्नलिखित चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

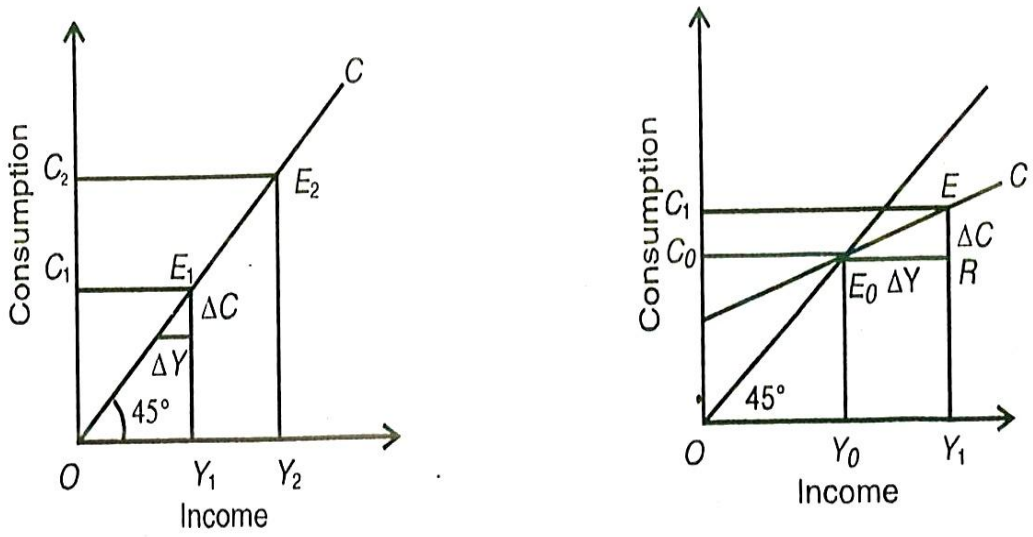

चित्र–1 में अनुपातिक उपभोग फलन को को प्रदर्शित किया है जिसमें उपभोग वक्र (C=c.Y) मूल बिन्दु से होकर जाती है इसके प्रत्येक बिन्दु परMPC तथा APCबराबर है। इसके विपरीत चित्र–2 में गैर आनुपातिक किन्तु रैखिक उपभोग फलन को प्रदर्शित किया गया है जिसमें MPCस्थिर तथा धनात्मक है किन्तु APC से कम है। चित्र से स्पष्ट है कि $0Y_1$आय पर MPC (OF/OY_1)के तथा APC/(OF/OY) बराबर है जबकि OY_1आय परMPC, $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ है जबकिAPC (OG/OY_1) है जो MPC से ज्यादा है।

आलोचना

➢ कींस मानते है कि व्यक्ति का उपभोग निरपेक्ष रूप से उसकी व्यय योग्य आय पर निर्भर करता है जिसकी आलोचना करते हुए जेम्स ड्यूजनवरी ने कहा कि व्यक्ति का उपभोग केवल उसकी व्यय योग्य व्याय पर निर्भर नहीं करता है बल्कि उस समाज की औसत उपभोग व्यय पर निर्भर करता है जिसके साथ वह रहता है तथा सामाजिक सम्बन्ध बनाता है।

➢ कींस का उपभोग फलन अल्पकालीन तथा गैर आनुपातिक है जिसमे MPC तथा APC बराबर नहीं है जबकि ड्यूजनवरी ने अपने आनुभविक अध्ययन में पाया कि दीर्घकाल में औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC)तथा सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC)बराबर होता है तथा उपभोग फलन आनुपातिक होता है।

सारांश

कींस का उपभोग फलन आधारभूत तथा मनोवैज्ञानिक है जो क्लॅासिकल उपभोग फलन के विचारों का खण्डन करता है। कींस मानते है व्यक्ति का उपभोग, उसकी व्यय योग्य आय का फलन है न कि ब्याज दर पर निर्भर करता है। कींसीय उपभोग फलन अल्पकालीन है जो रेखीय तथा गैर आनुपातिक है जिसमें औसत उपभोग प्रवृत्तिAPC तथा उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति(MPC) बराबर नहीं होती है अर्थात्APC, MPC से ज्यादा होता है। निरपेक्ष उपभोग फलन के अनुसार जैसे–जैसे आय बढ़ती जातीहै, व्यक्ति का उपभोग भी बढ़ता जाता है किन्तु उपभोग में होने वाली वृद्धि आनुपातिक रूप से आय वृद्धि की तुलना में कम होता है क्योंकि उपभोगी का मूल्य शून्य से अधिक जबकि इकाई से कम होता है अर्थात् आय वृद्धि के साथ बचत भी बढ़ता जाता है। बाजार संतुलन विश्लेषण में कींसीय उपभोग फलन बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उन कारणों की व्याख्या करने में सफल रहा है जिसके कारण अधि उत्पादन की समस्या पायी जाती है। निरपेक्ष उपभोग फलन व्यापार चकों को भी समझने हेतु महत्वपूर्ण है तथा इससे निपटने की रणनीति निर्माण हेतु आधार प्रदान करता है।

शब्दावली

औसत उपभोग प्रवृत्ति(ADC) किसी व्यक्ति के लिए कुल उपभोग तथा उसकी कुल आय का अनुपात, औसत उपभोग प्रवृत्ति कहलाता है। अर्थात्

APS = कुल उपभोग/कुल आय

औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC)

किसी व्यक्ति के लिए कुल बचत तथा कुल आय का अनुपात, औसत बचत प्रवृत्ति कहलाता है अर्थात्–

APS = कुल बचत/कुल आय

सीमांत बचत प्रवृत्ति

कुल आय में होने वाली वृद्धि के सापेक्ष, कुल बचत में होने वाली वृद्धि, बचत की सीमांत प्रवृत्ति कहलाती है अर्थात् बचत वृद्धि तथा आय वृद्धि का अनुपात, सीमांत बचत प्रवृत्ति होता है।$\mathbf{MPS} = \Delta \boldsymbol{S}/\Delta \boldsymbol{Y}$

MPSका मूल्य शून्य तथा इकाई के मध्य होता है।

व्यापार चक्र(Trade Cycle)

आर्थिक उच्चावचन संवृद्धि के बाद मंदी तथा मंदी के बाद संवृद्धि को व्यापार चक्र कहते हैं।

खण्ड–2

इकाई 02

आय निधारण का कींस का सिद्धान्त, बचत, विनियोग एवं आय में सम्बन्ध, सापेक्ष आय (ड्यूसनबेरी) परिकल्पना

इकाई की रुपेरखा–

2.1 प्रस्तावना

2.2 आय निधारण का कींसीय सिद्धान्त

2.3 आलोचना

2.4 बचत, विनियोग, एवं आय में सम्बन्ध

2.5 सापेक्ष आय परिकल्पना ड्यूसेनवरी

2.6 सापेक्ष आय परिकल्पना की आलोचना

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

कींस का आय व रोजगार निर्धारण सिद्धान्त

कींस ने अपनी पुस्तक जनरल थियरी में क्लॅासिकल आय निधारण सिद्धान्त पूर्ति अपनी मांग स्वयं पैदा करती है तथा मजदूरी लोचशीलता की कठोर आलोचना की। कींस मानते है कि रोजगार तथा आय स्तर उत्पादन क्षमता के प्रयोग पर निर्भर करता है तथा उत्पादन समता का प्रयोग प्रभावी मांग पर निर्भर करती है। अतः कींस मानते है कि प्रभावी मांग को बढ़ाकर आय तथा रोजगार स्तर बढ़ाया जा सकता है।

प्रभावी मांग, यह कींस की मूल भूत अवधारणा है। प्रभावी मांग वह बिन्दु है जिस पर अर्थव्यवस्था में समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति बराबर हो जाती है। कींसीय आय निर्धारण

मॉडल को दो क्षेत्रीय मॉडल, तीन क्षेत्रीय मॉडल तथा चार क्षेत्रीय मॉडल में विभाजित किया गया है।

दो क्षेत्रीय मॉडल

इसके अन्तर्गत केवल दो क्षेत्र पाये जाते है घरेलू क्षेत्र तथा उत्पादक अथवा व्यवसाय क्षेत्र।

मान्यताएँ

- बंद अर्थव्यवस्था अर्थात् विदेशी व्यापार नहीं पाया जाता है।
- अर्थव्यवस्था में अधि उत्पादन क्षमता पायी जाती है।
- कीमत स्तर पूर्ण रोजगार स्तर तक स्थिर है।
- समग्र आपूर्ति फलन, पूर्ण रोजगार बिन्दु तक पूर्णत लोचदार तथा उसके पश्चात् बेलोच है।
- स्वायत्व निवेश पाया जाता है।
- मुद्रा मजदूरी तथा ब्याज की दर स्थिर है।
- तकनीकि प्रगति स्थिर है तथा आय रोजगार (श्रम स्तर) पर निर्भर करता है।

कींस मानते है कि अर्थव्यवस्था में आय तथा रोजगार उस बिन्दु पर होता है जिस पर अर्थव्यवस्था में समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति बराबर हो जाती है अर्थात् जिस बिन्दु पर बचत व निवेश समानता स्थापित हो जाती है।

किसी द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में समग्र मांग व्यक्तियों तथा परिवारों की वस्तुओं तथा सेवाओं पर किया गया व्यय (C) तथा व्यवसायिक कर्मों द्वारा किया गया कुल निवेश (I) का योग होता है अर्थात्

समग्र मांग = उपभोग व्यय (C)+ निवेश व्यय (I) – (i)

इसके विपरीत अर्थव्यवस्था में समग्र आपूर्ति पूर्ति, उपभोक्ता वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन व्यय (C) तथा कुल बचत (S) के योग के बराबर होता हैं अर्थात्

समग्र पूर्ति = C+S – (ii)

अर्थव्यवस्था में संतुलन अथवा आय व रोजगार निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जिस पर समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति बराबर हो, इसे प्रभावी मांग बिन्दु भी कहते है अर्थात्

प्रभावी मांग = समग्र मांग = समग्र पूर्ति

= C+I = C+S

प्रभावी मांग = I = S

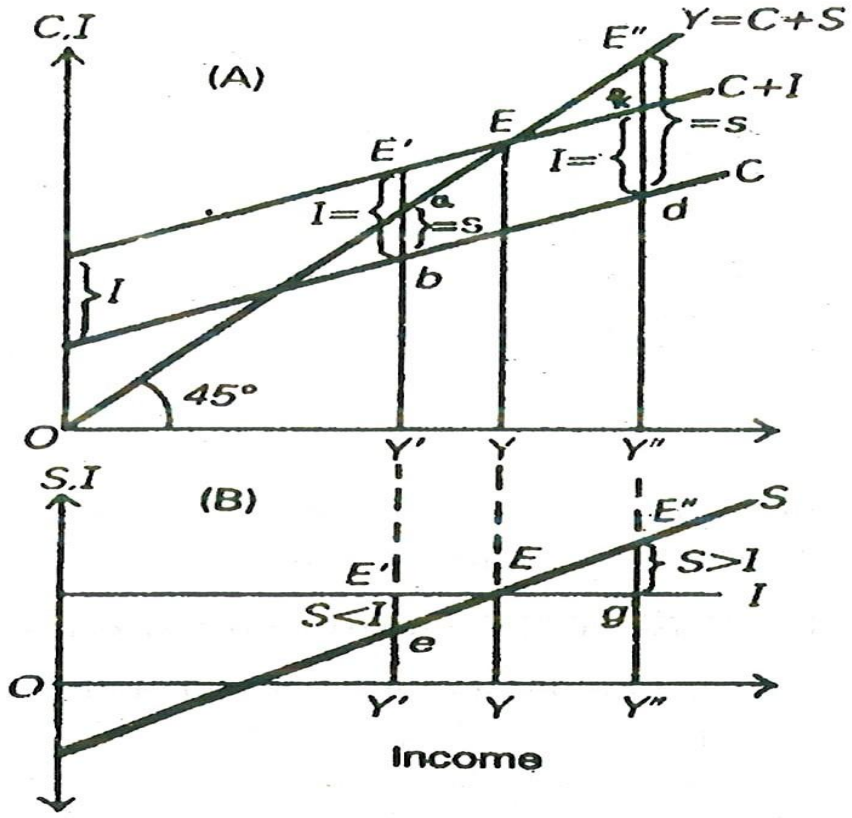

चित्र–1 के भाग (A) तथा(B) द्वारा आय और रोजगार निधारण को दर्शाया गया है। भाग (A) में X अक्ष पर उत्पादन/आय स्तर जबकि Y अक्ष पर समग्र मांग दर्शाया गया है। OS रेखा समग्र पूर्ति वक्र (C+S) है जो पूर्ण रोजगार (Y) स्तर तक पूर्णतः लोचदार है तथा उसके पश्चात् बेलोच है। बिन्दु E_2 संतुलन बिन्दु है जिस पर समग्र मांग (C+I) तथा समग्र पूर्ति बराबर है तथा संतुलन आय Y_2 है।

चित्र (B) से स्पष्ट है कि Y_2आय पर L_2श्रमिक नियोजित होते है L_1L_2जबकि श्रमिक बेरोजगार है जिन्हे समग्र मांग अथवा प्रभावी मांग बढ़ाकर रोजगार पर लगाया जा सकता है।

तीन क्षेत्रीय मॉडल में राष्ट्रीय आय निर्धारण

तीन क्षेत्रीय मॉडल में घरेलू क्षेत्र तथा व्यवसायिक क्षेत्र के साथ सार्वजनिक क्षेत्र भी पाया जाता है। इसके अन्तर्गत भी मान्यताएँ वही रहती है जो द्विक्षेत्रीय मॉडल में होता है।

तीन क्षेत्रीय मॉडल में समग्र मांग व्यक्तियों तथा परिवारों के उपभोग व्यय (C) तथा व्यवसायिक फर्मों के निवेश व्यय (I) के साथ समग्र सार्वजनिक व्यय (G) का योग होता है अर्थात्

समग्र मांग= C+I+G – (i)

इसके विपरीत समग्र पूर्ति कुल व्यय (C) कुल बचत (S) तथा कुल करारोपण(T) के बराबर होगा अर्थात् समग्र पूर्ति

समग्र पूर्ति= C+S+T – (ii)

राष्ट्रीय आय का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जिस पर समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति बराबर होती है अर्थात संतुलन के लिए

समग्र मांग समग्र पूर्ति

C+I+G = C+S+T

I+G= S+T

यहाँ (I+G) अर्थव्यवस्था में अंतर्वाह है जबकि (S+T) अर्थव्यवस्था में वहिर्वाह(outflow) है जिनके संतुलन में होने पर राष्ट्रीय आय संतुलन में होती है।

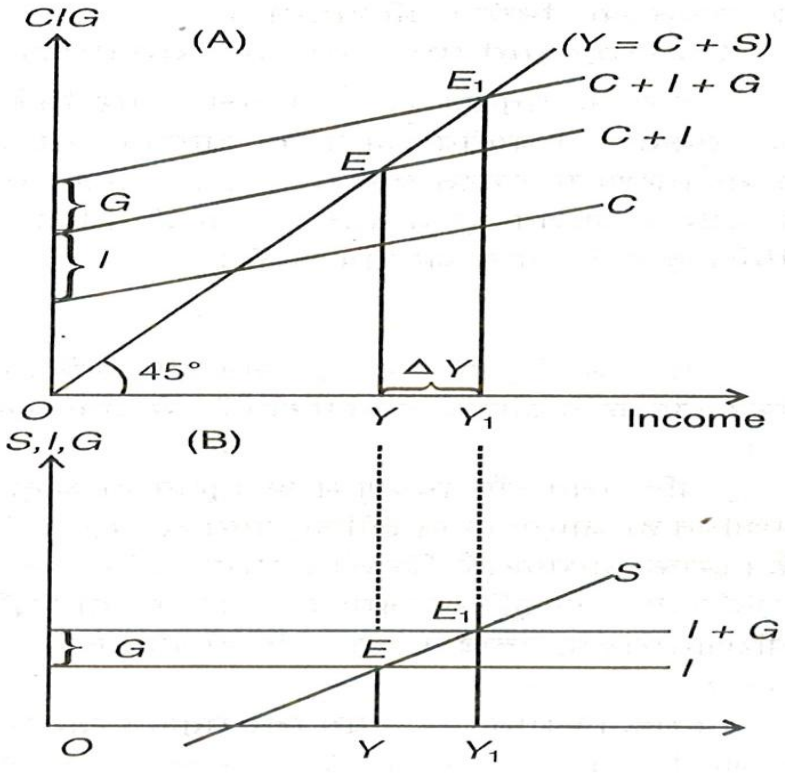

चित्र 2

चित्र–2 में X अक्ष पर आय अथवा रोजगार जबकिY अक्ष पर समग्र मांग(C+I+G) प्रदर्शित है। OSरेखा समग्र पूर्ति (C+S+T)को प्रदर्शित करता है। बिन्दु E_3संतुलन बिन्दु है जिस पर समग्र मांग(C+I+G) तथा समग्र पूर्ति (C+S+T)बराबर है तथा संतुलन आय Y_3 निर्धारित होता है। Y_3 Y_1के बराबर अधि उत्पादन क्षमता/बेरोजगारी पायी जाती है जिसे प्रभावी मांग को बढ़ाकर दूर किया जा सकता है।

चार क्षेत्रीय मॉडल

इसका सम्बन्ध मुक्त अर्थव्यवस्था से है जिसमें घरेलू क्षेत्र, व्यवसायिक क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र के साथ विदेशी क्षेत्र भी पाया जाता है। चार क्षेत्रीय मॉडल में आय निर्धारण की सभी मान्यताएँ वही है जो द्विक्षेत्रीय मॉडल में लागू होती है केवल बंद अर्थव्यवस्था की मान्यता को छोड़कर।

चार क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में समग्र मांग व्यक्तियों तथा परिवारों का उपभोग व्यय (C) व्यवसायिक फर्मों का निवेश (I) सरकारी, व्यय (G) तथा निर्यात के लिए मांग (X) का कुल योग होता है अर्थात्

समग्र मांग = C+I+G+X

इसके विपरीत समग्र पूर्ति, उपभोग वस्तु तथा सेवा पर निवेश व्यय (C) बचत (S) करारोपण (T) तथा कुल आयात (M) का योग होता है अर्थात् समग्र पूर्ति–

समग्र मांग = समग्र पूति

C+I+G+X = C+S+T+M

$$(G+X) = (S+T+M)$$

(I+G+X) अर्थव्यवस्था में अन्तर्वाह (in/low) जबकि (S+T+M) वर्हिवाह (out/low) है तथा संतुलन के लिए आवश्यक है कि अन्तर्वाह तथा वर्हिवाह बराबर है।

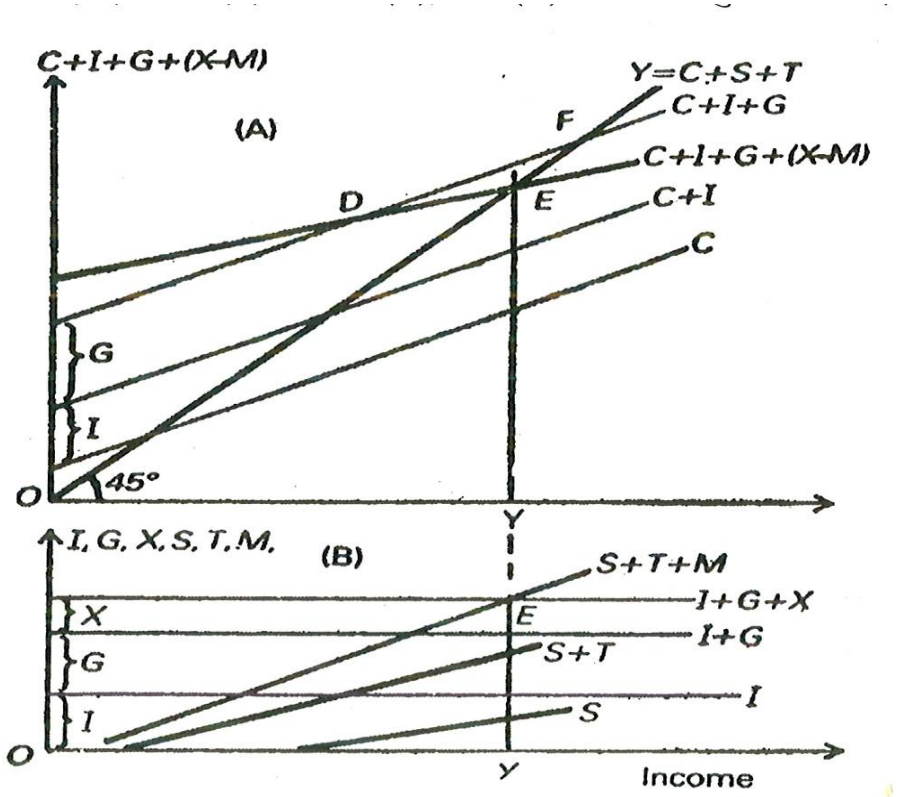

चित्र–3 में X अक्ष पर आय तथा मांग Y अक्ष पर समग्र मांग दर्शाया गया है। बिन्दु E_3 पर समग्र मांग [(C+L+G) (X-M)]तथा समग्र पूर्ति (C+S+T) बराबर है जिस पर संतुलनकारी आय OY_3 निर्धारित होती है।

आलोचना

कींस आय व रोजगार निर्धारण के लिए केवल पूर्ति पक्ष पर बल देते है जिसकी आलोचना करते हुए हिक्स और हैंसन ने मांग व पूर्ति आधारित IS-LM मॉडल द्वारा राष्ट्रीय आय निर्धारण सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

- कींस की मान्यता की पूर्ति वक्र पूर्ण रोजगार स्तर तक पूर्णतः लोचदार होगी, अव्यवहारिक है ज्ञातव्य हो कि विकासशील व अल्पविकसित देशों में कींसीय सिद्धान्त कम उपयोगी है क्योंकि इन देशों में समस्या मांग पक्ष से नहीं बल्कि पूर्ति पक्ष से है।
- ब्याज दर तथा पूर्ण रोजगार स्तर तक कीमत स्तर की स्थिरता की मान्यता अव्यवहारिक है।

- कींस का आय व रोजगार निर्धारण सिद्धान्त गुणक सिद्धान्त पर आधारित है जो स्वयं अनेक अव्यवहारिक मान्यताओं पर निर्भर है।
- पीगू प्रभाव ने भी कींसीय सिद्धान्त को चुनौती प्रदान की।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कींसीय आय व रोजगार निर्धारण सिद्धान्त न केवल मंदी से निकलने में महत्वपूर्ण है बल्कि इसने राजकोषीय नीति का भी समर्थन किया।

बचत, विनियोग तथा राष्ट्रीय आय में सम्बन्ध

राष्ट्रीय आय निर्धारण के दो मापदण्ड है प्रथम समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति समानता दृष्टिकोण तथा दूसरा बचत तथा निवेश समता दृष्टिकोण। समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति द्वारा राष्ट्रीय आय निर्धारण को हमने कींसीय आय–रोजगार निर्धारण मॉडल में समझ लिया है। यहाँ हम बचत, विनियोग तथा राष्ट्रीय आय में सम्बन्ध का विश्लेषण करेंगे।

बचत का सामान्य आशय आय के उस भाग में है जिसका उपभोग नहीं किया गया हो अर्थात्

बचत = आय – उपभोग व्यय

$S = Y - C$

या $Y = C + S$ - (i)

इसके विपरीत निवेश से आशय, आय के उस भाग से है जिसका प्रयोग वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन (पूंजीगत) पर किया जाता है अर्थात्

निवेश = आय – उपभोग व्यय

$I = Y - C$

या $Y = C + I$ - (ii)

ज्ञातव्य हो कि आय का जो भाग वस्तुओं तथा सेवाओं के उपभोग पर व्यय नहीं होता है उसी का प्रयोग उत्पादक गतिविधियों में निवेश हेतु किया जाता है। यदि किसी आय स्तर पर उद्यमियों द्वारा किया गया कुल अभीष्ट निवेश, लोगों द्वारा की जाने वाली बचत से ज्यादा होता है तो समग्र मांग बढ़ता है फलतः उत्पादन तथा रोजगार भी। इसके विपरीत

यदि उद्यमियों द्वारा किया गया कुल अभीष्ट निवेश, लोगों द्वारा की गयी बचत से कम हो तो समग्र मांग तथा उत्पादन/राष्ट्रीय आय में कमी आती है।

बचत तथा निवेश दोनों प्रवाह है। बचत का आशय राष्ट्रीय आय प्रवाह से कुल राशि का वहिर्वाह (out/low) जिससे राष्ट्रीय आय में संकुचन आता है जबकि निवेश, राष्ट्रीय आय में अंतर्वाह (Inword/low) है जिससे समग्र मांग तथा राष्ट्रीय आय में विस्तार होता है। राष्ट्रीय आय का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जहाँ अर्थव्यवस्था से निकाली गयी राशि (बचत) तथा अर्थव्यवस्था में डाली गयी राशि (निवेश) बराबर हो अर्थात् अभीष्ट बचत तथा अभीष्ट निवेश बराबर हो।

इसे समी0 (i) तथा (ii) से भी समझा जा सकता है–

$C+I = C+S$

या $I = S$

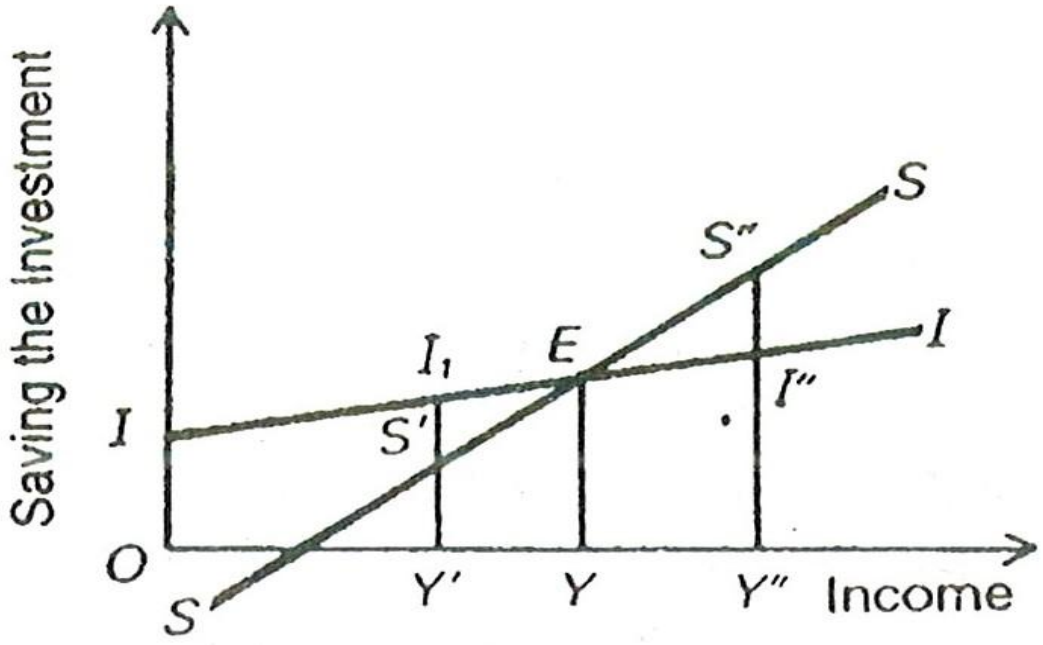

चित्र–5 में X अक्ष पर राष्ट्रीय आय तथा Y अक्ष पर समग्र बचत तथा निवेश को लिया गया है। समग्र मांग वक्र (I I') X-अक्ष के क्षैतिज है जो इस मान्यता पर आधारित है कि

आय बढ़ने पर निवेश नहीं बढ़ता अर्थात् निवेश व्यय स्वायत्त निवेश है। SS' वक्र समग्र बचत को दर्शाता है धनात्मक ढाल वाला है। बचत (SS वक्र) तथा निवेश (I I वक्र)एक दूसरे को बिन्दु E_o पर काटते है जिस पर OY_oआय निर्धारित होता है।

उपभोग का सापेक्ष आय परिकल्पना

अमेरिकी अर्थशास्त्री जेम्स डूसेनबरी ने कींसीय निरपेक्ष आय परिकल्पना को अस्वीकार करते हुए उपभोग सम्बन्धी सापेक्ष आय परिकल्पना का प्रतिपादन किया। डूसेनबरी ने अपने अनुभव जन्य अध्ययन में पाया की दीर्घकाल में उपभोग तथा आय के मध्य आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) स्थिर होती है।

कींस के विपरीत डूसेनबरी ने माना कि ''किसी परिवार का उपभोग व्यय केवल उस परिवार की आय पर निर्भर नहीं करता है बल्कि उस समाज की जिनके साथ रहता तथा सम्बन्ध स्थापित करता है की सापेक्षिक आय पर भी निर्भर करता है।'' अर्थात् किसी व्यक्ति का उपभोग उसकी स्वयं की आय पर निर्भर नहीं करता है बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि अन्य की तुलना में उसकी आय कितनी कम अथवा अधिक है। सापेक्ष आय परिकल्पना के अनुसार यदि किसी परिवार की निरपेक्ष आय बढ़े किन्तु अन्य परिवारों के सापेक्ष उसकी आय स्थिर हो तो निरपेक्ष आय बढ़ने के बाबजूद उसके उपभोग में कोई वृद्धि नहीं होती है इसके विपरीत यदि किसी परिवार की निरपेक्ष आय स्थिर हो जबकि अन्य परिवारों की सापेक्षिक आय बढ़ जाए तो निरपेक्ष आय अपरिवर्तित होने के बावजूद व्यक्ति का उपभोग व्यय अर्थात् औसत उपभोग बढ़ जायेगा। इसका कारण यह है कि कोई परिवार अपने समाज की औसत उपभोग स्तर को प्राप्त करना चाहता है इसे प्रदर्शन प्रभाव कहा जाता है।

इसके अलावा ड्सेनबरी का मानना है कि किसी परिवार का वर्तमान उपभोग व्यय, उसकी वर्तमान निरपेक्ष अथवा सापेक्ष आय पर ही निर्भर नहीं करता है बल्कि पिछली अवधि में उपलब्ध उपभोग स्तर पर भी निर्भर करता है। इसके अनुसार किसी व्यक्ति द्वारा एक बार ऊँचा उपभोग स्तर प्राप्त कर लेने के बाद उसकी निरपेक्ष या सापेक्ष आय में कमी के बावजूद निम्न उपभोग स्तर पर लौटना अत्यन्त कठिन होता है फलतः व्यक्ति के उपभोग व्यय में कमी उसकी निरपेक्ष आय में कमी की तुलना में कम होती है इसे उन्होंने रैट्च

प्रभाव कहा। रैट्च प्रभाव के कारण ही व्यक्ति आय में कमी के फलस्वरूप अपने उपभोग स्तर को तीव्रता से कम नहीं कर पाता है बल्कि पिछली अवधि के बचतों का उपभोग कर अपेक्षाकृत उसी उपभोग स्तर अथवा ऊँचे उपभोग स्तर पर बने रहने का प्रयत्न करता है।

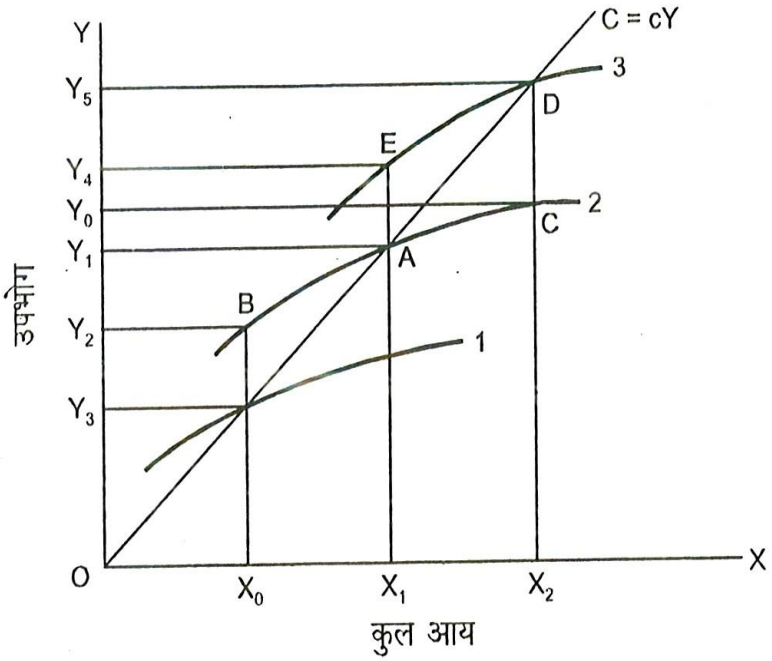

चित्र–6 में X अक्ष पर आय जबकि Y अक्ष पर उपभोग को लिया गया है। यदि व्यक्ति की OY_1 आय से बढ़कर OY_2 हो जाती है तो व्यक्ति का उपभोग बढ़कर OX_2 हो जाता है, यदि किसी कारण व्यक्ति की आय पुनः OY_1 पर आ जाये तो व्यक्ति का उपभोग C_1 वक्र के बिन्दु A पर आने के बजाए C_2 वक्र के बिन्दु C पर रहता है। इसका कारण व्यक्ति ऊँचे उपभोग स्तर पर बने रहने का प्रयत्न करता है जिसे रैट्च प्रभाव कहते है। यदि व्यक्ति की आय OY_2 से बढ़कर OY_3 हो जाता है तो व्यक्ति C_2 अल्पकालीन उपभोग वक्र के बिन्दु D पर तब तक करता है जब तक कि उसके समकक्ष वाले व्यक्तियों का उपभोग स्तर E बिन्दु पर नहीं पहुच जाता है। बिन्दु D से EQ तक पहुचना प्रदर्शन प्रभाव है।

सारांश

कींस का राष्ट्रीय आय व रोजगार निर्धारण सिद्धान्त क्लॉसिकल आय व रोजगार निर्धारण सिद्धान्त का विकल्प है। कींस ने क्लैसिकल अवधारणा पूर्ति अपनी मांग स्वयं पैदा करती हैं तथा मौद्रिक मजदूरी में कटौती द्वारा रोजगार स्तर बढ़ाया जा सकता है

का जोरदार खण्डन किया है। उनके अनुसार आय तथा रोजगार निर्धारण पूर्ति द्वारा नहीं बल्कि प्रभावी मांग द्वारा निर्धारित होती है। प्रभावी मांग वह बिन्दु है जिस पर समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति बराबर होती है। कींस मानते है कि समग्र मांग अथवा प्रभावी मांग को बढ़ाकर आय को बढ़ाया जा सकता है क्योंकि समग्र पूर्ति वक्र पूर्ण रोजगार स्तर तक पूर्णतः लोचदार होता है।

एक बन्द अर्थव्यवस्था (तीन क्षेत्रीय मॉडल) में निजी उपभोग व्यय (C) निजी निवेश व्यय (I)तथा सार्वजनिक व्यय (G)को सम्मिलित रूप से कींस ने समग्र मांग कहा अर्थात् समग्र मांग = C+I+Gहोगा। जबकि वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्माण पर C व्यय कुल बचत S तथा करारोपण T को समग्र पूर्ति कहा। उनके अनुसार राष्ट्रीय आय उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जबकि–

समग्र मांग = समग्र पूर्ति

C+I+G = C+S+T

शब्दावली

बंद अर्थव्यवस्था ऐसी अर्थव्यवस्था जिसका विदेशी आर्थिक लेन–देन शून्य हो अर्थात् विदेशी व्यापार का अभाव हो बंद अर्थव्यवस्था कहलाता है।

स्वायत्त निवेश

वह निवेश जो आय स्तर से तटस्थ हो अर्थात् आय में वृद्धि अथवा कमी से निवेश मात्रा पर कोई प्रभाव न पड़े, स्वायत्त निवेश कहलाता है।

रैट्च प्रभाव

इसकी अवधारण डूसेनबरी ने दी वह स्थिति जब उपभोक्ता ऊँचे आय में कमी के बावजूद ऊँचे उपभोग स्तर से निम्न उपभोग स्तर पर आने के बजाए स्वयं को उसी उपभोग स्तर पर बनाए रखने का प्रयास करता है, रैट्च प्रभाव कहलाता है।

राजकोषीय नीति

विशिष्ट आर्थिक उद्देश्यों जैसे पूर्ण रोजगार कीमत स्थिरता आदि की प्राप्ति हेतु सरकार द्वारा अपने आय तथा व्यय को समायोजित करने की रणनीति राजकोषीय नीति कहलाता है।

मुक्त अर्थव्यवस्था

यह बंद अर्थव्यवस्था की विपरीत स्थिति है, जब किसी देश का शेष विश्व के साथ वाधा रहित आर्थिक विनिमय (आयात तथा निर्यात) होता है, मुक्त अर्थव्यवस्था कहलाता है।

इकाई–03

स्थायी आय परिकल्पना : मिल्टन फीडमैन का उपभोग सिद्धान्त

कींसीयनिरपेक्ष आय परिपकल्पना तथा ड्यूजेनबरी की सापेक्ष आय परिकल्पना दोनों ही व्यक्ति के उपभोग को चालू आय का फलन मानते है। उनके अनुसार भविष्य में आय वृद्धि की प्रत्याशा, आय में कमी की निराशा द्वारा स्वतः समाप्त हो जायेगी। मिल्टन फिडमैन ने उपभोग को चालू आय का फलन मानने से इनकार कर दिया बल्कि उन्होंने उपभोग को स्थायी आय (Permanent Income) का फलन माना है।

फिडमैंन के अनुसार किसी व्यक्ति या परिवार की स्थायी आय दीर्घकाल में प्राप्त सम्पूर्ण प्रत्याशित आय के बराबर होती है। स्थायी आय, दीर्घकाल में मानवीय तथा गैर मानवीय गतिविधियों से प्राप्त औसत प्रत्याशित आय है। फिडमैन 'स्थायी आय से आशय उस आय से है जिसे उपभोक्ता इकाई, अपनी सम्पत्ति को पूर्ववत बनाए रखते हुए उपभोग कर सकती है।'' के रूप में परिभाषित किया है। प्रत्येक उपभोक्ता अपनी स्थायी आय का अनुमान मानवीय तथा गैर मानवीय स्रोतों से प्रत्याशित औसत आय से लगाया है। मानवीय स्रोतों से आर्जित आय में मजदूरी, वेतन लाभ आदि शामिल है जबकि गैर मानवीय स्रोत में लगान किराया, सम्पत्ति मूल्य वृद्धि इत्यादि शामिल है।

फिडमैन किसी आर्थिक इकाई की मापित आय(Meausted Income) को दो भागों में विभाजित किया है– स्थायी आय (Permanet Income) तथा अस्थायी आय (Transitory Income) उनके अनुसार किसी व्यक्ति की मापित आय (Yt)स्थायी आय (Yt)से कम अथवा अधिक हो सकती है जो अस्थायी आय% की प्रकृति पर निर्भर करता है। यदि अस्थायी आय % धनात्मक हो तो मापित आय Ym, स्थायी आय (Yt)से कम जबकि (Yt)के ऋणात्मक होने पर Ym स्थायी आय (Yp) से कम होगा।

$Ym = Yp+Yt-(i)$

यदि अस्थायी आय (Y_1) शून्य हो तो मापित आय (Ym) तथा स्थायी आय (Y_p),बराबर होंगे। अस्थायी आय, आकस्मिक आर्थिक घटनाओं जैसे– बोनस, मूल्य में अचानक वृद्धि, आग तथा हड़ताल आदि पर निर्भर करता है।

फ्रीडमैन ने मापित उपभोग (Cm) को स्थायी उपभोग(CP) तथा अस्थायी (C_+) उपभोग का योगफल (Ct) माना है अर्थात्–

$$Cm = Cp+Ct- (ii)$$

अस्थायी आय (Y) के समान अस्थायी उपभोग(C_+) भी अप्रत्याशिल घटनाओं पर निर्भर करता है जैसे– भारी छूट (Big Sel) की स्थिति में उपभोग बढ़ जाता है। जबकि आय में अप्रत्याशित कमी (जैसे– रिटायरमेंट, नौकरी छूटना आदि) की स्थिति में उपभोग कम हो जाता है फलतः अस्थायी उपभोग धनात्मक, ऋणात्मक तथा शून्य हो सकता है। यदि अस्थायी उपभोग (C_+) शून्य हो तो मापित उपभोग (Cm),स्थायी उपभोग के (Cp) बराबर होगा जबकि (C_+)के धनात्मक होने की दशा में Cm>Cpहोगा और विलीमशः भी।

फ्रिडमैन ने अपने अनुभविक अध्ययन में पाया कि स्थायी उपभोग(Cp) तथा स्थायी आय (Yp)के मध्य निश्चित आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC),स्थायी उपभोग Cp तथा स्थायी आय(CP) का एक निश्चित अनुपात (Cp/Yp) होता है।वे मानते है कि दीर्घकाल में आय में अप्रत्याशित वृद्धि तथा कमी एक दूसरे को स्वतः निरस्त कर देते है फलतः स्थायी उपभोग स्थायी आय का एक निश्चित भाग बना रहता है तथा दीर्घकाल में तथा बराबर होते है। फ्रिडमैन के अनुसार स्थायी उपभोग(CP) तथा स्थायी आयYp के मध्य निम्नवत् फलनात्मक सम्बन्ध पाया जायेगा।

$Cp = KYp$

$Cp = K (r. w.u) Yp$

जहाँ $K = (r. w.u)$

यहाँK(गुणांक), ब्याज की दर(r) गैर मानवीय सम्पत्ति (w)तथा उपभोक्ता की उपभोग प्रवृत्ति (u)का फलन है। K उपभोग की स्थायी आय सीमांत प्रवृत्ति है अर्थात् दीर्घकाल मेंAPC=MPC है।

फ्रिडमैन स्थायी उपभोग तथा स्थायी आय के मध्य प्रतिपादित आनुपातिक सम्बन्ध के संदर्भ में निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रदान करते है–

1. स्थायी आय (Yp)तथा अस्थायी आय (Y_+)के मध्य शून्य सह सम्बन्ध पाया जाता है।
2. स्थायी उपभोग (Cp) तथा अस्थायी उपभोग C_+ के मध्य शून्य सहसम्बन्ध पाया जाता है।
3. स्थायी उपभोग(Cp) तथा स्थायी आय (Yp) के मध्य धनात्मक सह सम्बन्ध होता है।
4. अस्थायी आय (Y_+) तथा अस्थायी उपभोग (C_+)के मध्य शून्य सह सम्बन्ध पाया जाता है, इसका आशय है कि जब आस्थायी आय धनात्मक होता है तो कुल उपभोग में कोई वृद्धि नहीं होती इसके विपरीत Y_+ के ऋणात्मक होने की दशा में कुल उपभोग में कोई कमी नहीं होती है। आय में अप्रत्याशित वृद्धि अथवा कमी बचत में होने वाली वृद्धि अथवा कमी द्वारा समायोजित हो जायेग फलतः उपभोग अप्रभावित रहेगा।

कोई व्यक्ति अपनी स्थायी आय परिकल्पना के आधार पर अपना उपभोग निश्चित करता है, फलतः उपभोग फलन दीर्घकालिक उपभोग फलन की प्रकृति का होगा अर्थात् स्थायी उपभोग, उसकी स्थायी आय का एक निश्चित अनुपात K होगा। स्थायी आय परिकल्पना एक दीर्घकालीन प्ररिकल्पना है फलतः व्यापार चक्रों के साथ इसमें उतना परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि अभिवृद्धि की अवस्था में Y के धनात्मक होने के कारण मापित आय (Ym) स्थायी आय(YP) से अधिक होगी। चूँकि Y_+से सम्बद्ध MPC शून्य होती है फलतः उपभोग, वास्तविक/मापित आय के अनुपात में नहीं आभिव्यक्त होगा और विलोमशः भी।

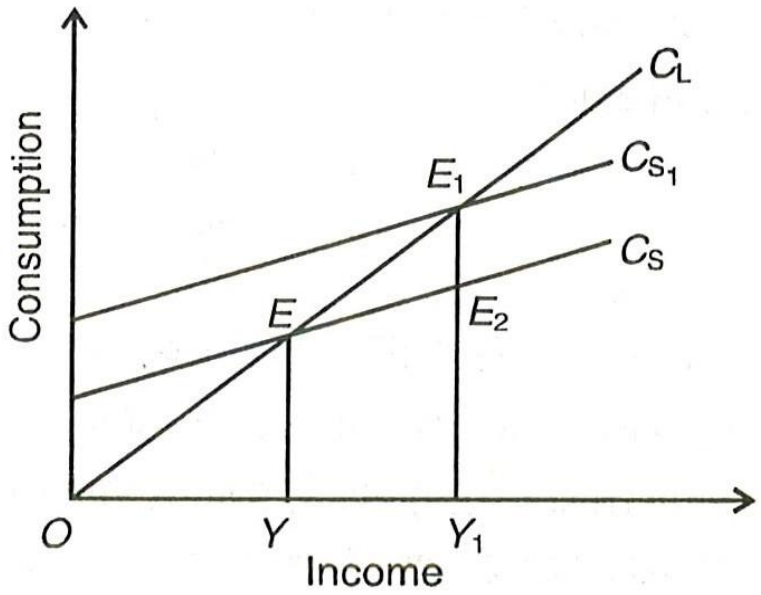

चित्र में C_Lरेखा दीर्घकालीन उपभोग फलन है जो C_P+K,YP को अभिव्यक्त करता है। इसके प्रत्येक बिन्दु पर APC=MPC है फलतः यह आनुपातिक उपभोग फलन है। Cs गैर आनुपातिक उपभोग फलन है जहाँ मापित आय में स्थायी आय तथा अस्थायी आय दोनों भाग शामिल है और इसमें स्थायी उपभोग तथा अस्थायी उपभोग भी शामिल है। गैर आनुपातिक वक्र (Cs)आनुपातिक वक्र (C_L)को बिन्दु E पर काटती है स्पष्ट है कि OY आय पर स्थायी आय तथा मापित आय समान है इसी प्रकार स्थायी उपभोग तथा मापित उपभोग समान है। बिन्दुE पर अस्थायी आय तथा अस्थायी उपभोग नहीं पाया जाता है। यदि उपभोक्ता की आय बढ़करOY_1 हो जाती है तो इस स्तर पर मापित उपभोग Y_1 E_2 के बराबर जबकि स्थायी आयY_1 E_1 के बराबर है चूँकि स्थायी उपभोग, स्थायी आय का फलन है अतः उपभोक्ता के उपभोग व्यय में वृद्धि होगा फलतः उसका उपभोग फलनCs_1 हो जायेगा। इसप्रकार OY_1आय पर उपभोक्ता Y_1 E_2उपभोग करेगा।

आलोचना

- फ्रिडमैन की यह अवधारणा कि अस्थायी आय तथा उपभोग के मध्य शून्य सह सम्बन्ध होता है अव्यवहारिक है क्योंकि उपभोक्ता व्यवहार इसके उलट परिणाम देता है।

- फ्रीडमैन मानते है सभी आय समूहों की APC समान होती है किन्तु यह परिवारों के सामान्य व्यवहार के विरूद्ध है क्योंकि निर्धन व्यक्ति धनी व्यक्ति के विपरीत अपनी वर्तमान उपभोग जरूरतों को प्राथमिकता देता है फलतः निर्धन परिवारों की बचत उनकी आय के सापेक्ष कम जबकि धनी वर्गों की बचत उनकी आय के सापेक्ष अधिक होता है।
- मानवीय तथा गैर मानवीय आय में अन्तर अत्यन्त भ्रामक व अस्पष्ट है।

सारांश

कींस की निरपेक्ष आय परिकल्पना तथा ड्यूजनवरी की सापेक्ष आय परिकल्पना दोनों उपभोग को वर्तमान व्यय योग आय का फलन मानते है। मिल्टन फ्रिडमैन ने इसका खण्डन करते हुए कहा कि व्यक्ति का उपभोग उसकी वर्तमान व्यय योग्य आय पर नहीं बल्कि स्थायी आय पर निर्भर करता है। स्थायी आय से उनका आशय उस आय से है, जिसे उपभोक्ता इकाई अपनी आय को पूर्ववत् बनाए रखते हुए उपभोग कर सकती है। फ्रिडमैन मापित आय/वास्तविक आय को स्थायी आय Yp तथा अस्थायी आय Y+का योग मानते है अर्थात्–

$$Ym = Yp+Y_t$$

स्थायी आय को वे दीर्घ काल में मानवीय तथा गैर मानवीय स्रोतों से आर्जित औसत आय के रूप में लेते है। इसी प्रकार फ्रीडमैन मापित उपभोग(Cm) को स्थायी उपभोग (Cp)तथा अस्थायी उपभोता(C_+) का योग माना तथा अपने निष्कर्ष में पाया कि केवल स्थायी उपभोग तथा स्थायी आय Yp के मध्य फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है स्थायी आय तथा अस्थायी उपभोग/स्थायी उपभोग में शून्य सह–सम्बन्ध पाया जाता है। फ्रीडमैन ने अपने विश्लेषण में पाया दीर्घकाल में स्थायी उपभोग, स्थायी आय का एक निश्चित अनुपातK होता है अर्थात् Cp=kYpहोता है।

शब्दावली

उपभोग

वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से किसी वस्तु अथवा सेवा की उपयोगिता को अवशोषित किया जाता है अथवा नष्ट किया जाता है, उपभोग कहलाता है।

उपभोक्ता

वह आर्थिक इकाई जो किसी वस्तु अथवा सेवा की उपयोगिता को अवशोषित करता है अथवा नष्ट करता है उपभोक्ता कहलाता है। उपभोग फलन, उपभोग तथा आय के मध्य पाये जाने वाले फलनात्मक सम्बन्ध को उपभोग फलन कहते है।

इकाई–04

उपभोग का जीवन चक्र परिकल्पना

एवं

उपभोग को प्रभावित करने वाले गैर आर्थिक कारक

इकाई की रुपरेखा–

4.1 प्रस्तावना

4.2 जीवन चक्र परिकल्पना

4.3 उपभोग को प्रभावित करने वाले गैर आर्थिक कारक

4.4 आलोचना

उपभोग की जीवन चक्र परिकल्पना

निरपेक्ष उपभोग परिकल्पना एवं सापेक्ष उपभोग परिकल्पना उपभोग को वर्तमान व्यय योग्य आय का फलन मानता है जिसकी आलोचना करते हुए अल्बर्ट एण्डो मोदग्लिपानी तथा ब्रमबर्ग ने उपभोग का जीवन चक्र परिकल्पना प्रतिपादित किया। फ्रीडमैन की स्थायी आय परिकल्पना की भाँति उपभोग की जीवन चक्र सिद्धान्त भी मानता है कि किसी व्यक्ति का उपभोग उसकी वर्तमान व्यय योग्य आय पर नहीं बल्कि उसकी सम्पूर्ण जीवनकाल की आय तथा सम्पत्ति के वर्तमान मूल्य पर निर्भर करता है।

मान्यताएँ

- उपभोक्ता के सम्पूर्ण जीवनकाल में कीमत स्तर स्थिर है।
- उपभोक्ता को उत्तराधिकार में कोई सम्पत्ति नहीं मिलती और न ही कोई सम्पत्ति छोड़ता है अर्थात् उसकी निवल सम्पत्ति स्वयं की बचत का परिणाम है।
- व्याज की दर स्थिर है।

मोदग्लियानी मानते है कि उपभोक्ता का उपभोग उसके सम्पूर्ण जीवन काल में आर्जित सम्पत्ति (मानवीय+गैर मानवीय आय) के वर्तमान मूल्य पर निर्भर करता है। उपभोग अपने

जीवनकाल में अर्जित/उपलब्ध सम्पत्ति द्वारा अपने जीवन अवधि में कुल उपयोगिता अधिकतम करने का प्रयास करता है। फलतः वह अपने जीवन काल में लगभग स्थिर उपभोग योजना बनाता है चाहे उसकी आय परिवर्तनशील क्यों न हो। जीवन चक्र परिकल्पना के अनुसार आय तथा उपभोग के मध्य निम्नवत् सम्बन्ध पाया जाता है–

$C_+ = KVt$

जहाँC_+ = चालू उपभोग

K = उपभोग गुणांक

V_+किसी व्यक्ति का शेष जीवन अवधि में उपलब्ध सम्पूर्ण संसाधनों का वर्तमान मूल्य।

मोदग्लियानी के अनुसार किसी व्यक्ति की सम्पूर्ण जीवन काल में उपलब्ध संसाधन, व्यक्ति की निवल सम्पत्ति का मूल्य तथा गैर सम्पत्ति स्रोत से वर्तमान में अर्जित आय तथा भविष्य में गैर सम्पत्ति स्रोत से अर्जित कुल प्रत्याशित आय का वर्तमान मूल्य होगा। इस प्रकार गैर सम्पत्ति स्रोत से चालू आय तथा गैर सम्पत्ति स्रोत से भविष्य में अर्जिय आय को शामिल करने पर उपभोग फलन निम्नवत् होगा–

$C+ = a\ Y+^{n} + {}^{b}A\ (+-1) – (i)$

जहाँ C_+ = चालू अवधि का उपभोग, $a\ Y+^{n}= t$ अवधि में गैर सम्पत्ति स्रोतों से अर्जित आय तथा $bA\ (t-1) = (t-1)$ अवधि में निवल सम्पत्ति मूल्य है।

समी0 से स्पष्ट है कि व्यक्ति का वर्तमान चालू उपभोग उसकी वर्तमान आय का फलन होकर उसके जीवन काल में अर्जित सम्पूर्ण आय सम्पत्ति स्रोत+गैर सम्पत्ति स्रोत के वर्तमान मूल्य का फलन है। a तथाb स्थिरांक है जो दर्शाता है कि व्यक्ति का दीर्घकालीन उपभोग, उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का निश्चित अनुपात है अर्थात् दीर्घकालीन उपभोग फलन में आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है a तथा b औसत उपभोग प्रवृत्ति तथा सीमांत उपभोग प्रवृत्ति MPC समान होता है।

जीवन चक्र परिकल्पना के अनुसार व्यक्ति के जीवनकाल में आय का स्वरूप व्यक्ति के उम्र के साथ परिवर्तित होता है, जैसे जैसे आयु बढ़ती है आय प्रवाह बढ़ता है तथा

उच्चतम सीमा के बाद आय प्रवाह घटता है फलतः अधिकतम उपयोगिता के लिए व्यक्ति सम्पूर्ण जीवन अवधि की अर्जित आय के वर्तमान मूल्य के अनुसार उपभोग योजना बनाता है।

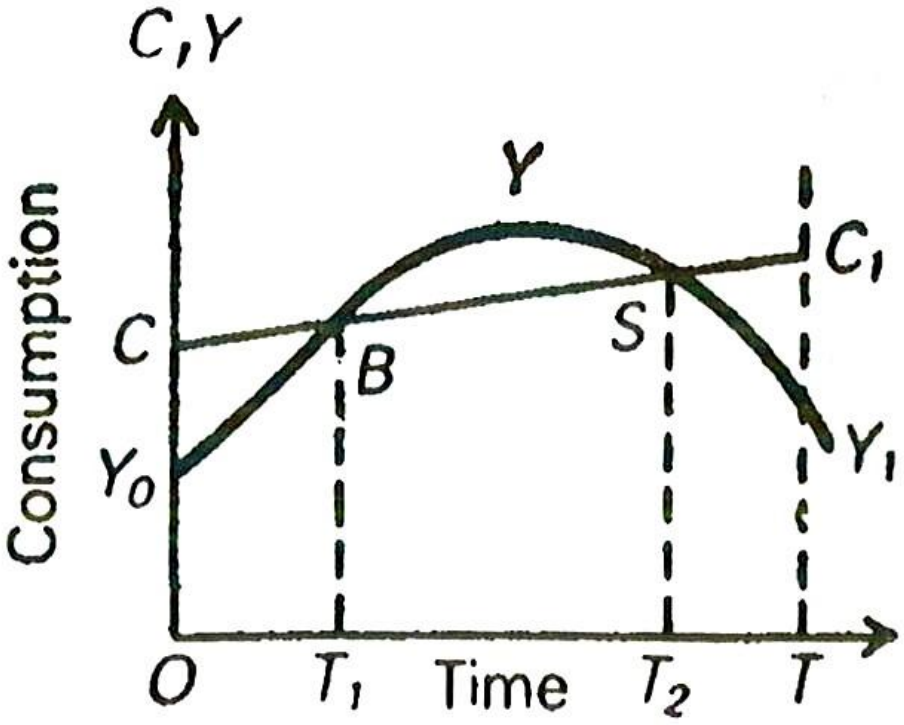

चित्र में Y_1 Y_2व्यक्ति के जीवन काल में आय प्रवाह जबकिC_1 C_2 उपभोग प्रवाह को दशाया गया है। स्पष्ट है कि रोजगार की अवधि के साथ उसकी आय बढ़ती है तथा T_2 समय पर उसकी आय अधिकतमT_2 B हो जाती है। C_1 C_2उपभोग वक्र है जो समय के साथ निश्चित दर से बढ़ रहा है, T_1 अवधि पर व्यक्ति का उपभोग उसकी आय से अधिक है अर्थात् उसकी सम्पत्ति संचय ऋणात्मक है इस अवधि में वह ऋण लेकर उपभोग करता है। बिन्दु A सेC के मध्य उसकी आय, उपभोग व्यय से अधिक है अतिरेक आय का प्रयोग वह ऋण चुकाने तथा सम्पत्ति बनाने में करता है। Cबिन्दु जब व्यक्ति सेवानिवृत्त हो जाता है तो उसकी आय, उसके उपभोग से कम है जिसे वह जीवन अवधि में अर्जित सम्पत्ति से पूरा करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन अवधि में औसत उपभोग प्रवृत्ति लगभग स्थिर बनी रहती है।

आलोचना

- कीमत स्तर तथा व्याज दर स्थिरता की मान्यता अव्यवहारिक है।
- व्यक्ति का उपभोग व्यक्ति की परिसम्पत्तियों के साथ प्रत्यक्ष सम्बद्ध नहीं होता है क्योंकि कभी–कभी उपभोक्ता सम्पत्ति बढ़ाने के लिए उपभोग कम कर देता है
- उपभोक्ता सदैव विवेकी नहीं होता है।
- उपभोग को प्रभावित करने वाले गैर आर्थिक चरों की उपेक्षा।

उपभोग को प्रभावित करने वाले गैर आर्थिक चर

किसी व्यक्ति के उपभोग को अनेक आर्थिक तथा गैर आर्थिक चर प्रभावित करते है आर्थिक चरों में व्यक्ति की आय,कीमत स्तर आदि शामिल है जबकि गैर आथ्रिक चरों में निम्नवत् शामिल है–

- **उपभोक्ता की रूचियाँ तथा फैशन,** समय के साथ उपभोक्ता की रूचियाँ, फैशन तथा आदते बदलती जाती है फलतः उपभोक्ता का उपभोग प्रतिरूप भी बदलता जाता है।
- **उम्र,** उम्र के साथ व्यक्ति की रूचि, आदत तथा प्राथमिकता बदती जाती है। जिससे उनका उपभोग प्रतिरूप बदल जाता है जैसे युवावस्था में फास्ट फूड व मॉल, सिनेमा आदि के प्रति आकर्षण बढ़ता है।
- **प्रदर्शन प्रभाव,** व्यक्ति जिस आय समूह के बीच रहता है उसकी उपभोग प्रवृत्ति से प्रभावित होता है जैसे मध्यम वर्गीय परिवार जब उच्च आय वर्ग के साथ रहने लगता है तो उसकी उपभोग प्रवृत्ति बदल जाती है।
- **स्वास्थ व मानसिक स्थिति,** बीमार व्यक्ति की उपभोग दशाएँ व आदते स्वस्थ व्यक्ति से भिन्न हो जाती है।
- अप्रत्याशित लाभ तथा हानि, अप्रत्याक्षित आर्थिक व गैर आर्थिक घटनाएँ उपभोग को प्रभावित करती है जैसे अचानक तालबंदी, (जैसे लॉक डाउन), हड़ताल आदि व्यक्ति के उपभोग को कम कर देते।

सारांश

मोदग्लियानी का उपभोग का जीवन चक्र परिकल्पना निरपेक्ष आय परिकल्पना, सापेक्ष आय परिकल्पना तथा स्थायी आय परिकल्पना के संदर्भ में महत्वपूर्ण सुधार है। उपभोग का जीवन चक्र परिकल्पना भी फ्रीडमैन की स्थायी आय परिकल्पना की भॉति मानता है कि व्यक्ति का उपभोग उसकी चालू आय पर नही उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति (मानवीय तथा गैर मानवीय स्रोत) आय के वर्तमान मूल्य पर निर्भर करता है। व्यक्ति अपने सम्पूर्ण संसाधनों का इस प्रकार आवण्टन करता हे जिससे उसे अपनी जीवन अवधि में अधिकतम उपयोगिता प्राप्त है हो फलतः उसकी उपभोग प्रवृत्ति दीर्घ काल में लगभग स्थिर बनी रहती है। जीवन चक्र परिकल्पना भी मानता है कि दीर्घकालीन उपभोग फलन आनुपातिक होगा तथा APC और MPC बराबर होंगे।

शब्दावली

व्यय योग्य आय

व्यक्ति की कुल आय का वह भाग जो व्यय करने हेतु उपलब्ध हो, व्यय योग्य आय कहलाता है।

ब्याज दर

व्यक्ति को उसके बचत अथवा वर्तमान उपभोग के त्याग के बदले जो प्रतिफल मिलता है व्याज दर कहलाता है। बचत तथा व्याज दर में धनात्मक सह सम्बन्ध पाया जाता है।

प्रदर्शन प्रभाव

इसकी अवधारणा जेम्स ड्यजनबरी ने दिया। इसके अनुसार व्यक्ति का उपभोग केवल उसकी आय पर निर्भर नहीं करता है बल्कि इस समाज की औसत उपभोग पर निर्भर करता है जिनके साथ वह रहता है इसे प्रदर्शन प्रभाव कहा।

उपभोग(Consumtion)

वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से किसी वस्तु अथवा सेवा की उपयोगिता अवशोषित अथवा नष्ट की जाती है।

इकाई 05

विनियोग एवं पूंजी निर्माण का सिद्धान्त : कींस का सिद्धान्त

5.1 प्रस्तावना

5.2 विनियोग की परिभाषा

5.3 विनियोग के प्रकार

5.4 पूंजी निर्माण

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

पूर्व के अध्याय में हमने पढ़ा कि राष्ट्रीय आय तथा रोजगार का निर्धारण उस बिन्दु पर जिस समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति बराबर हो। समग्र मांग के दो भाग है– उपभोग मांग तथा निवेश मांग। कींसीय आय व रोजगार मॉडल में अल्पकाल में उपभोग की सीमांत प्रवृत्तिMPC स्थिर होती है फलतः निवेश आय तथा रोजगार का महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। अल्पकाल में विनियोग की मात्रा जितनी अधिक होती है, राष्ट्रीय आय तथा रोजगार का स्तर उतना ही ज्यादा होगा।

निवेश की परिभाषा

निवेश अथवा विनियोग को आय के उस भाग के रूप में जाना जाता है जिससे उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है अर्थात् आय का वह भाग जो उत्पादक गतिविधियों में प्रयुक्त होता है विनियोग। निवेश कहलाता है। जब कोई व्यक्ति कम्पनियों के शेयरो, बाण्ड अथवा वित्तीय प्रतिभूतियों में निवेश करता है तो इस वित्तीय निवेश कहते है जबकि वास्तविक निवेश उसे कहते है वास्तविक पूंजी में वृद्धि अथवा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। अर्थशास्त्र में मशीनों, फैक्टरियों, तकनीकों दुकानो इत्यादि में किए गये पूंजी निवेश को ही, निवेश कहा जाता है।

निवेश के प्रकार

अर्थशास्त्र में निवेश दो प्रकार का होता है– स्वायत्व निवेश तथा प्रेरित निवेश।

स्वायत्त निवेश Autonomous Inestment

स्वायत्त निवेश से आशय उस निवेश से है जिस पर आय परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात् आय परिवर्तन तथा निवेश परिवर्तन के मध्य शून्य यह सम्बन्ध पाया जाता है। कींस ने अपने गुणक तथा आय व रोजगार निर्धारण मॉडल में स्वायत्त विनियोग को शामिल किया है। जनसंख्या वृद्धि के कारण फैक्टरियों एवं पूंजीगत पदार्थ (जैसे– मशीनों, तकनीकों आदि) तथा सरकार द्वारा स्कूल, कालेज, सड़क, इत्यादि पर निवेश स्वायत्त निवेश है जो राष्ट्रीय पर निर्भर नहीं करता है।

प्रेरित निवेश Induced Indestment

प्रेरित निवेश से आशय उस निवेश से है जिस पर आय परिवर्तन का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है अर्थात् आय बढ़ने के साथ प्रेरित निवेश बढ़ता है और विलोमशः भी। इस प्रकार राष्ट्रीय आय तथा प्रेरित निवेश के मध्य धनात्मक सह सम्बन्ध पाया जाता है। जे0एम0 क्लार्क ने अपने त्वरक सिद्धान्त में प्रेरित निवेश अवधारणा का ही प्रयोग किया है।

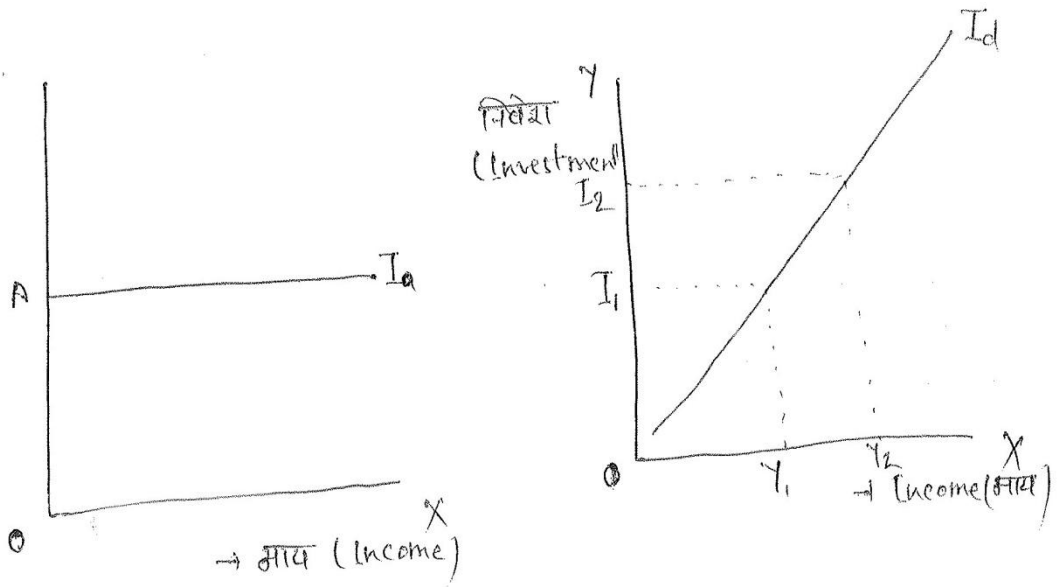

चित्र–1 में स्वायत्त विनियोग जबकि चि–2 में प्रेरित विनियोग को दर्शाया गया है। चित्र–1 से स्पष्ट है कि स्वायत्त विनियोग रेखाAIa अक्षX के समान्तर है अर्थात् आय बढ़ने के बावजूद निवेश OP मात्रा पर स्थिर है।

वही चित्र–2 में Id निवेश रेखा धनात्मक ढाल वाला है जो प्रदर्शित करता है कि आय बढ़ने पर निवेश बढ़ जाता है। % आय पर निवेशOI है जबकिOY_2 पर निवेशOI_2 हो गया।

कींस का निवेश सिद्धान्त Keyne's Innestment Theory

समष्टि भावी अर्थशास्त्र में आय तथा रोजगार निर्धारण में निवेश अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कींस मानते है कि कोई उत्पादक निवेश सम्बन्धी निर्णय दो चरो के आधार पर लेता है प्रथम निवेश से लाभ की प्रत्याशित दर जिसे कींस पूंजी की सीमांत उत्पादकता/दक्षताMarginal etticiency of capital की संज्ञा दी और दूसरा व्याज की दर। कोई व्यक्ति अपनी बचतों को प्रचलित ब्याज दर पर ऋण दे सकता है अथवा लाभ की आशा में निवेशित कर सकता है। कोई निवेश तभी लाभकारी होगा यदि निवेश से प्राप्त लाभ की प्रत्याशित दर, कम से कम ब्याज दर के बराबर अथवा उससे अधिक है। अतः नये निवेश के लिए आवश्यक है कि लाभ की प्रत्याशित दर, ब्याज दर से ऊँची हो।

ज्ञातव्य हो कि निवेश सम्बन्धी निर्णय में ब्याज दर की तुलना में पूंजी की सीमांत दक्षता अथवा प्रत्याशित लाभ की दर अधिक महत्वपूर्ण होती है क्योंकि अल्पकाल में ब्याज दर लगभग स्थिर होता है इसके विपरीत लाभ की प्रत्याशाओं में परिवर्तन के कारण पूंजी की सीमांत दक्षता अधिक परिवर्तनशील है। अतः पूंजी की सीमांत दक्षता, निवेश निर्धारण में महत्वपूर्ण अवयव है।

पूंजी की सीमांत दक्षता का आशय ''बट्टे की उस दर से है जो किसी पूंजी परिसम्पत्ति के सम्पूर्ण जीवन काल की प्रत्याशित वार्षिक आयों के वर्तमान मूल्य को उस मशीन की पूर्ति कीमत के बराबर कर दें।'' सरल शब्दों में कहा जाए तो पूंजी की सीमांत दक्षता वह दर है जो किसी पूंजीगत परिसम्पत्ति से प्राप्त होने वाली भावी शुद्ध आय को उस सम्पत्ति के वर्तमान मूल्य के बराबर कर दे। किसी परिसम्पत्ति से उसके सम्पूर्ण जीवन काल में अर्जित आय को भावी सम्भावित आय कहते है।

माना किसी परिसम्पत्ति की लागत अथवा पूर्ति कीमत C है तथा इसी पूंजी परिसम्पत्ति से विभिन्न वर्षों में प्राप्त प्रत्याशित आय क्रमशःR_1, R_2, R_3, ...Rn हो तो पूंजी की सीमांत दक्षा को निम्नवत् सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है।

$$C = \frac{R1}{(l+i)} + \frac{R2}{(l+i)2} + \frac{R3}{(l+i)3} + \cdots \frac{R1}{(l+i)n}$$

जहाँ (i)पूंजी की सीमांत दक्षता है जो ब्याज दर (r) से भिन्न होता है।

कींस मानते है कि कोई उत्पादक, विनियोग हेतु पूंजी की सीमांत दक्षता(i) की तुलना बाजार ब्याज दर (r) से करता है। वह विनियोग तभी करता है जबकि पूंजी की सीमांत दक्षता (i) ब्याज दर से अधिक हो। जैसे–जैसे निवेश बढ़ता जाता है उससे मिलने वाला प्रत्याशित लाभ की दर छटती जाती है फलतः पूंजी की सीमांत दक्षता गिरती जाती है। इसके दो कारण है प्रथम–पूंजीगत परिसम्पत्ति में निवेश, पूंजीगत वस्तुओं की कीमत को बढ़ा देती है दूसरी उपभोग वस्तुओं की बढ़ती मात्रा सामान्य कीमत स्तर को कम कर देती है। इस प्रकार पूंजी की सीमांत उत्पादकता वक्र नीचे गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल वाला होगा।

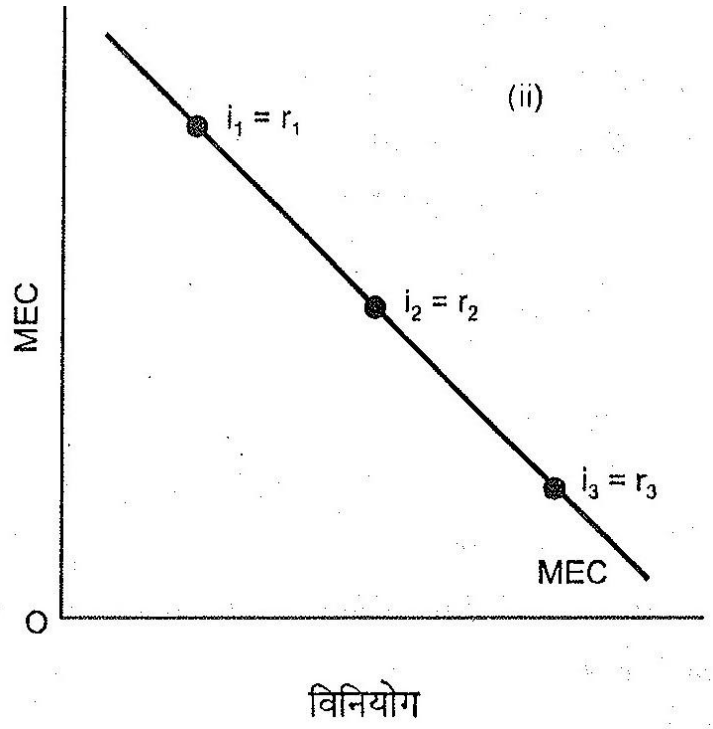

चित्र संख्या 3 में X अक्ष पर निवेश मात्रा I जबकि Y अक्ष पर पूंजी की सीमांत उत्पादकताMPC तथा ब्याज दर को दर्शाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि r_1 ब्याज दर परOI_1 निवेश किया जाता है जिस पर पूंजी की सीमांत दक्षता i_1ब्याज दरr के बराबर है।

यदि ब्याज दर घटकर r_2हो जाता है तो निवेश की मात्रा OL_1से बढ़करOL_2 हो जाती है जिसके कारण पूंजी की सीमांत दक्षताi_1 से कम होकरi_2 हो जाती है। इस प्रकार हम देखते है कि पूंजी की सीमांत दक्षता से कम होकर हो जाती है। इस प्रकार हम देखते है कि पूंजी की सीमांत दक्षता वक्र ही विभिन्न ब्याज दरों पर निवेश मांग को व्यक्त करता है।

सारांश

कींसीय आय तथा रोजगार निर्धारण सिद्धान्त में निवेश महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि कींस मानते है कि अल्पकाल में उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति MPC स्थिर होती है। अर्थशास्त्र में निवेश के दो प्रकार होते है प्रथम स्वायत्त निवेश जबकि दूसरा प्रेरित निवेश। कींस ने जहाँ अपने गुणक तथा आय निर्धारण मॉडल में स्वायत्त अथवा स्वतंत्र निवेश अवधारणा का प्रयोग किया है वही क्लार्क ने त्वरक सिद्धान्त की व्याख्या के लिए प्रेरित निवेश की।

निवेश एक प्रकार का उत्पादक व्यय होता है जिससे राष्ट्रीय आय तथा उत्पादक क्षमता में वृद्धि होती है। कींस मानते है कि कोई निवेशक निवेश सम्बन्धी निर्णय दो तत्वों के आधार पर लेता है प्रथम निवेश से प्राप्त प्रत्याशित लाभ की दर अर्थात् पूंजी की सीमांत उत्पादकता तथा दूसरा ब्याज की दर। कींस मानते है कि अल्पकाल में ब्याज की पर लगभग स्थिर होती है जबकि लाभ प्रत्याशा में परिवर्तन के कारण पूंजी की सीमांत दक्षता परिवर्तनशील अतः निवेश निर्णय में पूंजी की सीमांत उत्पादकता महत्वपूर्ण हो जाती है। कोई निवेशक तभी निवेश करेगा जबकि पूंजी की सीमांत उत्पादकता, ब्याज दर के बराबर अथवा उससे अधिक हो।

शब्दावली

त्वरक

इसकी अवधारणा जे0एम0. क्लार्क ने दिया। जब निवेश के फलस्वरूप आय व मांग में वृद्धि होती है तो उसे पूरा करने के लिए निवेश बढ़ता है जो आय वृद्धि की तुलना में अधिक होती है।

यदि आय वृद्धि ΔY हो तथा पूंजी उत्पादक अनुपात $\propto$ हो तो निवेश वृद्धि

$$\Delta I = \propto . \Delta Y$$

$$\propto = \frac{\Delta I}{\Delta Y} = \text{त्वरक}$$

निवेशक

वह व्यक्ति अथवा आर्थिक इकाई जो लाभ प्रेरणा अथवा उद्देश्य से पूंजी निवेश करता है निवेशक कहलाता है।

व्याज दर

लोगों को उनके वर्तमान उपभोग के ब्याज अथवा बचत के बदले मिलने वाला प्रतिफल, ब्याज दर कहलाता है।

अल्पकाल

अर्थशास्त्र में अल्प काल वह समय अवधि है जिसमें उत्पादन का कम से कम एक साधन गैर परिवर्तन शील हो अर्थात् उत्पादन के समस्त साधनों में परिवर्तन सम्भव न हो।

इकाई 06

गुणक एंव त्वरव सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा–

6.1 भूमिका

6.2 गुणक सिद्धान्त

6.3 आलोचना

6.4 त्वरक सिद्धान्त

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

कींसीय आय तथा रोजगार निर्धारण सिद्धान्त में गुणक एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। गुणक सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रयोग कैम्ब्रिज अर्थशास्त्री एफ0ए0 कॉहन ने दिया किन्तु इनका गुणक, रोजगार गुणक था जिसे कींस ने अधिक व्यवस्थित करते हुए अपनी पुस्तक 'जनरल थ्योरी' में निवेश गुणक के रूप में प्रस्तुत किया।

गुणक सिद्धान्त

कींस मानते है कि अर्थव्यवस्था में जब स्वायत्व विनियोग बढ़ता है तो राष्ट्रीय आय, विनियोग की तुलना में अधिक बढ़ती है। यदि किसी समय अर्थव्यवस्था में निवेश वृद्धि ΔI हो तो आय में वृद्धि–

$$\Delta Y = K.\Delta I$$

या $K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$

जहाँ K गुणक है। स्पष्ट है कि गुणक, निवेश परिवर्तन के सापेक्ष आय में होने वाले परिवर्तन को मापता है। किसी निवेश के फलस्वरूप आय में कितनी वृद्धि होगी यह गुणक

मूल्य पर निर्भर करता है। गुणक मूल्य जितना ज्यादा होगा निवेश के फलस्वरूप आय में वृद्धि उतना ही अधिक होगा और विलोमशः भी।

गुणक तथा उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति MPCमें सम्बन्ध

निवेश गुणक का मूल्य, उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। दोनों के मध्य सम्बन्धों का व्यूत्पादन निम्नवत् किया जा सकता हैं–

किसी समय बिन्दु पर अर्थव्यवस्था में समग्र आय Y कुल उपभोग C तथा कुल निवेश I के बराबर होता है अर्थात्

Y=C+I

यदि अर्थव्यवस्था में निवेश वृद्धि (ΔI)हो तथा उपभोग वृद्धि (ΔC)हो तो आय वृद्धि(ΔY)

$$\Delta Y = \Delta C + \Delta I -(i)$$

कींसीय उपभोग फलन$C = Co + CY$ होता है जिसमें Co स्वायत्त उपभोग जबकि C उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति है जो आय परिवर्तन पर निर्भर करता है।

यदि आय में परिवर्तन ΔY हो तो उपभोग में परिवर्तन

$$\Delta C = C.\Delta Y$$

समी0 (i)में ΔC का मान रखने पर

$$\Delta Y = C.\Delta Y + \Delta I$$

या $\Delta Y - C.\Delta Y = \Delta I$

या $\Delta Y = \frac{\Delta I}{I-C} = \frac{1}{I-MPC}$

$= \frac{1}{I-MPC} = \frac{1}{MPS}$गुणक

ज्ञातव्य हो कि MPC+MPS=1 होता है अतः MPS=1-MPC होगा।

स्पष्ट है किMPC का मूल्य जितना ज्यादा होगा गुणक (K)का मूल्य उतना ही अधिक होगा फलतः निवेश के फलस्वरूप आय विस्तार उतना ही ज्यादा होगा और विलोमशः भी। ज्ञातव्य हो कि MPC का मूल्य शून्य तथा एक के मध्य होता है फलतः गुणक का मूल्य इकाई व अनन्त के मध्य होगा।

गुणक अवधारणा को एक गणतीय उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। यदि किसी अर्थव्यवस्था में 500 करोड़ का विनियोग हो तथा MPC = 0-θहो तो विनियोग के फलस्वरूप आय में वृद्धि

$\Delta Y = \frac{1}{1-MPC}$(निवेश वृद्धि)$\Delta I$

$$\Delta Y = \frac{500}{1.0.8} = \frac{500}{0.2}$$

$\Delta Y = 2500$ करोड़ रूपये

स्पष्ट है कि 500 करोड़ निवेश के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में रू0 2500 करोड़ की वृद्धि होगी।

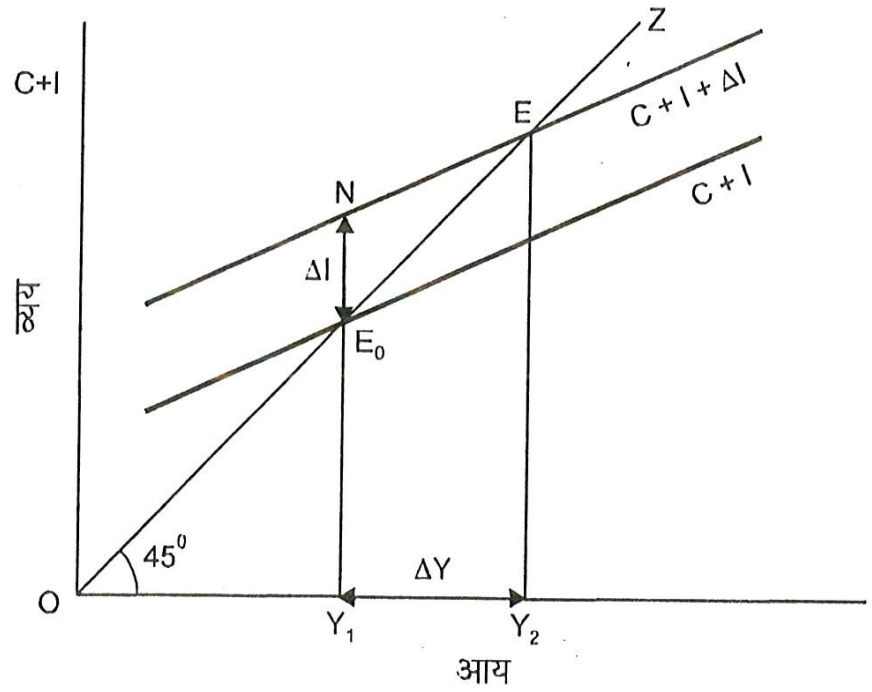

चित्र–1 में X अक्ष पर राष्ट्रीय आय तथा Y अक्ष पर उपभोग तथा निवेश को लिया गया है। स्पष्ट है कि निवेश में ΔI वृद्धि के कारण गुणक प्रभाव के कारण राष्ट्रीय आय में निवेश की तुलना में अधिक $\Delta Y = K.\Delta I$ वृद्धि अर्थात् होती है।

आलोचना

- गुणक सिद्धान्त लागू होने के लिए आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में अधि उत्पादन क्षमता पायी जाती है।
- गुणक सिद्धान्त इस मान्यता पर कार्य करता है कि किसी क्षेत्र का विनियोग अन्य क्षेत्रों में होने वाले विनियोग को प्रभावित नहीं करता है।
- आय प्रवाह में रिसाव की दशा में गुणक सिद्धान्त अप्रभावी हो जाता है।
- बंद अर्थव्यवस्था में क्रियाशील
- **अल्पविकसित** देशों में अव्यवहारिक, ज्ञातव्य हो कि कींसीय गुणक मूल्य, उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति जितनी ज्यादा होगी गुणक मूल्य उतना ही ज्यादा होगा फलतः निवेश के कारण राष्ट्रीय आय में उतनी ही ज्यादा वृद्धि होगी। अल्पविकसित देशों में लोगों की उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति अधिक होती है अतः इन देशों में निवेश के फलस्वरूप आय तीव्र गति से बढ़नी चाहिए किन्तु

व्यवहार में ऐसा नहीं पाया जाता है। इसका कारण उन दशाओं में है जिस पर गुणक क्रियाशील होता है जैसा कि बी0के0आर0वी0 राव ने अपने अध्ययन में पाया। गुणव के क्रियाशीलन के लिए निम्नवत् दशाएँ आवश्यक है–

1. अनैच्छिक बेरोजगारी
2. निष्क्रिय उत्पादन क्षमता का होना।
3. पूंजीगत वस्तुओं की पूर्ति पूर्णता लोचदार हो।

अल्पविकसित देशों में अनैच्छिक बेरोजगारी के बजाए प्रछन्न बेरोजगारी अधिक पायी जाती है। इसके अलावा इन देशों में पूंजीगत वस्तुओं की पूर्ति अपेक्षाकृत बेलोच होती है फलतः निवेश के कारण ऊँची MPCके फलस्वरूप वस्तुओं व सेवाओं की मांग तेजी से बढ़ती है जबकि वस्तुओं व सेवाओं की आपूर्ति उस गति से नहीं बढ़ जाती है जिससे ये देश मुद्रा स्फीति की समस्या में फंस जाते है।

त्वरक सिद्धानत $\boldsymbol{Accelerator\ Theory}$

कींसीय गुणक सिद्धान्त निवेश के फलस्वरूप आय में होने वाले विस्तार की व्याख्या तो करता है किन्तु आय वृद्धि का उत्पादन अथवा मांग वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या करता है। आय वृद्धि का समग्र मांग तथा उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या के लिए जे0 एम0 क्लार्क ने त्वरक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

त्वरक सिद्धान्त आय वृद्धि के सापेक्ष निवेश वृद्धि की दर को मापता है। जब राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो उपभोग वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग बढ़ती है जिसको पूरी करने के लिए निवेश प्रेरित होता है तथा निवेश में होने वाली यह वृद्धि आय वृद्धि की तुलना में ज्यादा होती है। माना उत्पादन की निश्चित मात्राΔY के कारण प्रेरित निवेश ΔI है तो

$$\Delta I = \alpha . \Delta Y$$

या त्वरक $\alpha = \frac{\Delta I}{\Delta Y}$

जहाँ αत्वरक है जो पूंजी उत्पाद अनुपात को दर्शाता है।

मान्यताएँ

- उपभोग वस्तु के संदर्भ में उत्पादन क्षमता का अभाव पाया जाता है।

- पूंजीगत उद्योग में अतरिक्त उत्पादन क्षमता पायी जाती है।
- पूंजी उत्पाद अनुपात स्थिर है।
- उत्पादन के साधन पूर्णतः सहजीय तथा विभाज्य है।

त्वरक का व्युत्पादन

यदिt अवधि पूंजी स्टॉक K_{+}हो तथा राष्ट्रीय उत्पादY_{+}हो जबकि (t-1)अवधि में पूंजी स्टॉक $K\ (t-I)$हो तथा राष्ट्रीय आय $Y\ (t-i)$ हो तो पूंजी स्टॉक में वृद्धि

$$Kt - K(t-1) = \alpha\ (Yt - Y\ (t-I)$$

या $\Delta It = \alpha\ .\Delta Yt$

जहाँ α त्वरक है, स्पष्ट है कि वर्ष t में गत वर्ष $(t-i)$ की तुलना में आय वृद्धि $(Yt - Y(t-i)$के फलस्वरूप निवेश It का αगुना वृद्धि होगी। इसे एक गणतीय उदाहरण से समझा जा सकता है। यदि+अवधि में राष्ट्रीय आय 500 करोड़ हो तथा$(t-i)$ अवधि में रू0 400 करोड़ हो तो आवश्यक निवेश वृद्धि यदि पूंजी उत्पाद अनुपात 3 हो तो–

$$\Delta I = (Yt - Yt - i)\alpha$$

$$\Delta I = 3X(500 - 400)$$

$\Delta I = 300$करोड़

स्पष्ट है कि रू0 100 करोड़ आय वृद्धि के लिए रू0 300 करोड़ निवेश की आवश्यकता होगी।

आलोचना

- स्थिर पूंजी उत्पाद अनुपात की अव्यवहारिक मान्यता।
- पूंजीगत वस्तुओं की पूर्ति पूर्णतः लोचदार नहीं होती है।
- यदि उपभोग उद्योग में अतरिक्त समता उपस्थित हो तो त्वरक सिद्धान्त लागू नहीं होता है।

शब्दावली

पूंजी–उत्पाद अनुपातः– एक इकाई उत्पाद प्राप्त करने के लिए आवश्यक पूंजी निवेश की मात्रा पूंजी उत्पाद अनुपात कहलाता है।

बचत की सीमांत प्रवृत्ति MPS

आय में होने वाले वृद्धि के सापेक्ष कुल बचत में होने वाली वृद्धि बचत की सीमांत प्रवृत्ति कहलाती है।

$$\text{MPS} = \frac{\Delta Y}{\Delta S}$$

निवेश *Investment*

आय का वह भाग जो उत्पादक गतिविधियों में निवेश किया जाता है, निवेश कहलाता है।

खण्ड–03

आर्थिक विकास के सामान्य सिद्धान्त

इकाई–1

आर्थिक विकास के सिद्धान्त–प्रतिष्ठित सिद्धान्त

इकाई की रुपेरखा–

1.1 भूमिका

1.2 रिकार्डो का आर्थिक विकास मॉडल

1.3 आलोचना

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

प्रतिष्ठित आर्थिक विकास सिद्धान्त

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों एड्म स्मिथ, रिकार्डो आदि ने अपने–अपने आर्थिक विकास सम्बन्धी दृष्टिकोण दिए। प्रतिष्ठित आर्थिक विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों की समझ विकसशील व अल्पविकसित देशों में निवेश व आर्थिक विकास प्रक्रिया को तीव्र करने में महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करती है। एड्म स्मिथ ने पूंजी संचय व मार्केट विस्तार के माध्यम से आर्थिक विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने का समर्थन किया। स्मिथ की तुलना में डेविड रिकार्डो का आर्थिक विकास सिद्धान्त अधिक व्यवस्थित व विश्लेषणात्मक है जो प्रतिष्ठित आर्थिक विकास सिद्धान्त में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

रिकार्डो का आर्थिक विकास मॉडल

रिकार्डो का आर्थिक विकास मॉडल वास्तव में राष्ट्रीय आय का वितरण सिद्धान्त ही है। अपने मॉडल में उन्होने बताया कि किस प्रकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया स्वयं ही अर्थव्यवस्था को गतिहीनता की स्थिति में पहुचा देगी।

मान्यताएँ

- कृषि भूमि की पूर्ति स्थिर है तथा कृषि में क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम लागू होता है
- मल्शिस का जनसंख्या सिद्धान्त लागू होता है अर्थात् मजदूरी स्तर सदैव निर्वाह मजदूरी के बराबर होगी क्योंकि यदि मजदूरी निर्वाह मजदूरी से ज्यादा होगी तो जनसंख्या बढेगी तथाा मजदूरी घट कर निर्वाह स्तर पर आ जायेगी और विलोमशः भी।
- लाभ, पूंजी संचय व पूंजी निर्माण के लिए प्रेरणा स्रोत है जो आर्थिक विकास निर्धारक का महत्वपूर्ण तत्व है।
- रिकार्डो का आर्थिक विकास सिद्धान्त प्रावैगिक मॉडल है क्योंकि यह समय अवधि विश्लेषण प्रस्तुत करता है।
- रिकार्डो मॉडल में राष्ट्रीय आय का वितरण भूमि, साहसी तथा श्रमिको के मध्य होता है जिन्हे क्रमशः लगान, लाभ व मजदूरी प्राप्त होती है।
- पूर्ण प्रतियोगिता तथा पूर्ण रोजगार की मान्यता।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार परा रिकार्डो ने अपना आर्थिक विकास का सिद्धान्त दिया। इसके अनुसार समग्र राष्ट्रीय आय का वितरण भू–स्वामी, मजदूर व पूंजीपति के मध्य लगान, मजदूरी तथा लाभ के रूप में होगा। ज्ञातव्य हो कि लाभ पूंजी संचय के लिए प्रेरणा है जो आर्थिक विकास निर्धारण में महत्वपूर्ण है। रिकार्डो मानते है कि पूंजी–पति अपने लाभों को पुनः निवेश करते जायेंगे जिससे रोजगार स्तर व उत्पादन में वृद्धि होती जायेगी, किन्तु आर्थिक विकास की प्रक्रिया के साथ राष्ट्रीय आय में लगान व मजदूरी का भाग बढ़ता जायेगा जबकि लाभों का अंश गिरता जायेगा जो अंततः शून्य हो जायेगा। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में लाभ पूर्णतः समाप्त हो जायेगे और अर्थव्यवस्था गतिहीनता की स्थिति में आ जायेगी। ज्ञातव्य हो कि रिकार्डो मानते है कि भू–स्वामी उत्पादन में कोई योगदान नहीं करता है क्योंकि वह लगान का निवेश करने के बजाए उपभोग कर लेता है।

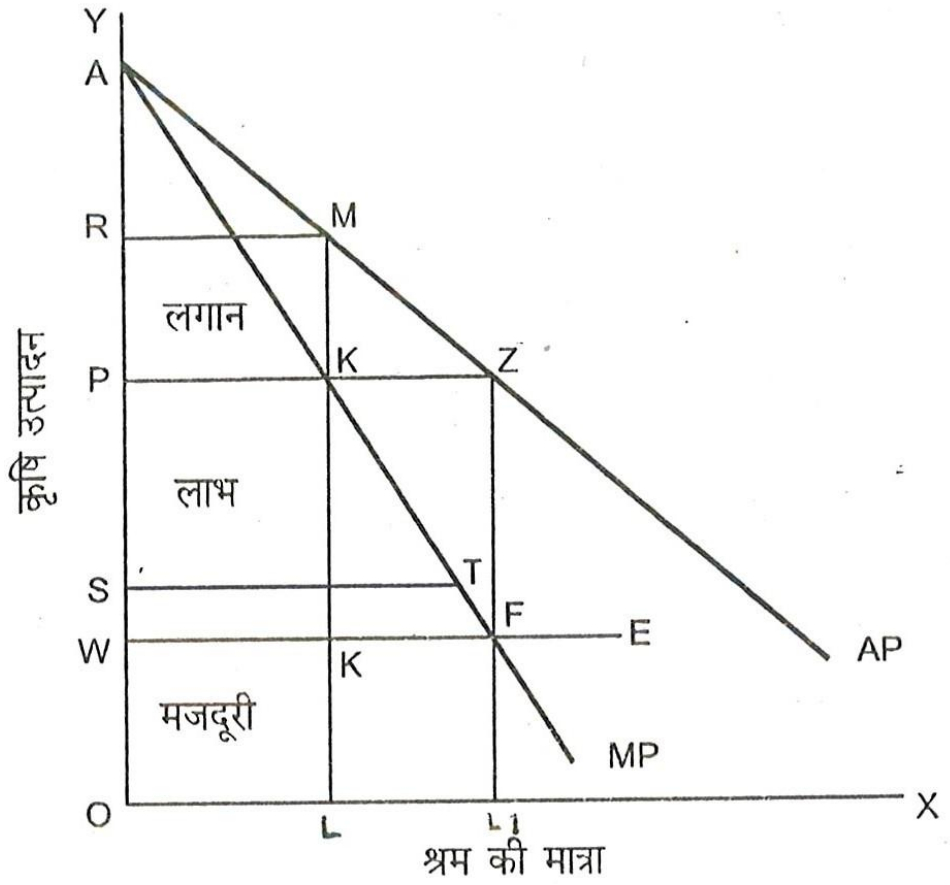

चित्र–1 में X अक्ष पर श्रमिको की मात्रा तथा Y अक्ष पर औसत उत्पादकता (AP) तथा सीमान्त उत्पादकता (MP) को मापा गया है। OW, निर्वाह मजदूरी को प्रदर्शित करता है। प्रारम्भ में OL श्रमिको को रोजगार पर लगाया जाता है जिस पर श्रमिको की औसत उत्पादकता QL अथवा QP है तथा सीमांत उत्पादकता LR अथवा OS है। रिकार्डो मानते है कि औसत उत्पादकता तथा सीमांत उत्पादकता का अन्तर लगान होगा अर्थात्

लगान– (कुल उत्पादन–सीमांत उत्पादन) X श्रमिको की संख्या

= OPQL-OSRL

= PQRS

इस प्रकार क्षेत्रफल PQRS के बराबर लगान होगा तथा शेष आय लाभ व मजदूरी में वितरित होगा जो क्रमशः क्षेत्रफल (SRTW) तथाा क्षेत्रफल (OWTL) के बराबर है। पूंजीपति प्राप्त लाभ का पुनः निवेश करेगा जिससे रोजगार की मात्रा तथा कुल उत्पादन

बढ़ जायेगा। क्रमागत उत्पादन ह्रास के कारण श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता तथा औसत उत्पादकता दोनों गिर जायेगी। चित्र से स्पष्ट है कि यदि श्रमिकों की मात्रा OL_1 हो जाती है तो सीमांत उत्पादकता घटकर, निर्वाह मजदूरी OW के बराबर हो जाती है इस स्थिति में कुल लगान क्षेत्रफल ABCW के बराबर जबकि कुल मजदूरी क्षेत्रफल WCL_1O के बराबर है जबकि लाभ का मूल्य शून्य हो जाता है। इस प्रकार OL श्रम मात्रा पर अर्थव्यवस्था गतिहीनता की स्थिति में आ जायेगी।

इस प्रकार रिकार्डो मानते है कि जैसे–जैसे निवेश व रोजगार बढ़ता जायेगा, कुल उत्पादन में लगान तथा मजदूरी का अंश बढ़ता जायेगा जबकि लाभ का अंश घटता जायेगा जो अंततः शून्य हो जायेगा यह आर्थिक गतिहीनता की स्थिति होगी। किस प्रकार जनसंख्या वृद्धि के कारण लगान के बाद बचा हुआ भाग प्रभावित होगा तथा कब तक पूंजी संचय होगा तथा कब गतिहीनता की स्थिति आयेगी इसे निम्न चित्र से समझा जा सकता है।

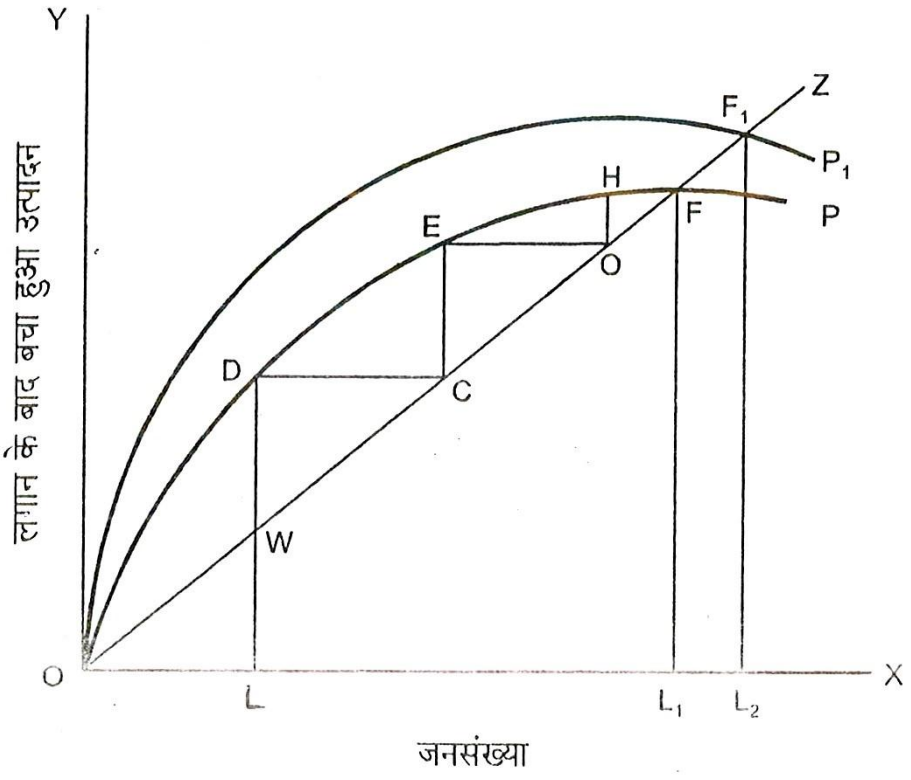

चित्र–2 में OP रेखा लगान के बाद शेष उत्पाद को प्रदर्शित करता है जबकिX अक्ष पर श्रमिको की संख्या को दर्शाया गया है। TW रेखा मूल बिन्दु से खीची गयी है जो स्थिर मजदूरी (निर्वाह मजदूरी) को दर्शाती है। OL श्रम की मात्रा पर लगान निकालने के पश्चात् कुल उत्पाद LB है जिससे LA के बराबर मजदूरी जबकि AB लाभ होगा। रेखा चित्र से स्पष्ट है कि जैसे–जैसे श्रमिको की संख्या बढ़ती जायेगी OP-TW का अन्तर अर्थात् लगान घटता जायेगा जबकि मजदूरी का अंश बढ़ता जायेगा। (चित्र से स्पष्ट है कि लाभ का अंश AB<C*D* <EF<GH घटता जायेगा) बिन्दुI पर लाभ की मात्रा शून्य होगी तथा अर्थव्यवस्था स्थिरावस्था अथवा गतिहीनता की स्थिति में होगी। रिकार्डो मानते है कि तकनीकि परिवर्तन द्वारा OP को OP_1 पर विवर्तित कर गतिहीनता को कुछ समय के लिए टाला जा सकता है किन्तु हमेशा के लिए नही।

आलोचना

- रिकार्डो का आर्थिक विकास सिद्धान्त अव्यवहारिक मान्यताओं पर आधारित है।
- रिकार्डो के आर्थिक विकास सिद्धान्त सम्बन्धी निष्कर्ष जैसे गतिहीनता अथवा स्थिरावस्था वास्तविक जीवन में नहीं पायी गयी।
- माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त स्वयं संदिग्ध है।
- रिकार्डो की यह मान्यता व्यवहारिक नही है कि आर्थिक विकास के साथ लाभ की दर तथा लाभ की हिस्सेदारी गिरती जायेगी।

सारांश

खण्ड–03

इकाई–02

मार्क्स तथा शुम्पीटर का आर्थिक विकास सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा–

2.1 भूमिका

2.2 मार्क्स का आर्थिक विकास सिद्धान्त

2.3 आलोचना

2.4 शुम्पीटर का आर्थिक विकास सिद्धान्त

2.5 आलोचना

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों एड्म स्मिथ तथा रिकार्डो की भाँति कार्ल मार्क्स भी मानते है कि समय के साथ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था स्वयं गतिहीन अवस्था (ध्वस्त) में आ जायेगी। रिकार्डो जहाँ इसका कारण राष्ट्रीय आय में लाभ के अंश में सत्त कमी मानते है वही मार्क्स पूंजी की समावयी संयोजन में विरूपण को मानते है। दास कैपिटल के प्रसिद्ध लेखक कार्ल मार्क्स मानते है कि पूंजवादी के अर्थव्यवस्था के विनाश के बीज स्वयं उसी में निहीत है।

मार्क्स का आर्थिक विकास सिद्धान्त

साम्यवाद के प्रणेता कार्लमार्क्स ने आर्थिक विकास का जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया आय–वितरण का सिद्धान्त उसका मूल है। रिकार्डो की भॉति मार्क्स भी मानते है कि आर्थिक विकास के साथ राष्ट्रीय आय में लाभ का अंश घटता जायेगा किन्तु रिकार्डो के विपरीत इसका कारण वे पूंजी की समावयी संयोजन मानते है।

मान्यताएँ

➢ समाज में केवल दो वर्ग है पूंजीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग अतः राष्ट्रीय आय का वितरण इन्ही वर्गो के बीच क्रमशः लाभ तथा मजदूरी के रूप में होगा।

➢ मूल्य का श्रम सिद्धान्त लागू होता है, अर्थात् किसी वस्तु का मूल्य उसमें शामिल श्रम घटों से निर्धारित होता है।

➢ अतिरेक मूल्य सृजन की क्षमता केवल श्रम में निहीत है अर्थात् मार्क्स मानते है कि पूंजीगत परिसम्पत्ति तथा कच्चे माल मूल्य का सृजन नहीं करते है बल्कि केवल अपने मूल्य को ही वस्तु में स्थानांतरित करते है। जबकि श्रम उत्पादन प्रक्रिया में अपने श्रम मूल्य से अधिक सृजन करता है। अतिरेक मूल्य मार्क्सवादी आर्थिक विकास सिद्धान्त का आधार है। मार्क्स मानते है कि किसी वस्तु की कीमत तथा उसके उत्पादन में शामिल श्रम को दी गयी मजदूरी का अन्तर, अतिरेक मूल्य होता है। यदि किसी वस्तु से प्राप्त विक्रय आय P हो, उसमें शामिल श्रम की मजदूरी W हो तो अतिरेक मूल्य S

$$S = P-W$$

अतिरेक मूल्य को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। यदि कोई श्रमिक एक दिन में 10 घंटे का श्रम करता है किन्तु वह केवल 4 घंटे में ही इतना उत्पादन कर ले जो उसके जीवन निर्वाह मजदूरी (न्यूनतम मजदूरी) के बराबर हो तो 10–4=6 श्रम घंटा, अतिरेक मूल्य होगा।

➢ मजदूरी जीवन निर्वाह के बराबर होगा, रिकार्डो के विपरीत इसका कारण मार्क्स औद्योगिक रिजर्व सेना को मानते है।

उपर्युक्त मान्यताओं को लेते हुए मार्क्स मानते है कि किसी वस्तु के मूल्य में तीन तत्व शामिल होते है–

1. स्थिर पूंजी (C), इसके अन्तर्गत पूंजीगत उत्पाद तथा कच्चे माल आते है जो उत्पादक प्रक्रिया में केवल अपना मूल्य स्थानांतरित करते है।

2. परिवर्तनीय पूंजी (V),श्रमिको को दी जाने वाली मजदूरी को मार्क्स परिवर्तनीय पूंजी कहते है। मार्क्स मजदूरी को परिवर्तनीय पूंजी इसलिए कहते है कि उत्पादन प्रक्रिया में वह अपने मूल्य को परिवर्तित करते हुए अतिरेक मूल्य सृजित करती है।

3. **अतिरेक मूल्य** (S), श्रमिक द्वारा अपने मूल्य से अधिक सृजन, अतिरेक मूल्य है।

मार्क्स मानते है कि स्थिर पूंजी (C) मूल्य ह्रास से नष्ट हो जाती है अतः किसी वस्तु का निवल मूल्य उत्पाद(S+V) के बराबर होता है। (S+V) का ही विभाजन, मजदूरी तथा लाभ के मध्य होता है। स्पष्ट है कि अतिरेक मूल्य की वृद्धि, परिवर्तनीय पूंजी पर निर्भर करती है, मार्क्स अतिरेक मूल्य तथा परिवर्तनीय पूंजी के अनुपात(S/V) को अतिरेक मूल्य की दर कहते है।

अतिरेक मूल्य की दर (S/V) को मार्क्स शोषण की दर भी कहते है। यह पूंजीवादी प्रणाली में पूंजी संचय का आधार है फलतः पूंजीपति वर्ग अतिरेक मूल्य की दर को बढ़ाने का प्रयत्न करता है। मार्क्स मानते है कि अतिरेक मूल्य की दर बढ़ाने के तीन मार्ग है–

(A) अतिरिक्त श्रम के घंटे, बढ़ाकर

(B) मजदूरी दर कम करके, किन्तु मार्क्स मानते है कि मजदूरी सदैव निर्वाह स्तर पर रहेगी, इसका कारण वे औद्योगिक रिजर्व सेना (श्रम की मांग की तुलना में श्रम की अधिक पूर्ति) मानते है

(C) श्रम की उत्पादकता बढ़ाकर अर्थात यंत्रीकरण को बढ़ाकर।

मार्क्स मानते है कि अतिरेक मूल्य बढ़ाने के प्रथम दो भागों की एक सीमा है फलतः पूंजीपति तीसरे मार्ग अर्थात् यंत्रीकरण का चयन करता है। यंत्रीकरण से श्रम की उत्पादकता बढ़ जाती है फलतः अब कम श्रमिको से ही अधिक उत्पादन सम्भव है फलतः श्रमिको की छटनी होती है जिससे परिवर्तनीय पूंजी (V) में कमी तथा अतिरेक मूल्य(S) में वृद्धि होती है।

पूंजी संचय तथा तकनीकि प्रगति

मार्क्स के अनुसार कि तकनीकि प्रगति, पूंजी संचय पर निर्भर करती है। रिकार्डो के विपरीत मार्क्स मानते है कि पूंजीपति पूंजी संचय अथवा विनियोग, लाभ प्रेरणा के बजाए अस्तित्व बचाने के लिए करता है फलतः पूंजी संचय व तकनीकि प्रगति के साथ छोटे–मोटे उद्योग समाप्त होते जायेगे तथा मजदूरों की संख्या बढ़ती जायेगी। इसके

अलावा तकनीकि प्रगति राष्ट्रीय आय में मजदूरी के अंश को घटाता जायेगा जबकि लाभ/अतिरेक मूल्य को बढ़ायेगा।

लाभ की दर में गिरावट,

मार्क्स मानते है कि तकनीकि प्रगति के साथ राष्ट्रीय आय में लाभ का अंश बढ़ता जायेगा किन्तु लाभ की दर गिरती जायेगी। लाभ की दर में गिरावट का कारण वे पूंजी की समावयी संयोजन में परिवर्तन को मानते है। पूंजी की समावयी संरचना से मार्क्स का आशय कुल पूंजी (C+V) के साथ स्थिर पूंजी (C) का अनुपात है। मार्क्स के अनुसार

लाभ की दर $P = \frac{c}{c+v}$

या $P = \frac{s}{v}\ (\frac{c}{c+v})$

या$P = \frac{s}{v}\ (1 - \frac{c}{c+v})(i)[\frac{c}{c+v} + \frac{c}{c+v} = 1]$

जहाँ $\frac{c}{c+v}$पूंजी की सामवयी संरचना है जबकि(S+V) अतिरेक मूल्य की दर है।

समी0 (i) से स्पष्ट है कि यदि (S/V) स्थिर रहे तो C/C+V की वृद्धि लाभ की दर में कमी लायेगा। इस प्रकार जैसे–जैसे तकनीक परिवर्तन होगा पूंजी की समावयी संरचना बढ़ती जायेगी फलतः लाभ की दर गिरती जायेगी, लाभ की दर में कमी पूंजी संचय में कमी लायेगी अंततः अर्थव्यवस्था में अतिहीनता आ जायेगी और पूंजीवाद का विनाश हो जायेगा।

आलोचना

- मूल्य के श्रम सिद्धान्त की मान्यता अव्यवहारिक है।
- समाज में केवल पूंजीपति वर्ग व श्रमिक वर्ग नहीं होते है, ज्ञातव्य हो कि समाज के एक बड़े वर्ग मध्यम वर्ग की मार्क्स ने उपेक्षा की है।
- तकनीकि प्रगति से रोजगार के नये अवसरों का सृजन होता है ज्ञातव्य हो कि मार्क्स का यह विचार की जैसे–जैसे तकनीकि प्रगति होती जायेगी बेरोजगारी बढ़ती जायेगी सही नहीं है।

- लाभ की दर गिरने के कारणों व उसकी प्रवृत्ति की व्याख्या अस्पष्ट व अव्यवहारिक है।
- अतिरेक मूल्य का विचार अवैज्ञानिक व अवास्तविक है।
- मार्क्स की घोषणा की पूंजीवादी प्रणाली स्वयं विनिष्ट हो जायेगी सही नहीं हुआ फलतः उसे झूठा पैगम्बर कहा जाता है।

शुम्पीटर का आर्थिक विकास सिद्धान्त

जोसेफ शुम्पीटर ने 1934 में अपनी पुस्तक 'The Thoeory of economic Development में आर्थिक विकास का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। रिकार्डो व कार्ल मार्क्स की भॉति शुम्पीटर भी मानते है पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली का अन्ततः विनाश हो जायेगा। शुम्पीटर मानते है कि पूंजीवाद की सफलता उन सामाजिक संस्थाओं की जड़ खोदती है। जो उसकी रक्षा करती है और उन परिस्थियों का सृजन करती है जिसमें पूंजीवादी प्रणाली जीवित नहीं रह सकती है।

आर्थिक विकास का अर्थ

जोसेफ शुम्पीटर प्रारम्भ में ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना करते है जिसमें कोई बचत व निवेश नही होता है और न ही कोई ब्याजदर तथा अनैच्छिक बेरोजगारी पायी जाती है अर्थात् अर्थव्यवस्था पूर्णतः स्थिर संतुलन में होती है जिसमें मांग उतनी ही है जितनी वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति, इसे उन्होंने वित्तीय प्रवाह की अवस्था कहा। शुम्पीटर के अनुसार वित्तीय प्रवाह उसी प्रकार अपनी पुनरावृत्ति करना है जैसे जीवों में रक्त संचार। उनके अनुसार अर्थव्यवस्था में असंतुलन तब उत्पन्न होता है जबकि नव प्रवर्तन के कारण वित्तीय प्रवाह में विचलन अथवा गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है।

नव प्रवर्तन तथा इसके प्रभाव

शुम्पीटर मानते है नव प्रवर्तन अनेक प्रकार से हो सकता है जैसे नयी वस्तु का सृजन, किसी नये बाजार अथवा कच्चे माल के स्रोत की खोज, एकाधिकार स्थापित करने वाली किसी नयी प्रौद्योगिकी की तलाश इत्यादि। वे मानते है कि उद्यमी नव–प्रवर्तन करता है जिसके लिए वित्त (पूंजी) की आपूर्ति बैंक द्वारा साख सृजन के माध्यम से होता है। इस प्रकार शुम्पीटर मानते है कि नव प्रवर्तन ही वह कारक है जो वित्तीय प्रवाह को ध्वस्त कर

आर्थिक विकास को जन्म देता है जिससे लाभ तथा ब्याज–दर का उद्‌भव होता है। शुम्पीटर लाभ को नव–प्रवर्तन का पुरस्कार मानते है। जबकि ब्याज–दर वर्तमान उपभोग का भविष्य के उपभोग पर अधिमान है।

शुम्पीटर मानते है कि आर्थिक विकास, किसी नव–प्रवर्तन द्वारा वित्तीय प्रवाह के तोड़ने से शुरू होता है। प्रारम्भ में नव प्रवर्तन कुछ उद्यमी द्वारा किया जाता है किन्तु बाद में लाभ की आकांक्षा में झुण्ड–झुण्ड उद्यमी नव प्रवर्तन करते है जिसके लिए वित्तीय पूंजी आपूर्ति बैंकों द्वारा की जाती है। नव–प्रवर्तन से सम्बद्ध अन्य उद्यमों में भी नव–प्रवर्तन प्रारम्भ हो जाते है जिससे अर्थव्यवस्था में नव–प्रवर्तन की लहर चल पड़ती है जिससे निवेश, उत्पादन व रोजगार में संचयी वृद्धि होती है तथा अर्थव्यवस्था तेजी से आगे बढ़ती है। किन्तु शुम्पीटर मानते है कि कभी अर्थव्यवस्था में 100 प्रतिशत नव–प्रवर्तन नहीं होता है जिससे अर्थव्यवस्था शीर्ष तक कभी नहीं पहुच पाती है।

नव–प्रवर्तन की संचयी प्रक्रिया अर्थव्यवस्था में समग्र मांग व निवेश बढ़ा देती है जिससे पुराने उद्योगों की वस्तुओं की मांग उनकी पूर्ति के अनुपात में बढ़ जाती है, कीमते बढ़ती है लाभ बढ़ते है जिससे बैंकों से ऋण लेकर पुराने उद्योगों का विस्तार करते है। इससे साख सृजन की द्वितीय लहर पैदा हो जाती है जो पुरानी लहर को अध्यारोपित करती है। शुम्पीटर मानते है नये नव–प्रवर्तनकारी पुरानी औद्योगिक संरचना पर नये औद्योगिक संरचना का निर्माण करते है। जिसे वह सृजनात्मक विनाश (Crealive distruclion)कहते है।

अब प्रश्न उठता है कि पूंजीवाद का विनाश किस प्रकार होगा। शुम्पीटर मानते है इसका कारण पूंजीवाद की सफलता में निहीत है जो उन विशेषताओं को ध्वस्त कर देता है जो पूंजीवाद की रक्षा करते है। इसके लए शुम्पीटर उद्यमीय शक्ति का ह्रास, बुर्जूआ परिवार का नष्ट होना तथा पूंजीवादी समाज में संस्थानिक ढाँचे का नष्ट होना उत्तरदायी मानते है।

आलोचना

- शुम्पीटर नव–प्रवर्तन को ही आर्थिक विकास का उत्तरदायी कारण मानते है जो व्यवहारिक नहीं है।

- शुम्पीटर आर्थिक विकास से वाह्य कारणों तथा प्राकृति कारणों की अवहेलना करते है।
- निवेश–ऋणों के लिए केवल बैंक साख पर निर्भरता ज्ञातव्य हो कि कम्पनियाँ अन्य माध्यमों जैसे बाण्ड, शेयर आदि से भी ऋण जुटा सकती है।
- पूंजीवाद के विनाश की व्याख्या अस्पष्ट व अव्यवहारिक है।

इकाई–03

रोस्टोव का सिद्धान्त तथा कींस एवं कींस के पश्चात् के सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा–

3.1 भूमिका

3.2 आर्थिक विकास के ऐतिहासिक चरण

3.3 आलोचना

3.4 कींसीय आर्थिक विकास का सिद्धान्त

3.5 आलोचना

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

विभिन्न देशों के विकास के अनुभाविक अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया कई चरणों से होकर गुजरती है। आर्थिक विकास के प्रत्येक चरण की अपनी मूलभूत विशेषताएँ होती है जिनका विश्लेषण कर, आर्थिक विकास प्रक्रिया को समझा जा सकता है। रोस्टोव ने अपने आर्थिक विकास सिद्धान्त में इसी दृष्टिकोण को अपनाया है, उन्होंने अपनी पुस्तक 'The Stages of economic growth' में आर्थिक संवृद्धि को पाँच अवस्थाओं चरणों में विभाजित किया है– (1) परम्परागत समाज (2) उत्कर्ष की पूर्व अवस्था (3) उत्कर्ष की अवस्था (4) आत्मस्फूर्ति की अवस्था तथा (5) उच्च उपभोग की अवस्था।

परम्परागत समाज

रोस्टोव मानते है कि परम्परागत समाज वह है जिसमें न्यूटन के पूर्व की विज्ञान व प्रौद्योगिकी आधारित उत्पादन ढॉचा पाया जाता है जिसमें उत्पादन व उपभोग सीमित

पैमाने पर होता है तथा समाज की भौतिक मनोवृत्ति न्यूटन पूर्व की होती है। इस स्थिति में कृषि आधारित परम्परागत समाज पाया जाता है जिसकी 75 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि कार्य में लगी होती है। इसके अलावा उत्पादन की तकनीक व उत्पादन प्रक्रिया अत्यन्त पिछड़ी होने के कारण उत्पादन सीमित होता है। जिससे प्रतिव्यक्ति आय तथा बचत व निवेश अत्यन्त नगण्य होता है। समाज का ढॉचा अधिनायक वादी मनोवृत्ति का होता है जिसमें परिवार तथा जाति प्रमुख भूमिका निभाते है जो आर्थिक व सामाजिक परिवर्तनों के लिए प्रतिरोधी होते है। राजनीतिक व्यवस्था अत्यन्त अधिनायकवादी होती है जिसमें राजनीतिक शक्ति जमीदारों के हाथ में निहीत होती है।

उत्कर्ष की पूर्व–अवस्था

उत्कर्ष की पूर्ववर्ती अवस्था को रोस्टोव ने संक्रमण की अवस्था कहा जो परम्परागत समाज तथा उत्कर्ष की अवस्था के मध्य का काल होता है। इसका विकास 17वीं व 18वीं शताब्दी के औसत में हुआ जब वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रयोग कृषि कार्य में हुआ जिससे उत्पादन मात्रा तथा वाणिज्य व्यापार में विस्तार हुआ। इसके अलावा नव जागरण, उदारवादी नव राजतंत्र (सांमतवाद का पतन) नई भौगोलिक ज्ञान इत्यादि आत्मस्फूर्ति की पूर्ववर्ती विशेषताओं को अधिक मजबूत किया। इससे सामाजिक, राजनीतिक व संरचना में व्यापक परिवर्तन आया जिसने अर्थव्यवस्था को सतत् संवृद्धि अथवा आत्मस्फूर्ति की अवस्था की ओर प्रेरित करती है। आत्मस्फूर्ति की पूर्ववती दशाओं के अन्तर्गत रोस्टोव ने निम्नवत्, दशाओं चर्चा की–

(i) इसके अन्तर्गत विनियोग, राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत तक होता है जिससे आधारभूत अवरंचना का विकास होता है जिससे पैमाने का लाभ सृजित होता है।

(ii) परम्परागत समाज धीरे–धीरे औद्योगिक समाज की ओर गतिशील होता है।

(iii) इस दशा में साहसी परम्पराए अधिक मजबूत होती है जिससे अर्थव्यवस्था नवप्रर्वतन का वातावरण सृजित होता है।

आत्मस्फूर्ति की पूर्ववर्ती अवस्था की अवधि कितनी होगी यह इस बात पर निर्भर करेगा किस पर स्थानीय प्रतिभा, शक्ति व संसाधन परम्परागत समाज की विशेषताओं को त्याग ने व नये समाज की विशेषता को स्वीकार ने में लगाता है।

आत्मस्फूर्ति की अवस्था

रोस्टोव के अनुसार आत्म स्फूर्ति की अवस्था उस समय आती है जबकि सतत् संवृद्धि विरोधी शक्तियाँ समाप्त हो जाती है तथा उसकी जगह ऐसी शक्तियाँ क्रियाशील हो जाती है जो अर्थव्यवस्था को सत्त संवृद्धि पथ की ओर प्रेरित करती है। इस अवस्था में कुछ ऐसी आर्थिक सामाजिक व राजनीतिक प्रेरणा का जन्म होता है। जिससे आर्थिक संवृद्धि स्वपोषित होती है। विभिन्न देशों के आनुभविक अध्ययन से रोस्टोव ने पाया ग्रेट ब्रिटेन सर्वप्रथम 1783–1902 में जबकि रूस, अमेरिका, जर्मनी तथा जापान क्रमशः 1890–1914, 1843–1860, 1850–1873 तथा 1878–1900 में पहुचे। रोस्टोव ने आत्म स्फूर्ति की निम्नवत् विशेषताएँ बतायी।

(1) शुद्ध निवेश की दर राष्ट्रीय आय का 10 प्रतिशत से ज्यादा होता है। राष्ट्रीय आय व संवृद्धि दर को ऊँचा बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय निवेश की दर ऊँचा बना रहे।

(2) अर्थव्यवस्था में ऐसे क्षेत्रों का विकास जो अन्य क्षेत्रों के लिए सकारात्मक वाह्यता तथा विकास प्रेरणा को जन्म देती है।

सांस्कृतिक व्यांतरण

रोस्टोव मानते है कि आत्म–स्फूर्ति की दशा में आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक–सांस्कृतिक ढाँचे में इस प्रकार के परिवर्तन होंगे जो अर्थव्यवस्था को आधुनिकृत बनायेंगे। इस दशा में परिवार व सामंतवाद का ढाँचा कमजोर होगा तथा निजी सम्पत्ति व उद्यमिता को बढ़ावा मिलेगा।

परिपक्वता की अवस्था

आत्म–स्फूर्ति की अवस्था के पश्चात् परिपक्वता की अवस्था आती है। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था निरंतर उच्च आर्थिक संवृद्धि व प्रतिव्यक्ति आय की दिशा में बढ़ती जाती है। पुराने आर्थिक ढाँचे पर नये आर्थिक व औद्योगिक ढाँचे का सृजन होता है। आर्थिक प्रणाली व उत्पादन ढाँचा अधिक तकनीकि युक्त व दक्ष होता जाता है। ग्रेट ब्रिटेन 1850 के दशक में तो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका 1900 के दशक में परिपक्वता की दशा में पहुँचा।

उच्च उपभोग की अवस्था

उच्च आर्थिक संवृद्धि, बढ़ता नगरीकरण व शहरी संस्कृति ने समाज का ध्यान पूर्ति की अपेक्षा मांग पर उत्पादन की तुलना में उपभोग व कल्याण की ओर प्रेरित किया। इसके अन्तर्गत प्रतिव्यक्ति उपभोग, उर्जा उपभोग, ईधन खपत इत्यादि में तीव्र वृद्धि हुई। जिसमें जिसे कल्याणवादी राज्य की अवधारणा ने और प्रेरित किया।

आलोचना

- रोस्टोव आर्थिक संवृद्धि की विभिन्न चरणों के मध्य स्पष्ट अन्तर नहीं कर पाये।
- रोस्टोव आर्थिक संवृद्धि के चरणों की व्याख्या में विदेशी प्रभावों व विदेशी व्यापार की उपेक्षा की है।
- आर्थिक संवृद्धि व विकास की प्रक्रिया स्वचालित व यंत्रीकृत नहीं होती है इसके अलावा व्यापार चक्रो को शामिल नहीं किया है।
- विभिन्न देशों के आर्थिक विकास अनुभवों से प्रमाणित नहीं होता है।
- सोलो ने रोस्टोव विश्लेषण की इस आधार पर आलोचना की कि यह कोई मॉडल नहीं है।
- यह आवश्यक नहीं कि आर्थिक विकास के विभिन्न चरण क्रम से आये।

कींसीय आर्थिक विकास सिद्धान्त

कींस ने स्पष्ट रूप में किसी आर्थिक विकास सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया है। उनके राष्ट्रीय आय व रोजगार निर्धारण सिद्धान्त में अस्पष्ट रूप में आर्थिक सिद्धान्त का विचार मिलता है।

कींस मानते है कि किसी देश में राष्ट्रीय आय का स्तर, रोजगार स्तर पर निर्भर करता है। रोजगार का स्तर जितना अधिक होगा, राष्ट्रीय आय उतना ही ऊँचा होगा और विलोमश भी। कींस के विश्लेषण में प्रभावी मांग महत्वपूर्ण अवधारणा है जो आय व रोजगार को निर्धारित करती है। प्रभावी मांग वह बिन्दु होता है जिस पर समग्र मांग (C+I+G), समग्र पूर्ति कीमत के बराबर होती है।

कींस मानते है कि पूर्ति फलन पूर्ण रोजगार स्तर तक पूर्णतः लोचदार होगी अतः समग्र मांग व प्रभावी मांग को बढ़ाकर आय व रोजगार स्तर को बढ़ाया जा सकता है। समग्र मांग, उपभोग मांग तथा निवेश मांग का योग होता है। उपभोग मांग, उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति पर निर्भर करती है जो इकाई से कम होती है अतः उपभोग मांग आय वृद्धि की तुलना में कम होती है। आय व उपभोग के इस अन्तर को पूरा करने के लिए कींस निवेश वृद्धि का समर्थन करते है। अर्थव्यवस्था में निवेश, ब्याज दर तथा पूंजी की सीमांत उत्पादकता पर निर्भर करता है। पूंजी की सीमांत उत्पादकता निवेशित पूंजी पर प्रत्याशित लाभ पर निर्भर करता है अतः पूंजी की सीमांत उत्पादकता को बढ़ाकर निवेश तथा समग्र मांग को बढ़ाया जा सकता है।

कींस के अनुसार निवेश में होने वाली वृद्धि गुणक क्रियाशीलन के कारण राष्ट्रीय आय में निवेश की तुलना में अधिक वृद्धि लायेगी, इस प्रकार निवेश पर राष्ट्रीय आय ∇Y, निवेश की तुलना में गुणक K गुना बढ़ेगा अर्थात् $\frac{\nabla Y}{\nabla Y} = K.\nabla Y$ होगा।

आलोचना

(1) अल्पविकसित व विकासशील देशों के लिए अव्यवहारिक, ज्ञातव्य हो कि कींसीय अवधरणा चक्रिय बेरोजगारी व अवैच्छिक बेरोजगारी की मान्यता पर आधारित है जबकि विकासशील देशों में प्रछन्न बेरोजगारी व संरचनात्माक बेरोजगारी अधिक गम्भीर समस्या है।

(2) कींसीय आय व रोजगार निर्धारण के उपकरण प्रभावी मांग व गुणक, अल्पविकसित देशों को गम्भीर स्फीतिक संकट में ढकेल देते है क्योंकि इनकी असली समस्या प्रभावी मांग की कमी नहीं बल्कि पूर्ति वक्र को वेलोच होना है।

(3) पूर्ति वक्र, पूर्ण रोजगार स्तर तक पूर्णतः लोचदार नहीं होता है।

(4) कींसीय आय व रोजगार सिद्धान्त अल्पकालीन है तथा केवल मांग पक्ष पर बल देता है जो एक पक्षीय व एकांगी है।

(5) बंद अर्थव्यवस्था की अव्यवहारिक मान्यता।

इकाई–04

संवृद्धि मॉडल हैरड–डोमर

इकाई की रुपरेखा–

4.1 भूमिका

4.2 हैरड संवृद्धि मॉडल

4.3 आलोचना

4.4 डोमर संवृद्धि मॉडल

4.5 आलोचना

4.6 सारांश

4.6 शब्दावली

सर राय हैंरड तथा डोमर प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने ऐसी शर्तों व स्थितियों की खोज करने का प्रयास किया जिससे अर्थव्यवस्था सत्त संवृद्धि पथ पर गतिशील हो। ज्ञातव्य हो कि क्लासिकल व कींसीय मॉडल स्थैतिक तथा एकपीक्षय व एकांगी है, क्लासिकल अर्थशास्त्र जहाँ निवेश के केवल पूर्ति पक्ष पर बल देते है वही कींस मांग पक्ष पर अधिक बल देते है। हैरड ने अपने मॉडल में निवेश के मांग व पूर्ति पक्ष दोनों पर बल दिया। हैरड संवृद्धि मॉडल प्रावैगिक अर्थशास्त्र की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान है।

हैरड–संवृद्धि मॉडल

हैरड ने अपनी पुस्तक 'Dynamic economy' में अपना संवृद्धि मॉडल प्रतिपादित किया। हैरड की मुख्य समस्या ऐसी शर्तों की तलाश है जो अर्थव्यवस्था को स्वतः संवृद्धि पथ की ओर ले जाये। कींस व क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के विपरीत हैरड ने अपने मॉडल में निवेश के दो पक्षों पर बल दिया मांग पक्ष तथा पूर्ति पक्ष।

हैरड मानते है कि निवेश से आय तथा रोजगार बढ़ता है जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग बढ़ती है यह निवेश का मांग पक्ष है जबकि निवेश के कारण पूंजी स्टॉक तथा उत्पादन क्षमता में सुधार होता है जिससे उत्पादन साधनों की उत्पादकता तथा कुल उत्पादन बढ़ता है, निवेश का पूर्ति पक्ष है। यदि अर्थव्यवस्था में आय तथा रोजगार उस दर से नही बढ़ते जों पूंजी स्टॉक में वृद्धि के कारण बढ़ी उत्पादन क्षमता को पूर्णतः अवशोषित कर ले अतिरेक उत्पादन क्षमता पायी जायेगी जो अंततः निवेश आय व रोजगार में कमी लाने के साथ आर्थिक असंतुलन को जन्म देगी। अतः अर्थव्यवस्था में सत्त व निरन्तर संवृद्धि के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय तथा रोजगार उस दर से बढ़े जो पूंजी स्टॉक के कारण बड़ी हुई उत्पादन क्षमता को पूर्णतः अवशोषित कर सके।

मान्यताएँ

- बंद अर्थव्यवस्था की मान्यता।
- जनसंख्या वृद्धि दर निश्चित है जो वाह्य निर्धारित है।
- तकनीकि प्रगति स्थिर है।
- पूंजी–उत्पाद अनुपात तथा पूंजी–श्रम अनुपात(K/L) स्थिर है।
- सीमांत बचत प्रवृत्ति स्थिर है तथा बचत आय का एक निश्चित फलन होता है अर्थात् बचत$S = S.Y$
- अर्थव्यवस्था में केवल दो वर्ग है– उत्पादक वर्ग तथा उपभोक्ता वर्ग।

उपर्युक्त मान्यताओं को लेते हुए हैरड ने अपने संवृद्धि मॉडल का विश्लेषण किया। हैरड मानते है कि अर्थव्यवस्था सत्त संस्थिति में होगा यदि उत्पादक वर्ग तथा उपभोक्ता वर्ग एक साथ संतुलन में हो। अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता वर्ग सदैव संतुलन में होगा क्योंकि उसके लिए हमेशा वांच्छित बचत, वास्तविक बचत (S.Y)के बराबर होगा, फलतः हैरड का मुख्य उद्देश्य उत्पादक वर्ग का संतुलन ज्ञात करना है।

हैरड मानते है कि उत्पादक वर्ग संतुलन में होगा यदि उसके लिए वास्तविक निवेश वांछित निवेश बराबर हो। ज्ञातव्य हो कि वास्तविक विनियोग I वास्तविक बचत के बराबर होगा अर्थात्–

वास्तविक निवेश = वास्तविक बचत

$$It = S.Y_{+} - (i)$$

जहाँ It, t अवधि का निवेश तथा Y, tअवधि की

आय तथा s, बचत की सीमांत प्रवृत्ति है।

वांछित विनियोग के लिए उत्पादक यह अनुमान लगाता है कि चालू अवधि में सम्भावित वृद्धि क्या होगी। यदि अवधि में राष्ट्रीय आय(Y_{+}) तथा (t -1) अवधि में ($Yt-_{1}$) हो तो राष्ट्रीय आय में वांछित वृद्धि $\Delta Y, [Yt - Y(t-1)]$के बराबर होगा। यदि पूंजी उत्पाद अनुपात हो तो इस संवृद्धि को प्राप्त करने के लिए वांछित निवेश होगा–

$$I = g\ [(Yt - Y(t-1)]$$

$g.\Delta Y$ जहाँ ΔY चालू अवधि में आय में वृद्धि है।

उत्पादक के संतुलन के लिए आवश्यक शर्त

वांछित निवेश वास्तविक निवेश वास्तविक बचत

g. $\Delta Y = S.Y$समी 1 से

या $\frac{s}{g} = \frac{\Delta Y}{Y}$= वांछित संवृद्धि = वास्तविक संवृद्धि

सत्त संवृद्धि के लिए हैरड मानते है। कि वांछित संवृद्धि दर $\Delta Y/Y$ को, वास्तविक संवृद्धि दर की दर S/g से बढ़ना चाहिए। निम्नलिखित चित्र में हैरड संवृद्धि पथ को दर्शाया गया है।

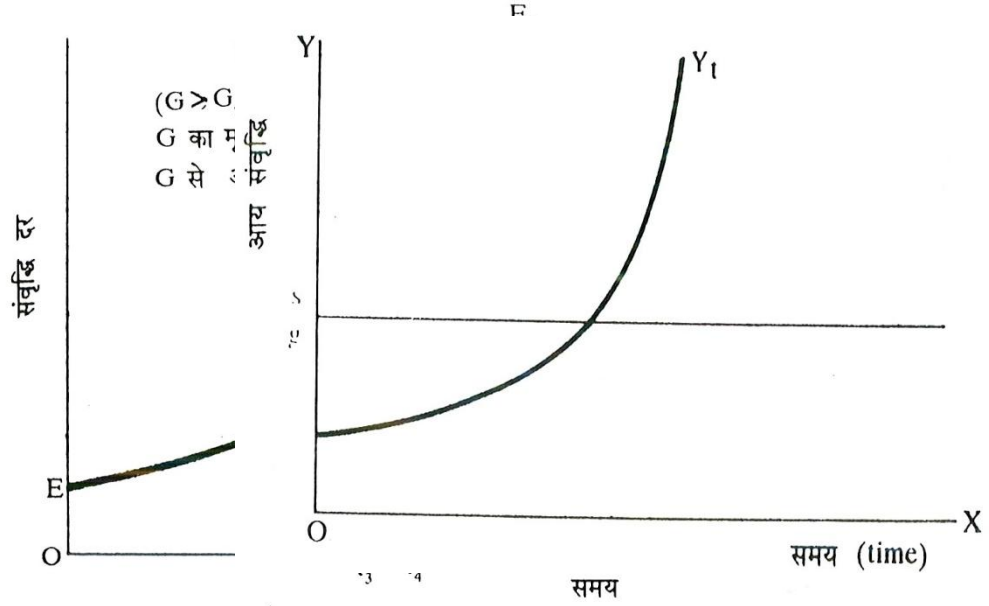

उपयुक्त चित्र से स्पष्ट है कि यदि S, g तथा Yt सभी शून्य से ज्यादा हो तो आय वृद्धि के साथ बचत में वृद्धि तथा साथ ही साथ निवेश में वृद्धि होती जायेगी। इस प्रकार प्रत्येक अवधि में आय वृद्धि पूर्व की अवधि की तुलना में अधिक तेज होगी तथा की स्थिर दर के साथ अर्थव्यवस्था घातांकी दर Exponention Rate से बढ़ेगी।

हैरड संवृद्धि पथ अत्यंत कठोर है यदि अर्थव्यवस्था एक बार संवृद्धि पथ से विचलित होती है तो ऐसी शक्तियाँ क्रियाशील होगी जो इसे संतुलन पक्ष से दूर ले जायेंगी। इसे चाकू धार संकल्प कहा जाता है।

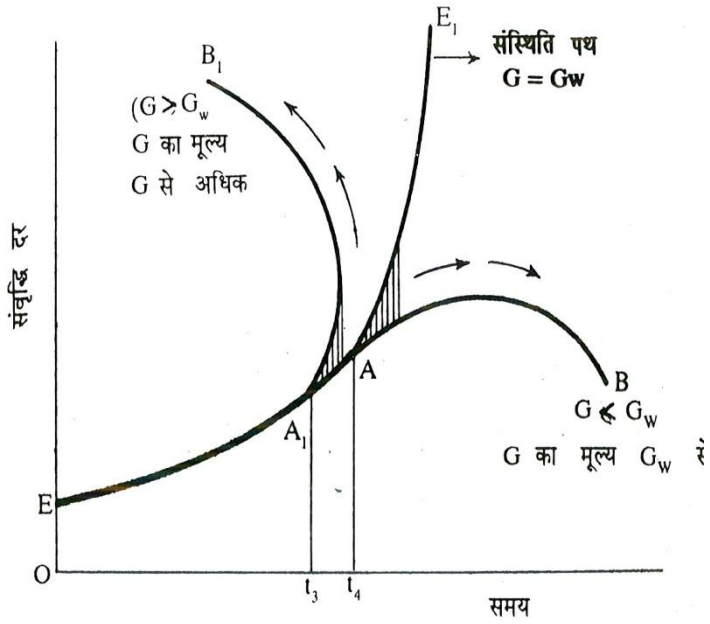

चित्र–2 से स्पष्ट है कि यदि अर्थव्यवस्था एक बार संतुलन पथ से दूर होता जाता है। t_1 अवधि तक G = Gw है उसके बाद$G > Gw$ है अर्थात् वास्तविक संवृद्धि, वांच्छित संवृद्धि से ज्यादा है फलतः उत्पादक वर्ग और निवेश करेगा जिससे वास्तविक संवृद्धि और तेजी से बढ़ेगी इस स्थिति में मुद्रा स्फीति की स्थिति भयावह होती जायेगी।

इसके विपरित यदि$Gw > G$ तो उत्पादक को प्रतीत होगा कि उसका अनुमान, वास्तविक संवृद्धि से अधिक या फलतः वह निवेश में कमी लायेगा जो आय व रोजगार को निरन्तर कम करता जायेगा जिससे भयावह मंदी की दशा उत्पन्न होगी।

आलोचना

1. पूंजी उत्पाद अनुपात तथा(K/L) की स्थिर मान्यता, जो अर्थव्यवस्था में असंतुलन होने पर पुनः संतुलन नहीं होने देता है।
2. बंद अर्थव्यवस्था की अव्यवहारिक मान्यता।
3. कीमतें तथा ब्याज दर स्थिर नहीं होती है।
4. श्रम आपूर्ति वाह्य निर्धारित नहीं होती है।
5. सार्वजनिक क्षेत्र की उपेक्षा।
6. विकासशील देश के लिए अव्यवहारिक।

डोमर–मॉडल

हैरड की भाँति डोगर भी इस मान्यता को लेते है निवेश एक ओर आय सृजन करती है, यह निवेश का मांग पक्ष है जबकि निवेश दूसरी ओर उत्पादन क्षमता को बढ़ती है यह निवेश का पूर्ति पक्ष है। अर्थव्यवस्था के संतुलन के लिए आवश्यक है कि निवेश के कारण सृजित मांग पक्ष, उसकी पूर्ति पक्ष के बराबर है।

मान्यताएँ

1. पूर्ण रोजगार की मान्यता
2. बंद अर्थव्यवस्था की मान्यता।
3. औसत बचत प्रवृत्ति APC तथा सीमांत बचत प्रवृत्ति MPC बराबर है।

4. तकनीकि प्रगति स्थिर है।

5. पूंजी श्रम अनुपात तथा उत्पाद पूंजी अनुपात स्थिर है।

6. ब्याज दर अपरिवर्तनशील है।

डोगर मानते है कि यदि अर्थव्यवस्था में वास्तविक निवेश की दर I हो तथा पूंजी स्टॉक में वृद्धि के कारण उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो तो I निवेश के कारण उत्पादन क्षमता में कुल वृद्धि S.I के बराबर होगा किन्तु मूल्य ह्रास के कारण वास्तविक उत्पादन क्षमता S.I से कम होगा जिसे डोगर ∝I मानते है अर्थात् I निवेश मात्रा से वास्तविक उत्पादन क्षमता में वृद्धि–

$$\Delta Y = \propto . I - (i)$$

जहाँ ∝ उत्पाद पूंजी अनुपात $\frac{\Delta Y}{Y}$अर्थात्

मांग पक्ष

डोमर मानते है कि I निवेश के फलस्वरूप, गुणक क्रियाशीलन के कारण, आय ΔI निवेश की तुलना में अधिक बढ़ेगा, अर्थात् निवेश के कारण आय वृद्धि–

$$\Delta Y = \frac{1}{\propto} \Delta I \ (ii)$$

जहाँ$\propto = MPC$

संतुलन के लिए, कुल मांग पक्ष, पूर्ति पक्ष के बराबर होनी चाहिए अर्थात्–

$$\propto . I = \frac{1}{\propto} \Delta I$$

$$\propto . \propto = \frac{\Delta I}{I}$$

अतः सत्त संवृद्धि बनाये रखने के लिए अर्थव्यवस्था में निवेश की दर $\frac{\Delta I}{I}, \propto . \propto .$ की दर से बढ़ना चाहिए।

इकाई:5 नव-शास्त्रीय दृष्टिकोण: काल्डोर का विकास मॉडल

1. **काल्डोर का विकास मॉडल**
2. **परिचय**
3. **काल्डोर का विकास मॉडल: विशेषताएँ**
4. **काल्डोर और हैरोड मॉडल**
5. **आलोचनात्मक मूल्यांकन**
6. **रॉबिन्सन का विकास मॉडल**
7. **मान्यताएँ**
8. **स्वर्ण युग के प्रकार**
9. **अविकसित देशों के लिए प्रयोज्यता**
10. **महत्वपूर्ण मूल्यांकन:**

काल्डोर का विकास मॉडल

निकोलस कलडोर ने ए मॉडल ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ नामक अपने निबंध में, जो मूल रूप से 1957 में इकोनॉमिक जर्नल में प्रकाशित हुआ था, एक विकास मॉडल का अनुमान लगाया है, जो हैरोडियन गतिशील दृष्टिकोण और विश्लेषण की कीनेसियन तकनीकों का पालन करता है। अपने विकास मॉडल में, कलडोर "तकनीकी प्रगति की उत्पत्ति को पूंजी संचय से जोड़ने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करने का प्रयास करता है", जबकि अन्य नवशास्त्रीय मॉडल तकनीकी प्रगति के कारण को पूरी तरह से बहिर्जात मानते हैं।

कलडोर के अनुसार, "आर्थिक विकास के सिद्धांत का उद्देश्य गैर-आर्थिक चर की प्रकृति को दिखाना है जो अंततः उस दर को निर्धारित करते हैं जिस पर अर्थव्यवस्था के उत्पादन का सामान्य स्तर बढ़ रहा है, और इस प्रकार प्रश्न की समझ में योगदान देता है क्यों कुछ समाज दूसरों की तुलना में इतनी तेजी से बढ़ते हैं?

कलडोर के विकास मॉडल के मूल गुण इस प्रकार हैं:

बढ़ती अर्थव्यवस्था में कुल वस्तुओं और सेवाओं की अल्पावधि आपूर्ति लोचदार होती है और प्रभावी मौद्रिक मांग में किसी भी वृद्धि से प्रभावित नहीं होती है। चूँकि यह "पूर्ण रोज़गार" की केनेसियन धारणा पर आधारित है।

तकनीकी प्रगति पूंजी संचय की दर पर निर्भर करती है। काल्डोर ने "तकनीकी प्रगति फ़ंक्शन" की परिकल्पना की है, जो पूंजी की वृद्धि और उत्पादकता के बीच संबंध को दर्शाता है, जिसमें दोनों कारकों का प्रभाव शामिल है। जहां पूंजी-उत्पादन अनुपात पूंजी की वृद्धि और उत्पादकता की वृद्धि के संबंध पर निर्भर करेगा।

मजदूरी और मुनाफा आय का गठन करते हैं, जहां मजदूरी में वेतन और शारीरिक श्रम की कमाई शामिल होती है, और मुनाफे में उद्यमियों के साथ-साथ संपत्ति मालिकों की आय भी शामिल होती है। और कुल बचत में वेतन से बचत और लाभ से बचत शामिल होती है।

परिचय:

यह देखा गया है कि मूल हैरोड-डोमर मॉडल (इसके बाद, एच-डी मॉडल के रूप में उल्लिखित) कठोर, हल्का, एक सेक्टर और तीन मापदंडों के संबंध में विशिष्ट है।

आय का एक स्थिर अनुपात बचाया हुआ माना जाता है (St/Yt)। पूर्ण क्षमता की स्थिति का अर्थ है एक स्थिर पूंजी उत्पादन अनुपात (C/O) और आगे की शर्त यह है कि पूर्ण रोजगार पर श्रम की मांग (पूर्ण क्षमता उत्पादन से जुड़ी) स्थिर दर (N) पर बढ़नी चाहिए।

इस प्रकार, निरंतर बचत-आय अनुपात, निरंतर पूंजी-उत्पादन अनुपात और पूर्ण रोजगार पर श्रम की निरंतर मांग के कारण, एचडी मॉडल अधिक उपयोग के लिए बहुत कठोर हो जाता है। लेकिन यदि इन शर्तों में ढील दी जाए तो एच-डी मॉडल बहुत उपयोगी हो जाता है। पैरामीटर्स (स्थिर चर) को अलग-अलग होने की अनुमति दी जा सकती है। हम श्रम की आपूर्ति को अलग-अलग कर सकते हैं और इसे पूर्ण रोजगार पर अधिक लचीला मान सकते हैं-यह कैंब्रिज में श्रीमती जोन रॉबिन्सन और उनके सहयोगियों द्वारा किया गया है।
इसके अलावा, कलडोर ने कुछ तथ्यों को अपने मॉडल के आधार और शुरुआती बिंदु के रूप में लिया; उदाहरण के लिए, उनके अनुसार, उत्पादकता की वृद्धि दर में गिरावट की कोई प्रवृत्ति दर्ज नहीं की गई है; प्रति कर्मचारी पूंजी की मात्रा में निरंतर वृद्धि हो रही है; कम से कम विकसित देश में पूंजी पर लाभ की दर स्थिर है; मुनाफ़े और मज़दूरी के अनुपात में कोई बदलाव नहीं हुआ है - वास्तविक मज़दूरी में वृद्धि केवल श्रम उत्पादकता में वृद्धि के अनुपात में होती है; पूंजी-उत्पादन अनुपात लंबे समय तक स्थिर रहता है - इसका तात्पर्य उत्पादन और पूंजी स्टॉक की वृद्धि की प्रतिशत दरों में निकट पहचान है; विभिन्न क्षेत्रों या अर्थव्यवस्थाओं में श्रम उत्पादकता और कुल उत्पादन की वृद्धि दर में काफी अंतर है।

विशेषताएँ:

कलडोर का प्रारंभिक बिंदु यह विश्वास है कि समाज की आय विभिन्न वर्गों के बीच वितरित की जाती है, प्रत्येक की बचत करने की अपनी प्रवृत्ति होती है (K = W + P). संतुलन केवल आय के उचित और उचित वितरण द्वारा ही लाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, विकास दर और आय वितरण स्वाभाविक रूप से जुड़े हुए तत्व हैं। कलडोर का मॉडल इन दो तत्वों और उनके संबंधों पर निर्भर करता है और विकास की प्रक्रिया में आय के वितरण के महत्व को सामने लाता है - यह कलडोर के मॉडल की बुनियादी खूबियों में से एक है।

उनके मॉडल में, एक ओर, आय के वितरण के संबंध बचत (या सामाजिक बचत) के दिए गए स्तर को निर्धारित करते हैं और इसलिए, निवेश और आर्थिक विकास दर को निर्धारित करते हैं। दूसरी ओर, इस या निश्चित विकास दर की उपलब्धि के लिए एक निश्चित स्तर के निवेश की आवश्यकता होती है और इसलिए, बचत की और इसलिए, आय के तदनुरूप वितरण की आवश्यकता होती है।

इसे समीकरणों की निम्नलिखित प्रणाली द्वारा दर्शाया गया है:

$$Y = W + P\ ;\ I = S\ ;\ S = S_W + S_P,$$

जहां Y राष्ट्रीय आय है; W- श्रम की आय (मजदूरी); P- उद्यमियों की आय (लाभ); I- निवेश; S- बचत; वेतन से S_w- बचत; S_P- मुनाफे से बचत।

लेकिन Sw = SwW और Sp = SpP

जहां Sw मजदूरी से बचत का हिस्सा है; और S_P लाभ से बचत का हिस्सा है, S के लिए प्रतिस्थापन, हमें मिलता है:

I= SpP + SwW (I+S)

= SpP + Sw (Y-P) (W= Y-P)

= SpP + SwY- S_w P

= (S_p –Sw)P + S_w Y

Dividing by Y both sides, we get :

I/Y= (S_p –Sw).P/Y + S_w

Dividing again both sides by (S_p –Sw), we get:

$$\frac{I}{Y} \times \frac{I}{(Sp - Sw)} = \frac{P}{Y} + \frac{Sw}{(Sp - Sw)}$$

$$\frac{P}{Y} = \frac{I}{(Sp - Sw)} \times \frac{I}{Y} - \frac{Sw}{(Sp - Sw)}$$

जहां P/Y कुल आय में लाभ का हिस्सा है और I/Y निवेश आय अनुपात है, अब, हम काल्डोर की थीसिस को आसानी से देख और सराह सकते हैं। उनकी थीसिस है कि कुल आय में लाभ का हिस्सा निवेश और आय के अनुपात (I/Y) का एक कार्य है।

उपरोक्त समीकरण में, यह आसानी से देखा जा सकता है कि आय-निवेश अनुपात (I/Y) में वृद्धि के परिणामस्वरूप कुल आय (P/Y) में से लाभ के हिस्से में वृद्धि होगी, जब तक यह माना जाता है कि sw और sp दोनों स्थिर हैं और इसके अलावा sp (Sp > Sw) से भी बड़ा है। इस प्रकार, मजदूरी अर्जित करने वालों (एसडब्ल्यू) और उद्यमियों (Sp) के एमपीएस को देखते हुए, राष्ट्रीय आय (Y) में लाभ (P) का हिस्सा, यानी पी/वाई निवेश के अनुपात (आई) पर निर्भर करता है। कुल आय या आउटपुट (Y), जो कि I/Y है।

हमारे लिए कलडोर के प्रमेय का अंतर्निहित आर्थिक तर्क अधिक महत्वपूर्ण है कि कुल आय (P/Y) में लाभ का हिस्सा निवेश-आय अनुपात (I/Y) का एक कार्य है। पूर्ण रोजगार की स्थिति के तहत निवेश में वृद्धि वास्तविक रूप में होनी चाहिए, जिससे निवेश के आय अनुपात (I/Y) दोनों में वृद्धि हो और साथ ही बचत आय अनुपात (S/K) में भी वृद्धि हो। यदि वास्तविक निवेश के उच्च स्तर पर संतुलन प्राप्त करना है तो यह आवश्यक है।

यदि बचत-आय अनुपात में वृद्धि नहीं हुई, तो इसका परिणाम कीमतों के सामान्य स्तर में निरंतर ऊपर की ओर बढ़ना होगा। काल्डोर के सिद्धांत का हृदय उनके प्रदर्शन में निहित है "आय के वितरण में बदलाव उच्च-बचत आय अनुपात लाने के लिए आवश्यक है, जो वास्तविक रूप से निवेश के उच्च निरपेक्ष स्तर के साथ निरंतर पूर्ण रोजगार संतुलन के लिए आवश्यक शर्त है।"
काल्डोर के अनुसार, $S_P > S_W$ की धारणा, पूरे सिस्टम में स्थिरता और निवेश-आय अनुपात बढ़ने पर आय में लाभ के हिस्से में वृद्धि दोनों के लिए एक आवश्यक शर्त है। पूर्ण रोजगार आय Yo को देखते हुए, निवेश-आय अनुपात और बचत-आय अनुपात (I/Y) और (S/Y) I/Y (Yo) और S/Y (Yo) हैं और लाभ आय अनुपात सिस्टम संतुलन में है.

लेकिन P/Y में वृद्धि, यह मानते हुए कि $S_P > S_W$ पूर्ण रोजगार पर संतुलन सुनिश्चित करने के लिए S/Y फ़ंक्शन को आगे बढ़ाता है। यदि I/Y के साथ S/Y के बीच यह सहज गति बनी रहती है तो सिस्टम पूर्ण रोजगार पर कायम रहेगा और आय में लाभ का संतुलन हिस्सा स्थिर रहेगा। अंतर्निहित विचार यह है कि वास्तविक आय के निश्चित स्तर (पूर्ण रोजगार की धारणा) के साथ, पूरी अर्थव्यवस्था के लिए S/Y में वृद्धि लाना संभव है या तो खुद को बचाने की प्रवृत्ति में वृद्धि के माध्यम से। , जिसे कलडोर ने अपनी धारणा के माध्यम से खारिज कर दिया है कि S_P और S_W स्थिर हैं, या कम बचत समूहों से उच्च बचत समूहों में वास्तविक आय के वितरण में बदलाव के माध्यम से।

जब भी निवेश-आय अनुपात में वृद्धि होती है तो जो तंत्र लाभ शेयर के पक्ष में आय का पुनर्वितरण लाता है वह मूलतः मूल्य स्तर का होता है। पूर्ण रोजगार की स्थिति में निवेश व्यय में वृद्धि से शुरू में कीमतों में सामान्य वृद्धि होती है। लेकिन मज़दूरी उतनी तेज़ी से और उतनी तेज़ी से नहीं बढ़ सकती जितनी तेज़ी से कीमतें बढ़ती हैं।
यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक कि बचत-आय अनुपात (S/Y) एक बार फिर निवेश आय अनुपात (I/Y) के साथ संतुलन में न आ जाए। इस प्रकार, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कलडोर के मॉडल में $sp > sw$ की धारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस धारणा के अभाव में, आय के वितरण में किसी भी बदलाव के बावजूद वास्तविक एस/वाई नहीं बढ़ेगी। परिणामस्वरूप, सिस्टम अस्थिर रह सकता है।

कलडोर और हैरोड:

हम पाते हैं, कि $sp > Sw$ बुनियादी संतुलन और स्थिरता की स्थिति है। यदि $Sp < Sw$, तो कीमतों में गिरावट होगी और मांग, कीमत और आय में संचयी गिरावट होगी। इसी प्रकार, यदि $sp > sw$, तो कीमतों में वृद्धि होगी, मांग और आय में संचयी वृद्धि होगी। प्रणाली की स्थिरता की डिग्री बचत करने की सीमांत प्रवृत्ति के बीच अंतर पर निर्भर है। यदि दो प्रवृत्तियों (Sp और Sw) के बीच अंतर छोटा है, तो गुणांक 1/ Sp-Sw बड़ा होगा, जिसके परिणामस्वरूप निवेश-आय अनुपात (I/Y) में छोटे बदलाव अपेक्षाकृत बड़े बदलाव लाएंगे।

आलोचनात्मक मूल्यांकन
कलडोर के मॉडल की बुनियादी विशेषताओं या नवीनताओं को निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है:

(A) इसकी महान योग्यता तकनीकी प्रगति कार्य की अवधारणा के विकास और इस विश्वास में निहित है कि तकनीकी प्रगति विकास के मुख्य इंजन के रूप में कार्य करती है। कलडोर के मॉडल के तहत तकनीकी प्रगति फ़ंक्शन सामान्य उत्पादन फ़ंक्शन को प्रतिस्थापित करता है। उनके अनुसार, बुनियादी कार्यात्मक संबंध प्रति व्यक्ति उत्पादन को पूंजी के बढ़ते कार्य के रूप में व्यक्त करने वाला उत्पादन कार्य नहीं है -

बल्कि एक तकनीकी प्रगति फ़ंक्शन है जो प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि की दर को वृद्धि की दर के बढ़ते कार्य के रूप में व्यक्त करता है।

(B) काल्डोर के मॉडल की एक और बड़ी खूबी इसमें निहित है विचार-निवेश करने का प्रलोभन नहीं है एमईसी या ब्याज दर तुलना पर निर्भर; दीर्घकालीन अल्परोजगार संतुलन की अस्वीकृति; में एक वितरण तंत्र की शुरूआत हैरोड का मॉडल. हालांकि कलडोर का मॉडल अनिवार्य रूप से कीनेसियन अवधारणाओं और हैरोडियन पर आधारित गतिशील दृष्टिकोण उनसे कई मायनों में भिन्न है तौर तरीकों। काल्डोर का मानना है कि आर्थिक विकास और उसका प्रक्रियाएँ परस्पर निर्भरता पर आधारित है. मूलभूत चर जैसे बचत, निवेश, उत्पादकता, आदि काल्डोर की राय में विकास की एक गतिशील प्रक्रिया है

नव-शास्त्रीय दृष्टिकोण: रॉबिन्सन का विकास मॉडल

रॉबिन्सन का विकास मॉडल

श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने अपनी क्लासिक पुस्तक में अपने विकास का मॉडल दिया है।

1956 में 'पूंजी का संचय'। जोन रॉबिन्सन का मॉडल एक विकासशील अर्थव्यवस्था में जनसंख्या वृद्धि की समस्या को स्पष्ट रूप से लेता है और पूंजी संचय और उत्पादन की वृद्धि की भूमिका पर जनसंख्या के प्रभाव का विश्लेषण करता है।

प्रोफेसर मैथ्यू के शब्दों में, इस मॉडल में वितरण और वृद्धि के बीच का संबंध आंशिक रूप से लाभ की दर और पूंजी संचय की गति की पारस्परिक निर्भरता से और आंशिक रूप से बचाई गई आय के अनुपात पर आय के वितरण के प्रभाव से उत्पन्न होता है।

मॉडल के दो मूलभूत प्रस्ताव इस प्रकार हैं:

1. पूंजी निर्माण आय के वितरण के तरीके पर निर्भर करता है।

2. जिस दर पर श्रम का उपयोग किया जाता है वह पूंजी की आपूर्ति और श्रम की आपूर्ति पर निर्भर करता है।

मान्यताएँ

1. श्रम और पूंजी ही एकमात्र उत्पादक कारक हैं। इसका तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय उत्पादन उत्पादन के इन दो कारकों के संयुक्त प्रयासों का परिणाम है।

2. अर्थव्यवस्था को बंद मान लिया गया है यानी कोई विदेशी व्यापार नहीं है।

3. कुल वेतन बिल वास्तविक मजदूरी दर और श्रमिकों की संख्या का उत्पाद है।

4. कुल आय को पूंजी और श्रम के बीच विभाजित किया जाता है क्योंकि ये उत्पादन के दो कारक हैं।

5. तकनीकी परिवर्तनों से उत्पादन प्रभावित नहीं होता अर्थात् प्रौद्योगिकी में कोई प्रगति नहीं होती।

6. कुल लाभ लाभ दर और निवेशित पूंजी की राशि का उत्पाद है।

7. कीमत स्तर में स्थिरता रहती है।

8. वेतनभोगी अपनी सारी मजदूरी आय उपभोग पर खर्च करते हैं, जबकि लाभ लेने वाले अपनी सारी लाभ आय बचाते हैं और निवेश करते हैं।

9. किसी दिए गए आउटपुट के लिए पूंजी और श्रम को एक निश्चित अनुपात में संयोजित किया जाता है।

10. राष्ट्रीय आय वेतन बिल और कुल मुनाफे का योग है।

11. श्रमिकों की कोई कमी नहीं है और उद्यमी जितना चाहें उतना श्रमिक नियोजित कर सकते हैं।

12. उद्यमी बचत के अलावा कुछ भी उपभोग नहीं करते हैं और अपनी पूरी आय पूंजी निर्माण के लिए निवेश करते हैं। यदि उनके पास कोई लाभ नहीं है, तो कोई संचय नहीं है और यदि वे संचय नहीं करते हैं, तो उनके पास कोई लाभ नहीं है।

खुला मॉडल:

एक खुली अर्थव्यवस्था में स्थिर विकास की स्थितियों और पूंजी संचय की बढ़ती दर की स्थितियों पर चर्चा की जाएगी। श्रीमती जोन रॉबिन्सन के अनुसार, राष्ट्रीय आय कुल वेतन बिल और कुल लाभ का योग है। कुल वेतन बिल श्रमिकों की संख्या से गुणा किया गया वास्तविक वेतन है और कुल लाभ पूंजी की मात्रा से गुणा लाभ दर के बराबर है।

बंद मॉडल:

बंद अर्थव्यवस्था में स्वर्ण युग की अवधारणा और प्लैटिनम युग पर चर्चा की जानी है। सरल शब्द में, स्वर्ण युग सहज स्थिरता की स्थिति है पूर्ण रोजगार के साथ विकास उत्पन्न होता है 'वांछित' और 'संभावित' दरों की समानता संचय और श्रीमती जोन द्वारा नामित किया गया है

रॉबिन्सन को स्वर्ण युग संतुलन के रूप में।

हालाँकि, यदि श्रम आपूर्ति में वृद्धि के साथ पूंजी आपूर्ति में आनुपातिक वृद्धि नहीं होती है, तो इससे अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी पैदा होगी। श्रम का पूर्ण रोजगार प्राप्त करने के लिए जनसंख्या की वृद्धि दर पूंजी की वृद्धि दर के बराबर होनी चाहिए।

$\Delta N/N=\Delta K/K$

जब श्रम और पूंजी की वृद्धि दर एक-दूसरे के बराबर होती है, तो अर्थव्यवस्था में पूंजी का पूर्ण उपयोग होता है। ऐसे स्विच ऑन को स्वर्ण युग कहा जाता है। स्वर्ण युग का अस्तित्व पूर्ण रोजगार स्तर का सूचक है।

स्वर्ण युग की अवधारणा का तात्पर्य है कि वास्तविक, अपेक्षित और प्राकृतिक विकास दर में समानता होनी चाहिए।

संक्षेप में, श्रीमती जोन रॉबिन्सन के शब्दों में, जब तकनीकी प्रगति तटस्थ होती है और स्थिर रूप से आगे बढ़ती है, उत्पादन के समय पैटर्न में कोई बदलाव किए बिना, प्रतिस्पर्धी तंत्र स्वतंत्र रूप से काम करता है, जनसंख्या स्थिर दर से बढ़ती है (यदि बढ़ती है) और संचय होता रहता है सभी उपलब्ध श्रम के लिए उत्पादक क्षमता की आपूर्ति करने के लिए पर्याप्त तेज़, लाभ की दर स्थिर रहती है और वास्तविक मजदूरी का स्तर प्रति व्यक्ति उत्पादन के साथ बढ़ता है।

स्वर्ण युग के प्रकार:

श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने अपनी पुस्तक 'एसेज़ इन द थ्योरी ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ' में स्वर्ण युग के विभिन्न प्रकार बताए हैं, जिनकी चर्चा नीचे दी गई है:

1. एक लंगड़ाता हुआ स्वर्ण युग:

इस युग में पूंजी संचय की स्थिर दर पूर्ण रोजगार से नीचे होती है अथवा पूंजी भंडार की वृद्धि दर श्रम शक्ति की वृद्धि से कम होती है। लंगड़े स्वर्ण युग की तुलना अल्परोजगार संतुलन की अवधारणा से की जा सकती है क्योंकि यह लॉर्ड कीन्स द्वारा दी गई पूंजी की कमी के कारण उत्पन्न होती है। सतयुग में लंगड़ापन विभिन्न स्तर का हो सकता है।

लंगड़ापन की तीव्रता रोजगार क्षमता और श्रम शक्ति में गिरावट या वृद्धि पर निर्भर करती है। यदि उत्पादन की वास्तविक वृद्धि प्रति व्यक्ति उत्पादन की आवश्यक दर से कम है तो लंगड़ापन को गंभीर कहा जाता है। रोज़गार के स्तर में लगातार गिरावट लंगड़ापन की गंभीरता का सूचक है जो आगे चलकर मुद्रास्फीति और बेरोज़गारी की समस्या को जन्म दे सकती है।

दूसरी ओर, जब लंगड़ापन मध्यम स्तर का होता है, तो उत्पादन का वास्तविक स्तर प्रति व्यक्ति उत्पादन की आवश्यक दर से अधिक तेजी से बढ़ रहा होगा, अर्थात यदि रोजगार श्रम बल की तुलना में तेजी से बढ़ता है, तो अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की ओर बढ़ रही होगी।

2. एक संयमित स्वर्ण युग:

यह वह स्थिति है जहां पूंजी की वास्तविक वृद्धि दर वांछित वृद्धि दर से कम होती है। यह उच्च ब्याज दर और ऋण की राशनिंग जैसी कुछ बाधाओं के संचालन के कारण है। इस अवधि के दौरान, अर्थव्यवस्था में तकनीकी प्रगति के बावजूद कंपनियां विकास की उच्च दर को बनाए नहीं रख सकती हैं। श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने इसे रेस्ट्रेन्ड गोल्डन एज गढ़ा।

यह स्थिति असंभव है. उनके स्वयं के शब्दों में, संचय की वांछित दर के लिए उपयुक्त पौधों के स्टॉक के साथ, जो जनसंख्या की वृद्धि दर और पहले से ही प्राप्त पूर्ण रोजगार से अधिक है, संचय की वांछित दर को प्राप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि दर (यहां तक कि) श्रम की कमी की उत्तेजना के साथ) इसे संभव बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है।
इसलिए, एक संयमित स्वर्ण युग में, संचय की अपर्याप्त दर के कारण बेरोजगारी का अनुपात बढ़ रहा है, श्रमिकों का मानक गिरता है जब तक कि नियोजित श्रमिकों के लिए वास्तविक मजदूरी पर्याप्त रूप से नहीं बढ़ रही है या स्व-रोज़गार के अवसरों को पर्याप्त रूप से पसंद नहीं किया जाता है।

संचय की वांछित दर को इस तथ्य के कारण महसूस नहीं किया जा सकता है कि जब फर्म मौजूदा श्रम बल की तुलना में अधिक श्रम को नियोजित करने की इच्छा रखती है, तो इसके परिणामस्वरूप मौद्रिक मजदूरी और कीमत में वृद्धि होती है जो आगे वित्त उत्पादन के लिए ऋण की मांग को बढ़ाती है। इस प्रकार, यह निवेश की दर को ऐसे बिंदु तक बढ़ा देता है जहां निवेश की जाँच की जाती है।

दूसरी ओर, श्रम की मांग को उपलब्ध आपूर्ति से अधिक होने से रोका जाता है। यदि आरक्षित बेरोजगार बल के साथ विकास दर को नीचे रखा जाता है, तो प्रणाली को संतुलन की स्थिति में कहा जा सकता है। इस प्रकार, ऋण में कोई भी छूट अधिक से अधिक श्रमिकों के स्टॉक और रोजगार को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करेगी जिसका अर्थ है मुद्रास्फीति को निमंत्रण जो काफी अनियंत्रित है।

इस प्रकार, स्वर्ण युग द्वारा नियंत्रित वित्तीय नियंत्रण में अल्पकालिक स्थिरता नहीं हो सकती। श्रम की कमी के मामले में, कंपनियां मजदूरी दरों में वृद्धि करने और बाहर से मजदूरों को आकर्षित करने से बच सकती हैं। इस स्थिति में, फर्मों को लाभ की वांछित दर नहीं मिल पाती है।

ऐसा भी हो सकता है कि वे श्रमिक मिलने की उम्मीद में उत्पादन क्षमता का निर्माण जारी रखें लेकिन उत्पादकता क्षमता का उपयोग कम हो। इस कम उपयोग से पूंजी पर लाभ की दर कम हो सकती है। इस प्रकार, अल्पावधि स्थिरता कायम नहीं रह सकती।

इससे स्पष्ट होता है कि पूंजी और श्रम की उपलब्धता के साथ, बाजार की खामियों के अस्तित्व के कारण विकास की वांछित दर हासिल करना मुश्किल होगा जो अर्थव्यवस्था में एक बड़ी बाधा के रूप में कार्य करती है।

3. बास्टर्ड स्वर्ण युग:

प्रो. आर.एफ. कहन ने मूल रूप से 'बास्टर्ड गोल्डन एज' शब्द का इस्तेमाल किया था। यह वह युग है जहां बेरोजगारी तो है लेकिन वास्तविक मजदूरी नीचे की ओर कठोर बनी हुई है। परिणामस्वरूप, तकनीकी प्रगति के अभाव में संचय की दर नहीं बढ़ सकती। इसलिए, बास्टर्ड गोल्डन एज का तात्पर्य है कि पूंजीगत उपकरणों का स्टॉक इनफ्लैट बाधा के कारण तेजी से नहीं बढ़ता

यह बाधा पूंजी संचय की वृद्धि दर को सीमित कर देती है जिससे बेरोजगारी बढ़ती है। बेरोजगारी तब तक जारी रहेगी जब तक मजदूरी दर एक विशेष स्तर से नीचे नहीं गिर जाती। इसलिए, ऐसी स्थिति जिसमें कीमतों में वृद्धि के कारण बढ़ती मौद्रिक मजदूरी के खतरे के कारण पूंजी संचय की दर कम है, को बास्टर्ड गोल्डन एज कहा जा सकता है।

एक बास्टर्ड स्वर्ण युग दो प्रकार का हो सकता है - उच्च स्तर और निम्न स्तर।

उच्च स्तरीय कमीने युग वह है जो वास्तविक मजदूरी के काफी उच्च स्तर पर कदम रखता है जब संगठित श्रम वास्तविक मजदूरी दर को कम करने के प्रयासों को रोकता है।

ऐसी स्थिति में संचय की दर मुद्रास्फीति अवरोध द्वारा सीमित होती है। जब वास्तविक मजदूरी दर न्यूनतम स्तर पर होती है तो निम्न स्तर की कमीने उम्र कदम रखती है। जीवन का न्यूनतम मानक संचय की दर की एक सीमा निर्धारित करता है। बास्टर्ड स्वर्ण युग उन देशों में मौजूद है जहां श्रम का एक बड़ा अधिशेष है।

अविकसित देशों के लिए प्रयोज्यता:

यह मॉडल जनसंख्या की समस्या और विकासशील अर्थव्यवस्था में पूंजी संचय की दर पर इसके प्रभाव से संबंधित है। यह स्वर्ण युग है जिसे कोई भी देश नियोजित आर्थिक विकास के माध्यम से देख सकता है। अविकसित देश की मुख्य समस्या यह है कि जनसंख्या वृद्धि दर पूंजी वृद्धि की तुलना में तेज़ होती है अर्थात? ΔN/N, ΔK/K.

इसके परिणामस्वरूप अल्प-रोज़गार होता है। अविकसित देशों में, हमें एक ऐसे विकास सिद्धांत की आवश्यकता है जो केवल व्यावहारिक विचारों और तकनीकों पर आधारित हो जो उनके वर्तमान सामाजिक-आर्थिक वातावरण में काम कर सके। मूल्य स्तर में परिवर्तन किए बिना किसी अविकसित देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया केवल अंधे व्यक्ति की बात होगी। अतः कीमत स्तर में कुछ वृद्धि आवश्यक है।

जोन रॉबिन्सन का मॉडल खेल के पूंजीवादी नियमों के खिलाफ है।

प्रो. के.के. कुरिहारा का मानना है कि " जे. रॉबिन्सन की पूंजी वृद्धि की चर्चा में आर्थिक विकास जैसी महत्वपूर्ण समस्या को पूंजीवादी नियमों पर छोड़ने के पूरे विचार को बदनाम करने का सूक्ष्म प्रभाव है, जो कि उनके लाईसेज़ फ़ेयर विकास के मॉडल के लिए है, यह दर्शाता है कि इसे सौंपना कितना अनिश्चित और असुरक्षित है निजी लाभ निर्माताओं के लिए बढ़ती आबादी की जरूरतों और प्रौद्योगिकी को आगे बढ़ाने की संभावना के अनुरूप अर्थव्यवस्था की स्थिर वृद्धि हासिल करना सर्वोपरि कार्य है।"

श्रीमती जे. रॉबिन्सन के आर्थिक विकास के सिद्धांत के लिए 'संभावित विकास अनुपात' महत्वपूर्ण है। स्वर्ण युग विकास अनुपात पर निर्भर करता है। यदि ऐसी अवधि के लिए अर्थव्यवस्था के संभावित विकास अनुपात की गणना श्रम बल की वृद्धि दर और प्रति व्यक्ति उत्पादन के आधार पर की जाती है, तो योजना प्रक्रिया आसान हो जाती है।

पूंजी संचय के मार्ग में मुख्य बाधा जनसंख्या वृद्धि है। जब जनसंख्या की वृद्धि दर पूंजी निर्माण की दर से ऊपर होती है तो यह प्रगतिशील बेरोजगारी की ओर ले जाती है। इस प्रकार, वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए योजना को अधिक यथार्थवादी बनाया जा सकता है और अधिक कुशलता से क्रियान्वित किया जा सकता है।

इसके अलावा, यह अल्प विकसित देशों में निजी निवेश को ही नहीं बल्कि सार्वजनिक निवेश को भी नियंत्रित करने की दिशा में पहल करने का सुझाव देता है। इस प्रकार, श्रीमती जोन रॉबिन्सन राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों की मदद से स्वायत्त निवेश को बढ़ावा देने के लिए मिश्रित सार्वजनिक निजी अर्थव्यवस्था की कीनेसियन तकनीक को अपनाने का संकेत देती हैं।

महत्वपूर्ण मूल्यांकन:

श्रीमती जोन रॉबिन्सन विकास प्रक्रिया का एक दिलचस्प वर्गीकरण प्रस्तुत करती हैं। यह मॉडल अल्प विकसित देशों में आर्थिक विकास की समस्या का अधिक यथार्थवादी विश्लेषण प्रदान करता प्रतीत होता है।

हैरोड-डोमर मॉडल में, पूंजी संचय बचत अनुपात और पूंजी उत्पादकता पर निर्भर करता है, लेकिन रॉबिन्सन मॉडल में, यह लाभ-मजदूरी संबंध और श्रम उत्पादकता पर निर्भर करता है, जो उनके सिद्धांत को वास्तविक बाजार अर्थव्यवस्था के करीब लाता है।

स्वर्ण युग का विचार पूंजी की वृद्धि दर और जनसंख्या की वृद्धि दर के बीच समानता पर जोर देता है। स्थिरता के साथ विकास हासिल करने का प्रयास करने वाले अविकसित देशों के लिए दो विकास दरों के बीच यह अंतर आवश्यक है। अनेक खूबियों के बावजूद यह मॉडल खामियों से मुक्त नहीं है।

इनमें से कुछ कमजोर बिंदुओं का सारांश नीचे दिया गया है:

1. संस्थागत परिवर्तन की उपेक्षा,

2. स्थिर मूल्य स्तर,

3. बंद अर्थव्यवस्था,

4. अवास्तविक धारणाएँ,

5. नीतिगत निहितार्थों के प्रति तटस्थता,

6. मानव पूंजी की भूमिका की अनदेखी,

7. संभावित विकास के संबंध में पूंजी संचय की कम दर,

8. राज्य की कोई भूमिका नहीं, और

9. कोई तकनीकी प्रगति नहीं.

1. संस्थागत परिवर्तन की उपेक्षा:

यह मॉडल बचत को बढ़ावा देने के लिए संस्थागत परिवर्तनों की उपेक्षा करता है।

अन्य बातों के अलावा पूंजी संचय का तात्पर्य है:

(ए) बचत की मात्रा में वृद्धि

(बी) वित्त और ऋण तंत्र

(सी) निवेश का अधिनियम

(डी) पूंजी के उपयोग से जुड़े निवेश का पैटर्न

(ई) बदलती तकनीक। लेकिन इन कारकों को मॉडल में कोई जगह नहीं मिलती।

किसी अर्थव्यवस्था का विकास काफी हद तक सामाजिक, सांस्कृतिक और संस्थागत परिवर्तनों पर निर्भर करता है।

2. स्थिर मूल्य स्तर:

यह मॉडल स्थिर मूल्य स्तर की अवास्तविक धारणा पर आधारित है। निवेश को लगातार बढ़ाना पड़ता है जिससे कारकों की मांग बढ़ जाती है लेकिन मांग को पूरा करने के लिए उनकी आपूर्ति नहीं बढ़ाई जा सकती। इसके परिणामस्वरूप कीमतों में वृद्धि होती है जो एक विरोधाभास है।

3. बंद अर्थव्यवस्था:

यह मॉडल बंद अर्थव्यवस्था पर आधारित है लेकिन यह अवास्तविक है क्योंकि अविकसित देश बंद अर्थव्यवस्था के बजाय खुली अर्थव्यवस्था हैं जिनमें विदेशी व्यापार और सहायता विकास दर को बढ़ाने में विश्वसनीय भूमिका निभाते हैं।

4. अवास्तविक धारणाएँ:

मॉडल की एक और कमजोरी यह है कि यह कुछ मान्यताओं पर आधारित है जो वर्तमान युग में अच्छी नहीं लगती। तकनीकी तटस्थता विकास की गतिशील प्रक्रिया में फिट नहीं बैठती। यदि इन जैसे कारकों को तटस्थ मान लिया जाए तो विकास मॉडल अप्रासंगिक हो जाता है।

बंद अर्थव्यवस्था की धारणा, अहस्तक्षेप निष्पक्षता, मुक्त बाजार प्रणाली, मूल्य स्थिरता और संस्थागत ताकतों की उपेक्षा सभी अवास्तविक हैं, और यह अर्थव्यवस्था को स्थिर बनाती है। स्थिर अर्थव्यवस्था और आर्थिक विकास एक साथ नहीं चल सकते।

5. नीतिगत निहितार्थों के प्रति तटस्थता:

यह आर्थिक विकास के लिए किसी राजकोषीय या मौद्रिक नीति का सुझाव नहीं देता है। प्रो. के.के. कुरिहारा की राय है कि श्रीमती रॉबिन्सन का मॉडल राजकोषीय और मौद्रिक नीति मापदंडों को पेश करने में सक्षम नहीं है। प्रो. वी.बी. सिंह ने अवलोकन किया "इस मॉडल की महत्वपूर्ण कमी आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण नीतिगत निहितार्थों के प्रति इसकी तटस्थता है।" चर्चा का सार यह है कि यह मॉडल राजकोषीय या मौद्रिक मापदंडों पर विचार करने में विफल रहता है जिसके बिना विकास का सिद्धांत कमोबेश अधूरा रहता है।

11. मानव पूंजी की भूमिका की अनदेखी:

यह मॉडल भौतिक पूंजी पर अधिक जोर देता है लेकिन मानव पूंजी की भूमिका को नजरअंदाज करता है। पूंजी के आवश्यक तत्व शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण हैं। मार्क्स ने पूंजी संचय में श्रम उत्पादकता की भूमिका पर जोर दिया। मैक कुलाच में शामिल हैं, निपुणता कौशल पूंजी का संचय। इसके अलावा, वह कहते हैं, पूंजी की उनकी अवधारणा में श्रम की निपुणता कौशल और बुद्धिमत्ता है।

समकालीन विकास अपने विकास सिद्धांतों में "मानव पूंजी में निवेश" को शामिल करके इस दृष्टिकोण की सदस्यता लेता है। मानव पूंजी का अर्थ है शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता और पोषण आदि में निवेश। यह मॉडल आर्थिक विकास के लिए एक स्पष्टीकरण देता है क्योंकि यह संचय पर जोर देता है भौतिक पूंजी जबकि मानव पूंजी की भूमिका की उपेक्षा करती है।

7. संभावित विकास के संबंध में पूंजी संचय की कम दर:

सामान्यतः अविकसित देश पिछड़े होते हैं पूंजी संचय की कमी के कारण संभावित विकास अनुपात और अधिशेष श्रम शक्ति है। इस संबंध में प्रो. के. कुरिहारा ने ठीक ही उल्लेख किया है, " रॉबिन्सन की पूंजी वृद्धि की चर्चा है के पूरे विचार को बदनाम करने का सूक्ष्म प्रभाव आर्थिक विकास जैसी महत्वपूर्ण समस्या को छोड़कर खेल के पूंजीवादी शासन के लिए, उसके मॉडल के लिए अहस्तक्षेप विकास दर्शाता है कि यह कितना अनिश्चित है और इसे लाभ कमाने का काम सौंपना असुरक्षित है का स्थिर विकास प्राप्त करना सर्वोपरि कार्य है एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो बढ़ती हुई जरूरतों के अनुरूप हो आगे बढ़ने जनसंख्या और संभावना तकनीकी।"

8. राज्य की कोई भूमिका नहीं:

श्रीमती जोन रॉबिन्सन के मॉडल में, राज्य की भूमिका को तस्वीर से बाहर रखा गया है। वर्तमान दुनिया में, बढ़ती आबादी और तेजी से बदलती प्रौद्योगिकी की आवश्यकताओं के साथ स्थिर विकास प्राप्त करने के लिए केवल निजी उद्यमियों पर निर्भर रहना अनिश्चित है।

9. कोई तकनीकी प्रगति नहीं

मॉडल के अनुसार कोई तकनीकी प्रगति नहीं है. लेकिन एक गतिशील सेटिंग में जहां तकनीकी प्रगति अंतर्निहित है, उत्पादन का तकनीकी गुणांक अब स्थिर नहीं रह सकता है।

इकाई: 6 आर्थिक विकास में तकनीकी प्रगति

1. **परिचय**
2. **नव-शास्त्रीय विकास मॉडल**
3. **अंतर्जात विकास सिद्धांत**
4. **शुम्पेटेरियन नवप्रवर्तन का सिद्धांत**
5. **क्रॉस-कंट्री तुलना**
6. **नीति क्रियान्वयन**

परिचय

तकनीकी प्रगति, या तकनीकी प्रगति, आर्थिक वृद्धि और विकास के मौलिक चालक का प्रतिनिधित्व करती है। इसका प्रभाव अर्थव्यवस्था के विभिन्न आयामों तक फैला है, जो उत्पादकता, नवाचार और समग्र आर्थिक प्रदर्शन को प्रभावित करता है। यह निबंध तकनीकी प्रगति की अवधारणा, आर्थिक विकास में इसकी भूमिका, इस संबंध को समझाने वाले सैद्धांतिक ढांचे, अनुभवजन्य साक्ष्य और नीति निहितार्थ की पड़ताल करता है। यह समझकर कि कैसे तकनीकी प्रगति आर्थिक परिणामों को आकार देती है, हम उनके महत्व को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और सतत आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए रणनीतियों की जानकारी दे सकते हैं।

तकनीकी प्रगति को समझना

1. परिभाषा और दायरा

तकनीकी प्रगति से तात्पर्य प्रौद्योगिकी और प्रक्रियाओं में सुधार से है जो उत्पादकता और दक्षता को बढ़ाता है। इसमें मशीनरी, उपकरण, उत्पादन तकनीक और सूचना प्रौद्योगिकी में नवाचार शामिल हैं। ये प्रगति फर्मों और अर्थव्यवस्थाओं को समान या कम इनपुट के साथ अधिक उत्पादन करने में सक्षम बनाती है, जिससे उत्पादकता और आर्थिक विकास में वृद्धि होती है।

नवप्रवर्तन: नए उत्पाद, सेवाएँ या प्रक्रियाएँ बनाने की प्रक्रिया। नवाचार वृद्धिशील हो सकते हैं, जैसे मौजूदा प्रौद्योगिकियों में सुधार, या क्रांतिकारी, पूरी तरह से नई प्रौद्योगिकियों को पेश करना जो उद्योगों को बदल देती हैं।

प्रौद्योगिकी का प्रसार: विभिन्न क्षेत्रों और क्षेत्रों में तकनीकी नवाचारों का प्रसार। तकनीकी प्रगति के लाभों को अधिकतम करने और व्यापक आर्थिक लाभ सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी प्रसार महत्वपूर्ण है।

2. ऐतिहासिक सन्दर्भ

ऐतिहासिक रूप से, तकनीकी प्रगति ने आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। औद्योगिक क्रांति, जो 18वीं सदी के अंत में शुरू हुई, भाप इंजन, मशीनीकृत कपड़ा उत्पादन और बेहतर परिवहन बुनियादी ढांचे सहित परिवर्तनकारी तकनीकी प्रगति की अवधि का प्रतीक है। इन नवाचारों ने उत्पादकता और आर्थिक उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि को उत्प्रेरित किया, जिससे आधुनिक आर्थिक विकास के लिए मंच तैयार हुआ।
सैद्धांतिक रूपरेखा

1. नव-शास्त्रीय विकास मॉडल

रॉबर्ट सोलो और ट्रेवर स्वान द्वारा विकसित नियो-क्लासिकल ग्रोथ मॉडल, इस बात की मूलभूत समझ प्रदान करता है कि तकनीकी प्रगति आर्थिक विकास में कैसे योगदान देती है। मॉडल एक उत्पादन फ़ंक्शन को शामिल करता है और बहिर्जात तकनीकी प्रगति मानता है।

उत्पादन फलन : कोब-डगलस मॉडल उत्पादन फलन का उपयोग करता है जिसे $Y = AK^{\alpha}L^{1-\alpha}$ के रूप में दर्शाया जाता है, जहां Y आउटपुट है, A तकनीकी प्रगति का प्रतिनिधित्व करता है, K पूंजी है, और L श्रम है। पैरामीटर α पूंजी की आउटपुट लोच को दर्शाता है। यह फलन पैमाने पर निरंतर रिटर्न और पूंजी पर घटते सीमांत रिटर्न को प्रदर्शित करता है।

पूंजी संचय और स्थिर-राज्य विकास: पूंजी संचय मॉडल का केंद्र है। निवेश से पूंजी भंडार बढ़ता है, जबकि मूल्यह्रास इसे कम करता है। मॉडल भविष्यवाणी करता है कि अर्थव्यवस्थाएं एक स्थिर-राज्य विकास पथ पर पहुंचती हैं जहां प्रति कर्मचारी उत्पादन तकनीकी प्रगति की दर से बढ़ता है। स्थिर स्थिति को संतुलित विकास की विशेषता है, जिसमें पूंजी पर कम रिटर्न दीर्घकालिक संतुलन को प्रभावित करता है।

बहिर्जात तकनीकी प्रगति: नव-शास्त्रीय मॉडल में तकनीकी प्रगति को बहिर्जात माना जाता है, जिसका अर्थ है कि इसे मॉडल के भीतर ही नहीं समझाया गया है, बल्कि यह माना जाता है कि यह एक स्थिर दर पर घटित होती है। यह प्रगति उत्पादन कार्य को ऊपर की ओर ले जाती है, जिससे प्रति श्रमिक उत्पादन में निरंतर वृद्धि की सुविधा मिलती है।

2. अंतर्जात विकास सिद्धांत

पॉल रोमर और रॉबर्ट लुकास जैसे अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित अंतर्जात विकास सिद्धांत, एक अंतर्जात कारक के रूप में तकनीकी प्रगति को शामिल करके नव-शास्त्रीय ढांचे का विस्तार करता है। यह सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि आर्थिक विकास अर्थव्यवस्था के आंतरिक कारकों से होता है।

मानव पूंजी और ज्ञान का फैलाव: अंतर्जात विकास सिद्धांत मानता है कि शिक्षा और प्रशिक्षण जैसी मानव पूंजी में निवेश, उत्पादकता बढ़ाता है और नवाचार को बढ़ावा देता है। ज्ञान का फैलाव तब होता है जब नवाचार और विचार फर्मों और उद्योगों में फैलते हैं, जिससे आगे की तकनीकी प्रगति होती है। यह प्रक्रिया मानव पूंजी और नवाचार द्वारा संचालित विकास का एक स्व-सुदृढ़ीकरण चक्र बनाती है।

अनुसंधान एवं विकास और नवाचार: नई प्रौद्योगिकियों को उत्पन्न करने और मौजूदा प्रौद्योगिकियों को बेहतर बनाने में अनुसंधान एवं विकास गतिविधियां महत्वपूर्ण हैं। कंपनियां और सरकारें नवीन उत्पादों और प्रक्रियाओं को विकसित करने के लिए अनुसंधान एवं विकास में निवेश करती हैं, जो उत्पादकता और प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाकर आर्थिक विकास में योगदान देती हैं। अंतर्जात विकास सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि नवाचार के लिए प्रोत्साहन, जैसे बौद्धिक संपदा अधिकार और सरकारी नीतियां, विकास पथ को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3. शुम्पेटेरियन नवप्रवर्तन का सिद्धांत

जोसेफ शुम्पीटर का नवाचार का सिद्धांत तकनीकी प्रगति और आर्थिक विकास के बीच संबंधों पर एक और परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने में उद्यमिता और रचनात्मक विनाश की भूमिका पर जोर दिया।

रचनात्मक विनाश: शुम्पीटर ने "रचनात्मक विनाश" की अवधारणा पेश की, जहां नई प्रौद्योगिकियां और नवाचार पुरानी प्रौद्योगिकियों की जगह लेते हैं, जिससे आर्थिक प्रगति होती है। इस प्रक्रिया में

अर्थव्यवस्था का निरंतर पुनर्गठन शामिल है, जिसमें उद्यमशीलता गतिविधियां तकनीकी प्रगति को बढ़ावा देती हैं और मौजूदा बाजारों को बाधित करती हैं।

उद्यमियों की भूमिका: उद्यमी नई तकनीकों और व्यवसाय मॉडल को पेश करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जोखिम लेने और नवीन उद्यमों में निवेश करने की उनकी इच्छा नई प्रौद्योगिकियों के प्रसार को बढ़ावा देती है और आर्थिक विकास को बढ़ावा देती है। शुम्पीटर का सिद्धांत तकनीकी प्रगति की गतिशील प्रकृति और आर्थिक विकास पर इसके प्रभाव पर प्रकाश डालता है।

अनुभवजन्य साक्ष्य

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

ऐतिहासिक साक्ष्य आर्थिक विकास पर तकनीकी प्रगति के गहरे प्रभाव को दर्शाते हैं। औद्योगिक क्रांति परिवर्तनकारी तकनीकी प्रगति के दौर को चिह्नित करती है जिसने आर्थिक विकास को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ावा दिया।

औद्योगिक क्रांति: औद्योगिक क्रांति के दौरान भाप इंजनों की शुरूआत, मशीनीकृत कपड़ा उत्पादन और परिवहन बुनियादी ढांचे में सुधार से उत्पादकता और आर्थिक उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। इन तकनीकी नवाचारों ने कृषि अर्थव्यवस्थाओं से औद्योगिक समाजों में बदलाव को उत्प्रेरित किया, जिससे निरंतर आर्थिक विकास के लिए मंच तैयार हुआ।

युद्धोपरांत आर्थिक विस्तार: 20वीं सदी के मध्य में विकसित अर्थव्यवस्थाओं में तेजी से आर्थिक विकास देखा गया, जो तकनीकी प्रगति और नवाचारों से प्रेरित था। सूचना प्रौद्योगिकी, दूरसंचार और स्वचालन के विकास ने उत्पादकता और आर्थिक विस्तार में वृद्धि में योगदान दिया। ज्ञान अर्थव्यवस्था के उदय ने कंप्यूटिंग और डिजिटल प्रौद्योगिकियों में प्रगति के माध्यम से विकास को और तेज कर दिया है।

2. क्रॉस-कंट्री तुलना

क्रॉस-कंट्री तुलनाएं इस बात की अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं कि विभिन्न राष्ट्र तकनीकी प्रगति और आर्थिक विकास के बीच संबंधों का अनुभव कैसे करते हैं। तकनीकी अपनाने, नवाचार क्षमता और संस्थागत गुणवत्ता जैसे कारक विकास परिणामों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

विकसित बनाम विकासशील देश: विकसित देश विकासशील देशों की तुलना में उच्च स्तर की तकनीकी प्रगति और नवाचार क्षमता प्रदर्शित करते हैं। यह असमानता विकास दर को प्रभावित करती है, विकसित अर्थव्यवस्थाएं उन्नत प्रौद्योगिकियों और कुशल उत्पादन प्रक्रियाओं से लाभान्वित होती हैं। इसके विपरीत, विकासशील देशों को नई प्रौद्योगिकियों को अपनाने और उनके प्रसार में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, जिससे उनकी विकास क्षमता प्रभावित हो सकती है।

संस्थानों की भूमिका: संपत्ति के अधिकार, कानूनी ढांचे और शासन संरचनाओं सहित संस्थान, विकास को आगे बढ़ाने में तकनीकी प्रगति की प्रभावशीलता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। मजबूत संस्थान नवाचार और निवेश की सुविधा प्रदान करते हैं, जबकि कमजोर संस्थान तकनीकी अपनाने और आर्थिक विकास में बाधा बन सकते हैं।

3. केस स्टडीज

विशिष्ट उद्योगों और देशों के केस अध्ययन तकनीकी प्रगति और आर्थिक विकास के बीच संबंधों में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी): आईसीटी क्षेत्र हाल के दशकों में आर्थिक विकास का एक प्रमुख चालक रहा है। कंप्यूटिंग, दूरसंचार और इंटरनेट में नवाचारों ने उद्योगों में क्रांति ला दी है, उत्पादकता में सुधार किया है और नए आर्थिक अवसर पैदा किए हैं। जिन देशों ने आईसीटी का प्रभावी ढंग से उपयोग किया है, उन्होंने त्वरित विकास और बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धात्मकता का अनुभव किया है।

चीन का आर्थिक परिवर्तन: पिछले कुछ दशकों में चीन की तीव्र आर्थिक वृद्धि तकनीकी प्रगति और नवाचार से निकटता से जुड़ी हुई है। बुनियादी ढांचे के विकास, विनिर्माण प्रौद्योगिकियों और डिजिटल परिवर्तन पर देश के फोकस ने पर्याप्त आर्थिक प्रगति को प्रेरित किया है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन के एकीकरण और तकनीकी नवाचार पर उसके जोर ने एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में उसके उदय में योगदान दिया है।

नीति क्रियान्वयन

1. नवाचार और अनुसंधान एवं विकास को बढ़ावा देना

सरकारें और नीति निर्माता नवाचार और तकनीकी प्रगति के लिए अनुकूल वातावरण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसी नीतियां जो अनुसंधान और विकास का समर्थन करती हैं, निजी क्षेत्र के निवेश को प्रोत्साहित करती हैं, और शिक्षा और उद्योग के बीच सहयोग को बढ़ावा देती हैं, आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं।

अनुसंधान एवं विकास में निवेश: नई प्रौद्योगिकियों और नवाचारों के निर्माण के लिए अनुसंधान एवं विकास में सार्वजनिक और निजी निवेश महत्वपूर्ण हैं। सरकारें अनुसंधान कार्यक्रमों के लिए धन, अनुसंधान एवं विकास गतिविधियों के लिए कर प्रोत्साहन और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण पहल के लिए समर्थन प्रदान कर सकती हैं। अनुदान और सब्सिडी के माध्यम से अनुसंधान एवं विकास में निजी क्षेत्र के निवेश को प्रोत्साहित करना भी तकनीकी प्रगति को प्रोत्साहित कर सकता है।

शिक्षा और कौशल विकास: मानव पूंजी के निर्माण और नवाचार को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा और कौशल विकास में निवेश महत्वपूर्ण है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच प्रदान करना, एसटीईएम (विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित) विषयों को बढ़ावा देना और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का समर्थन करना कार्यबल की क्षमताओं को बढ़ाता है और तकनीकी प्रगति को आगे बढ़ाता है।

2. बुनियादी ढांचे और कनेक्टिविटी को बढ़ाना

तकनीकी प्रगति और आर्थिक विकास को समर्थन देने के लिए बुनियादी ढांचे का विकास और कनेक्टिविटी मौलिक हैं। परिवहन, संचार और ऊर्जा बुनियादी ढांचे में निवेश नई प्रौद्योगिकियों के प्रसार को सुविधाजनक बनाता है और उत्पादकता में सुधार करता है।

परिवहन अवसंरचना: कुशल परिवहन नेटवर्क लेनदेन लागत को कम करते हैं, आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन को बढ़ाते हैं और वस्तुओं और सेवाओं की आवाजाही का समर्थन करते हैं। सड़कों, रेलवे, बंदरगाहों और हवाई अड्डों में निवेश कनेक्टिविटी और बाजार पहुंच में सुधार करके आर्थिक विकास में योगदान देता है।

डिजिटल कनेक्टिविटी: तकनीकी प्रगति को सक्षम करने के लिए हाई-स्पीड इंटरनेट और डिजिटल प्रौद्योगिकियों तक पहुंच महत्वपूर्ण है। ब्रॉडबैंड बुनियादी ढांचे का विस्तार, डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा

देना और नवाचार पारिस्थितिकी तंत्र का समर्थन करना डिजिटल अर्थव्यवस्था के विकास और उत्पादकता को बढ़ाने में योगदान देता है।

3. संस्थानों और शासन को मजबूत करना

तकनीकी प्रगति और आर्थिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए मजबूत संस्थान और प्रभावी शासन आवश्यक हैं। नीति निर्माताओं को नवाचार और निवेश का समर्थन करने के लिए संपत्ति के अधिकारों को मजबूत करने, अनुबंधों को लागू करने और पारदर्शिता को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

संपत्ति अधिकार और बौद्धिक संपदा: बौद्धिक संपदा अधिकारों की रक्षा रचनाकारों और अन्वेषकों के लिए प्रोत्साहन प्रदान करके नवाचार को प्रोत्साहित करती है। पेटेंट, कॉपीराइट और ट्रेडमार्क का प्रभावी प्रवर्तन नई प्रौद्योगिकियों में नवाचार और निवेश की संस्कृति को बढ़ावा देता है।

नियामक ढाँचे: आर्थिक विकास को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रौद्योगिकी अपनाने और नवाचार के लिए स्पष्ट और कुशल नियामक ढाँचे का विकास करना महत्वपूर्ण है। नीति निर्माताओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि नियम प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दें, तकनीकी प्रगति का समर्थन करें और नई प्रौद्योगिकियों से जुड़े संभावित जोखिमों का समाधान करें।

4. असमानता और समावेशिता को संबोधित करना

तकनीकी प्रगति का समाज के विभिन्न वर्गों पर असमान प्रभाव पड़ सकता है। नीति निर्माताओं को असमानता और समावेशिता के मुद्दों पर ध्यान देना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि तकनीकी प्रगति के लाभ व्यापक रूप से साझा किए जाएं।

प्रौद्योगिकी तक पहुंच: समावेशिता को बढ़ावा देने के लिए प्रौद्योगिकी और डिजिटल संसाधनों तक समान पहुंच सुनिश्चित करना आवश्यक है। ऐसे कार्यक्रम जो वंचित समुदायों तक प्रौद्योगिकी पहुंच प्रदान करते हैं, डिजिटल साक्षरता का समर्थन करते हैं, और डिजिटल विभाजन को कम करते हैं, अधिक न्यायसंगत विकास परिणामों में योगदान करते हैं।

सामाजिक सुरक्षा जाल: तकनीकी परिवर्तन से प्रभावित श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा जाल और सहायता कार्यक्रम लागू करना महत्वपूर्ण है

खण्ड–04

व्यापार चक्र एवं समष्टिभावी आर्थिक नीतियां

इकाई 01

व्यापार चक्र अवधारणा सिद्धान्त : व्यापार चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त– हाट्रे, हेयक एंव शुम्पीटर

इकाई की रुपरेखा–

1.1 प्रस्तावना

1.2 व्यापार चक्र की परिभाषा

1.3 हाट्रे का व्यापार चक्र

1.4 हॉयक का व्यापार चक्र

1.5 शुम्पीटर का व्यापार चक्र

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

आर्थिक क्रियाओं में सत्त साम्य की स्थिति का पाया जाना दुर्लभ है। आर्थिक क्रियाओं अथवा संवृद्धि अनेक चरो जैसे निवेश, मांग मुद्रा आपूर्ति, लाभ प्रत्याशा इत्यादि पर निर्भर करता है जिनें हमेशा, संतुलन में नहीं पाया जाता है। इसका परिणाम कभी आर्थिक गतिविधियाँ अधिक तीव्र हो जाती है तो अगले समय मंद, इस अर्थशास्त्र में आर्थिक उच्चवचन अथवा व्यापार चक्र कहते है।

व्यापार चक्र की परिभाषा को लेकर अर्थशास्त्रियों में पर्याप्त मतभेद है। प्रो0 कींस ने व्यापार चक्र को अच्छे व्यापार अवधि (जिसमें मूल्य वृद्धि तथा रोजगार में कमी होती है)। तथा मंद व्यापार की अवधि (जिसमें निवेश तथा कीमतों में कमी होती है)। का मिश्रण है''

अन्य शब्दों में कहा जाए तो आर्थिक क्रियाओं अथवा संवृद्धि निवेश, कीमत तथा रोजगार आदि में वृद्धि के बाद संवृद्धि में गिरावट को व्यापार चक्र कहते है।

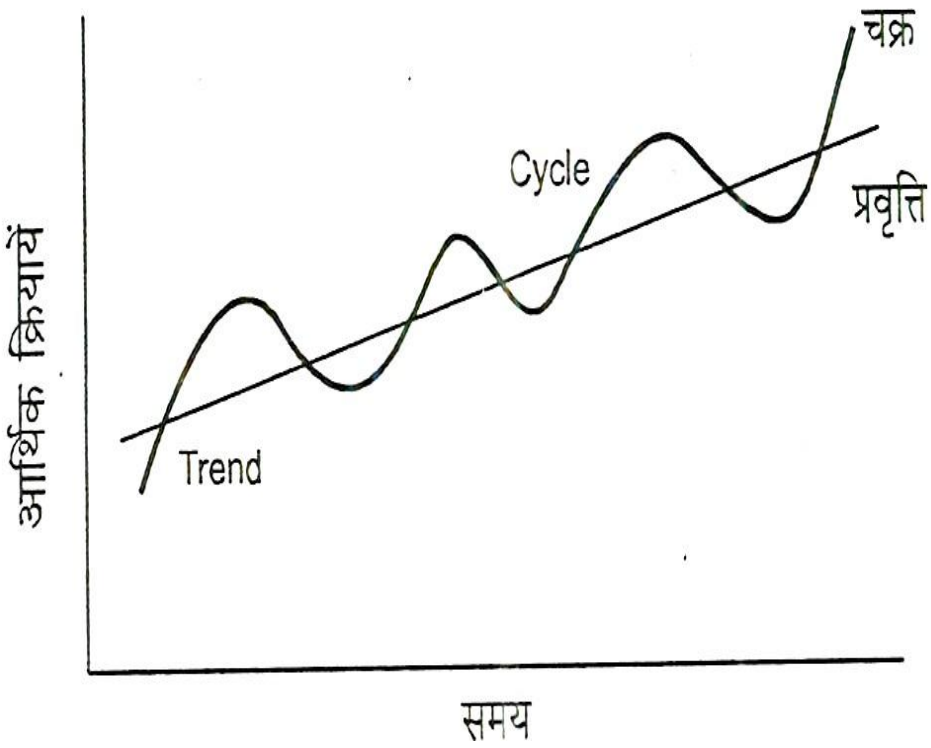

चित्र–1 से स्पष्ट है कि संवृद्धि के बाद मंदी तथा मंदी के बाद संवृद्धि का चक्र व्यापार चक्र है। व्यापार चक्र के कारण अथवा सिद्धान्त को तीन भागों में बाटा गया है–

(A) मौद्रिक सिद्धान्त (हाट्रे, हेयक तथा शुम्पीटर)

(B) गैर मौद्रिक सिद्धान्त

(C) गुणक त्वरक अंतरक्रिया (सैमुएल्सन)

हाट्रे का व्यापार चक्र सिद्धान्त

हाट्रे का व्यापार चक्र सिद्धान्त विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त है क्योंकि वे समग्र मांग को स्वयं एक मौद्रिक घटना मानते है। हाट्रे मानते है कि अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति में असंतुलन समग्र मांग को असंतुलित कर देता है जिससे कीमत स्तर निवेश, रोजगार आदि आर्थिक क्रियाओं में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है जो अन्ततः व्यापार चक्रों को जन्म देता है। इस प्रकार हाट्रे व्यापार चक्र को मौद्रिक प्रतिभास मानते है। अपने व्यापार चक्र सिद्धान्त में हाट्रे गैर मौद्रिक कारणों जैसे सूखा, भूकम्प, हड़ताल की अवहेलना नहीं करते किन्तु वे

मानते है ऐसे कारण मात्र व्यापार चक्र की गम्भीरता को बढ़ाते अथवा घटाते है स्वयं व्यापार चक्र के जन्म नहीं होते है।

मान्यताएँ

- मुद्रा पूर्ति का अधिकांश भाग व्यापारिक बैंक साख सृजन द्वारा करते है।
- सरकारी हस्तक्षेप का अभाव है।
- वस्तुओं तथा सेवाओं की समग्र मांग, मौद्रिक मांग है।
- निवेश, ब्याज दर परिवर्तनों पर निर्भर है।
- अर्थव्यवस्था में असंतुलन होने पर ऐसी संचयी शक्तियाँ क्रियाशील होती है जो इससे संस्थिति पथ से दूर ले जाती है।

उपर्युक्त इसे मान्यताओं के आधार पर हाट्रे ने अपने व्यापार चक्र की व्याख्या की।

विस्तार की अवस्था

हाट्रे मानते है कि विस्तार की अवस्था उस समय होगी जब बैंक साख सृजन के माध्य में ऋण विस्तार की रणनीति अपनाते है। इसके अंतर्गत व्यापारिक बैंक अपने ब्याज दरों में कटौती करते है। ब्याज दर में कमी थोक व्यापारी की लाभ प्रत्याशा (क्योंकि ऋण लागत में कमी) को बढ़ा देते है जिससे वे वस्तुओं तथा सेवाओं का अधिक स्टॉक अपने पास रखने को प्रेरित होते है। थोक व्यापारी, उत्पादकों को अधिक मात्रा में वस्तुओं का ऑर्डर देता है जिससे उत्पादक रोजगार तथा कच्चा माल दोनों पर निवेश बढ़ाता है। इससे लोगों की आय बढ़ती है। रोजगार व आय में वृद्धि उपभोक्ता मांग (समग्र मांग) को बढ़ते है जिससे कीमत स्तर व उत्पादन लागत में वृद्धि होती है।

आलोचना

- व्यापार चक्र के अन्य कारणों की उपेक्षा।
- अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित।
- थोक व्यापारियों पर आवश्यकता से अधिक महत्व।

हेयक का व्यापार चक्र सिद्धान्त

हेयक ने व्यापार चक्र का मौद्रिक अधि विनियोग सिद्धान्त दिया। हाट्रे की भाँति हेयक भी मानते है कि व्यापार चक्र का कारण मौद्रिक असंतुलन है किन्तु वे मानते है कि मौद्रिक असंतुलन, उत्पादन ढाँचे में असंतुलन को जन्म देता है तथा उत्पादन ढाँचे का असंतुलन व्यापार चक्र को। हेयन ने उत्पादन ढाँचे को पूंजीगत उद्योग तथा वस्तु उद्योग में विभाजित किया है।

विस्तार (अभिवृद्धि की अवस्था)

विस्तार की अवस्था की व्याख्या करने के लिए हेयक मानते है कि प्रारम्भ में अर्थव्यवस्था अवसाद की स्थिति में इस स्थिति में बैंको के पास अधिक नगद शेष है। अतः बैंक ब्याज दरों को घटाते है जो प्राकृतिक ब्याज दर से कम है। कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्धता पूंजीगत उद्योगों में निवेश को प्रेरित करेगा क्योंकि कम लागत पर अधिक पूंजी उपलब्ध होगी। पूंजीगत उद्योगों में निवेश वृद्धि रोजगार तथा आय को बढ़ायेगा जिससे उपभोग वस्तुओं की मांग बढ़ेगी फलतः कीमतें बढ़ेंगी। उपभोग वस्तुओं की बढ़ती कीमत लाभ की दर बढ़ाएगी जो पुनः उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में निवेश को बढ़ाएगी। फलतः आय व रोजगार विस्तार की संचयी प्रक्रिया शुरू हो जाएगी जिससे व्यापार चक्रों का जन्म हो जायेगा।

अधोमुखी प्रवृत्ति

अभिवृद्धि की अवस्था के बाद अधोमुखी गति दो कारणों से उत्पन्न होगा प्रथम बैंको के साख विस्तार की सीमा, द्वितीय साधनों की कीमत में वृद्धि के फलस्वरूप लाभ में कमी। ज्ञातव्य हो कि विस्तार की दशा में पूंजीगत उद्योग तथा वस्तु उद्योग में साधनों को लेकर प्रतिस्पर्धा बढ़ती हो जिससे साधनों की कीमत व्यापारियों के लाभ बढ़ते है जिससे थोक व्यापारी तथा उत्पादक वर्ग पुनः अधिक निवेश को प्रेरित होगा। इस प्रकार मूल्य स्तर व लाभ प्रत्याशा की वृद्धि अर्थव्यवस्था में संचयी प्रवृत्ति को जन्म देगी जिससे आर्थिक क्रियाओं में विस्तार अथवा उर्ध्वमुखी गति प्रारम्भ हो जाती है। इसे संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

ब्याज दर में कमी– थोक व्यापारी तथा उत्पादक की लाभ में वृद्धि– निवेश तथा रोजगार में वृद्धि– लोगों की मौद्रिक आय तथा समग्र मांग में वृद्धि–पुनः निवेश रोजगार, व आय में वृद्धि।

अधोमुखी गति

आर्थिक क्रियाओं में विस्तार की अवस्था उस समय रूक जाती है जब व्यापारिक बैंक साख विस्तार के बजाए साख संकुचन की नीति अपनाते है। हाट्रे मानते है कि बैंक साख सृजन की एक सीमा होती है जैसे जैसे बैंक साख सृजन करते जाते है उनके नगद कोष में कमी आती जाती है। ज्ञातव्य हो कि व्यापारिक बैंक अपने नगद कोष के आधार पर ही साख सृजन करते है इसके अलावा केन्द्रीय बैंक भी गम्भीर मुद्रा स्फीति की दशा कठोर मुद्रा नीति अपनाते हुए बैकों की साख सृजन पर रोक लगा देता है। इस प्रकार बैंक ब्याज दर में वृद्धि, थोक व्यापारियों को अपने स्टॉक में कमी लाने को प्ररित करता है, जो अंततः उत्पादकों के निवेश को कम करता है। निवेश में कमी, रोजगार व आय में कमी लाता है जो अंततः कीमत स्तर व लाभों को कम कर देता है इस प्रकार एक संचयी प्रक्रिया शुरू हो जाती है जिससे आर्थिक क्रियाओं में अधोमुखी गति प्रारम्भ हो जाती है।

पुनरुद्धार

हाट्रे मानते है कि आर्थिक क्रियाओं में गिरावट की एक सीमा होगी। मंदी/अवसाद की दशा में व्यापारी कीमतों में और गिरावट की आशंका में अपने स्टॉक को बेचना प्रारम्भ करेंगे तथा प्राप्त आय से बैंक ऋणों का भुगतान करने लगेंगे। बैंक ऋणों की वापसी व्यापारिक बैंकों के नगद कोष को बढ़ाएंगे जिससे बैंकों की साख सृजन क्षमता बढ़ेगी जो उन्हे ब्याज दरों को कम करने को प्रेरित करेगी। इस प्रकार ब्याज दर में कमी पुनः निवेश रोजगार व आय विस्तार को जन्म देंगे। बढ़ती जाती है जिससे लाभ की दर में कमी जाती है। लाभ की कमी पूंजीगत उद्योगों में निवेश, रोजगार तथा आय को कम हो कर देगा जिससे समग्र मांग में कमी आयेगी। समग्र मांग में कमी उपभोग उद्योग में भी निवेश को हतोत्साहित करेगा फलतः आर्थिक क्रियाओं में एक संचयी प्रवृत्ति जन्म लेगी जो निवेश, रोजगार, आय आदि में गिरावट को बढ़ावा देगी। इसके अलावा हेयक मानते है कि विस्तार की दशा में बैंको के नगद शेष में कमी के कारण बैंक ब्याज दर को बढ़ा देते

है जो आर्थिक गतिविधियों में गिरावट की दर को और तेज कर देता है तथा अर्थव्यवस्था अवसाद की दशा में पहुच जाती है।

आलोचना

- गैर मौद्रिक कारकों की उपेक्षा।
- गुणक तथा त्वरक अंतरक्रिया की उपेक्षा की गयी।
- अर्थव्यवस्था को पूंजीगत उद्योग तथा उपभोग उद्योग में बटवारा अव्यवहारिक है।
- यह मुद्रा की तटस्थता अवधारणा पर कार्य करता है।
- नंद मॉडल व अहस्तक्षेप की नीति पर आधारित।

शुम्पीटर का नवप्रवर्तन सिद्धान्त

व्यापार चक्र के संदर्भ में शुम्पीटर ने नव प्रवर्तन का सिद्धान्त दिया। नव प्रवर्तन से आशय ऐसी नयी तकनीकि, उत्पाद प्रक्रिया अथवा वस्तु से है जिसके परिणाम स्वरूप उत्पादन में वृद्धि हो जाए। इसके अन्तर्गत नई प्रौद्योगिकी, नये उत्पादक की खोज, कच्चे माल के नये स्रोत की खोज तथा नये बाजार तक पहुच इत्यादि शामिल है। शुम्पीटर मानते है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में समय–समय पर नव–प्रवर्तन होते रहते है जो अंततः व्यापार चक्रों को जन्म देते है।

विस्तार की अवस्था

शुम्पीटर मानते है कि आर्थिक क्रियाओं में विस्तार की प्रक्रिया उस समय शुरू होती है जब कोई उद्यमी नव प्रवर्तन करता है जिससे उसके लिए उत्पादन व लाभ की दर बढ़ती है। प्रारम्भ में केवल कुछ उद्यमियों का समूह नव प्रवर्तन करता है किन्तु कालान्तर में झुण्ड के झुण्ड नव प्रवर्तन क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती है। नव–प्रवर्तन की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति बैंक साख सृजन के माध्यम से करते है जिससे निवेश, आय, रोजगार आदि में वृद्धि होती है तीव्र उर्ध्वमुखी प्रक्रिया तब तक होगी जब तक की पूर्ण रोजगार स्तर न आ जाए। पूर्ण रोजगार के बाद नव प्रवर्तन तथा लाभ की सम्भवना कम हो जाती है तथा नया उद्योग तभी स्थापित किया जा सकेगा जबकि साधनों को अधिक पारिश्रमिक देकर उन्हें चालू उद्योग से स्थानांतरित किया जाए। नये उद्योगों की स्थापना तथा साधनों को ऊँची पारिश्रमिक एक ओर लागत बढ़ाएगा तो दूसरी और वस्तुओं तथा

सेवाओं की मांग तथा कीमत स्तर को। इस प्रकार नव प्रवर्तन अर्थव्यवस्था में संचयी प्रवृत्ति को जन्म देगी जिससे आर्थिक गतिविधियों में उर्ध्व गति तीव्र हो जायेगी।

अधोमुखी या संकुचन की प्रवृत्ति

शुम्पीटर मानते है कि अर्थव्यवस्था में अभिवृद्धि की स्थिति में तीन शक्तियाँ जन्म लेती है जो अधोमुखी गति को प्रेरित करती है प्रथम साख संकुचन, द्वितीय लागतों में वृद्धि तथा तीसरा कीमत स्तर में कमी। शुम्पीटर मानते हैं बैंको की साख सृजन की एक सीमा होती है जिसके पश्चात् वे ब्याज दर को बढ़ाते है जिससे निवेश तथा उत्पादन की लागते बढ़ जाती है। इसके अलावा अभिवृद्धि की दशा में साधनों के लेकर होने वाली स्पर्धा उत्पादन के साधनों की कीमत बढ़ती है जिससे अंततः उत्पादन को लागत और बढ़ जाती है वही शुम्पीटर मानते है कि अर्थव्यवस्था में नयी वस्तुए आती है जिससे कीमतों में कमी आयेगी। इस प्रकार लागतों में वृद्धि तथा वस्तुओं की कीमतों में कमी के कारण लाभ की मात्रा कम होगी, जिससे निवेश, रोजगार व आय में कमी आयेगी। इसके अलावा साख संकुचन व ऋणों का भुगतान होगा जो निवेश, रोजगार व आय को और कम कर देगी जिससे बेरोजगारी के साथ क्रय क्षमता घटेगी और एक संचयी प्रवृत्ति जन्म लेगी जिससे अर्थव्यवस्था अवसाद अथवा मंदी में पहुच जायेगी।

इस प्रकार शुम्पीटर मानते है कि जहाँ एक ओर नव–प्रवर्तन आर्थिक क्रियाओं में विस्तार की प्रवृत्ति को जन्म देते है वही इससे प्राप्त होने वाले परिणाम आर्थिक संकुचन का कारण बनते है।

इकाई 02

कींस का व्यापार चक्र सिद्धान्त, काल्डार एवं सैमुएल्सन के सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा–

2.1 भूमिका

2.2 कींस का व्यापार चक्र सिद्धान्त

2.3 काल्डार का व्यापार चक्र सिद्धान्त

2.4 सैमुएल्सन का व्यापार चक्र सिद्धान्त

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

आर्थिक क्रियाओं में सत्त साम्य की दशा दुर्लभ है। सत्त साम्य के बजाए पूंजीवादी देशों में कभी आर्थिक गतिविधियों जैसे– निवेश रोजगार, आय इत्यादि में तीव्रता तो कभी गिरावट दिखायी देती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं में होने वाले उच्चावचन को ही व्यापार चक्र कहते हे। व्यापार चक्र के मौद्रिक व गैर मौद्रिक कारण होते है।

आर्थिक क्रियाओं में सत्त साम्य की दशा दुर्लभ है। सत्त साम्य के बजाए पूंजीवादी देशों में कभी आर्थिक गतिविधियों जैसे– निवेश, रोजगार, आय इत्यादि में तीव्रता तो कभी या गिरावट दिखायी देती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं में होने वाले उच्चावचन को ही व्यापार चक्र कहते है। व्यापार चक्र के मौद्रिक व गैर मौद्रिक कारण होते है।

कींस का व्यापार चक्र सिद्धान्त

अंग्रेज अर्थशास्त्री कींस ने किसी विशेष व्यापार चक्र का सिद्धान्त नहीं दिया बल्कि अपनी पुस्तक जनरल थ्योरी में उत्पादन तथा रोजगार का जो सिद्धान्त दिया उसमें व्यापार चक्र की झलक मिलती है। कींस मानते है अर्थव्यवस्था में आय तथा रोजगार का निर्धारण उस

बिन्दु पर होगा जिस पर समग्र मांग, समग्र पूर्ति के बराबर हो। चूंकि अल्पकाल में वे समग्र पूर्ति को स्थिर मानते है अतः आय व रोजगार का निर्धारण समग्र मांग पर निर्भर करता है।

समग्र मांग को वह वस्तुओं तथा सेवाओं पर उपभोग व्यय C तथा पूंजीगत वस्तु पर निवेश व्ययI का योग मानते है। कींस मानते है कि अल्पकाल में उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति MPC स्थिर होती है अतः आय निर्धारण में पूंजीगत निवेश अधिक महत्वपूर्ण है। अर्थव्यवस्था में समग्र निवेश ब्याज दर तथा पूंजी की सीमांत उत्पादकता (पूंजी पर प्रत्याशित लाभ) पर निर्भर करता है। अल्पकाल में ब्याज पर लगभग स्थिर होता है अतः निवेश पूंजी की सीमांत उत्पादकता MEC पर निर्भर करता है। कींसीय निवेश मॉडल में पूंजी की सीमांत उत्पादकता MEC पूंजीगत पदार्थ की लागत तथा पूंजी पदार्थ से प्राप्त भावी आय पर निर्भर करता है। इसमें भी पूर्ति लागत के बजाए प्राप्त भावी आय अधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार कींस व्यापार चक्र को पूंजी की सीमांत उत्पादकता में होने वाले परिवर्तनों के कारण मानते है क्योंकि MEC में उच्चावचन निवेश, रोजगार तथा आय में उच्चावचन को जन्म देता है।

उर्ध्वमुखी गति Upswing

कींस के कारण जब किसी कारण MEC ब्याज दर से अधिक हो जाती है तो विनियोग में वृद्धि लाती है। विनियोग में यह वृद्धि गुणक क्रियाशीलन के कारण रोजगार तथा आय में अधिक वृद्धि लाती है। आय में होने वाली वृद्धि समग्र मांग तथा MEC में और वृद्धि लायेगी जिससे विनियोग आय तथा रोजगार में और अधिक वृद्धि होगी। इस प्रकार यह संचयी वृद्धि अर्थव्यवस्था अभिवृद्धि की दशा में पहुचा देगी।

अधोमुखी गति/संकुचन

कींस मानते है कि अभिवृद्धि की प्रवृत्ति उस समय रूक जाएगी जब पूंजी की सीमांत उत्पादकता MEC में कभी आने लगती है। MEC में गिरावट दो कारणों से होती है प्रथम पूंजीगत पदार्थ की अधिकता के कारण उनकी कीमत में कमी, द्वितीय पूंजीगत परिसम्पत्ति की लागत में वृद्धि। ये दोनों ही कारण पूंजी निवेश पर प्राप्त प्रत्याशित आय अथवा लाभ की दर को कम कर देते है जिससे MEC घटने लगती है। इसके अलावा MEC स्थिर

होने के कारण आय वृद्धि की तुलना में उपभोग वृद्धि कम गति से बढ़ती है फलतः अधि उत्पादन की सम्भावना बढ़ जायेगी। इन कारणों से निवेशक निवेश में कमी लाते है, निवेश में कमी गुणक के विपरीत क्रियाशीलन के कारण आय, रोजगार व समग्र मांग में अधिक कमी लायेगी। इस प्रकार एक संचयी प्रवृत्ति जन्म लेगी जो अर्थव्यवस्था को मंदी अथवा अवसाद की ओर ले जायेगी।

आलोचना

- कींस व्यापार चक्र का मूल कारण पूंजी की सीमांत दक्षता में उच्चावचन माना है जबकि व्यापार चक्र के अन्य अनेक कारण है।
- कींस अल्पकाल में ब्याज दर आदि को स्थिर मानकर व्यापार चक्र की व्याख्या करते है जो अव्यवहारिक है।
- कींस इस बात की व्याख्या करने में असफल रहे कि व्यापार चक्र समय के साथ अधिक तेज क्यों होता जाता है, इसकी व्याख्या सेमुएल्सन ने गुणक–त्वरक अंतरक्रिया द्वारा किया।

कांल्डार का व्यापार चक्र सिद्धान्त

हिक्स तथा सैमुएल्सन के गुणक–त्वरक कार्यकरण के बजाए काल्डार बचत व निवेश में असंतुलन को व्यापार चक्र का कारण माना है। कींस के विपरीत कॉल्डोर अरेखीय बचत तथा निवेश फलन का प्रयोग करके व्यापार चक्र की व्याख्या करते है।

कॉल्डोर का बचत तथा निवेश फलन

निवेश फलन

कॉल्डोर का निवेश राष्ट्रीय आय Y तथा पूंजी स्टॉक K पर निर्भर करता है अर्थात्

$I = f(Y, K)$

या $\frac{di}{dy} > 0, \frac{di}{dk} > 0$

जहाँ $\frac{di}{dy}$ निवेश की सीमांत प्रवृत्तिMPI है।

कॉल्डोर का निवेश फलन अरेखीय है चित्र A द्वारा दिखाया गया है। इस आरेखीय निवेश फलन का मध्यवर्ती वास्तविक आय स्तर पर ढाल $\frac{di}{dy}$या निवेश की सीमांत प्रवृत्ति लगभग सामान्य है जबकि आय के निम्न तथा उँचे स्तर पर निवेश की सीमांत प्रवृत्ति ढाल कम है। वास्तविक आय के निम्न स्तर पर लाभ अर्जन की सम्भावना कम होती है जबकि आय के ऊँचे स्तर पर, निवेश की बढ़ती लागते, निवेश प्रवृत्ति को कम कर देती है फलतः निवेश वक्र का ढाल सपाट (कम ढाल वाला) होता है।

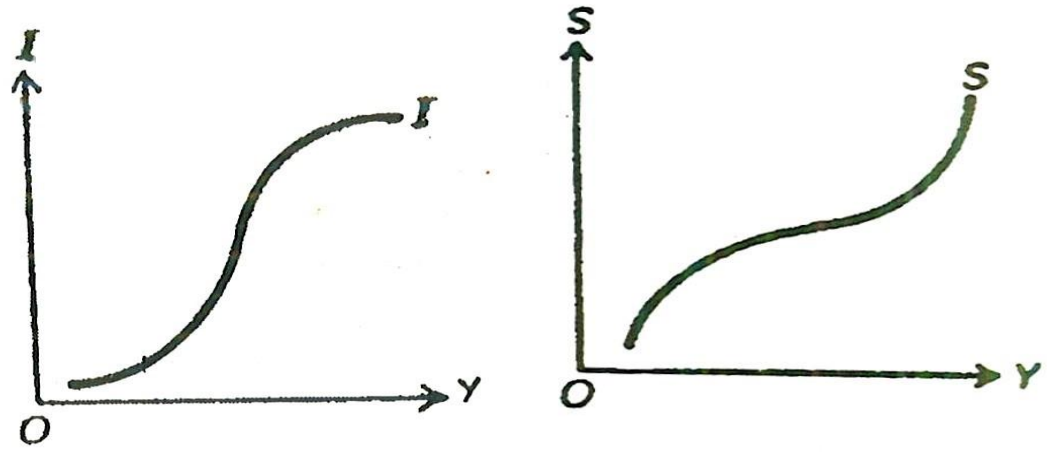

बचत फलन

कॉल्डोर के अरेखीय बचत फलन में, बचत (S) आय पर निर्भर करता है अर्थात्

S = f (Y)या $\frac{ds}{dy} > o$

जहाँ $\frac{ds}{dy}$सीमांत बचत प्रवृत्ति है। चित्र 1(B) से स्पष्ट है कि मध्य वर्ती आय स्तर पर सीमांत बचत प्रवृत्ति का मूल्य सामान्य है। उच्च आय स्तर पर पूंजीपतियों का लाभ में कम कमी होगी फलतः सीमांत बचत प्रवृत्ति बढ़ जाएगी इसके अलावा ऊँची आय परMPC भी कम होता है जिससे समग्र मांग में कमी आती है। इसके विपरीत निम्न आय स्तर पर लोगों की बचते कम होती है क्योंकि उनकी सीमांत उपभोग प्रवृत्ति ऊँची होती है।

व्यापार चक्र की व्याख्या

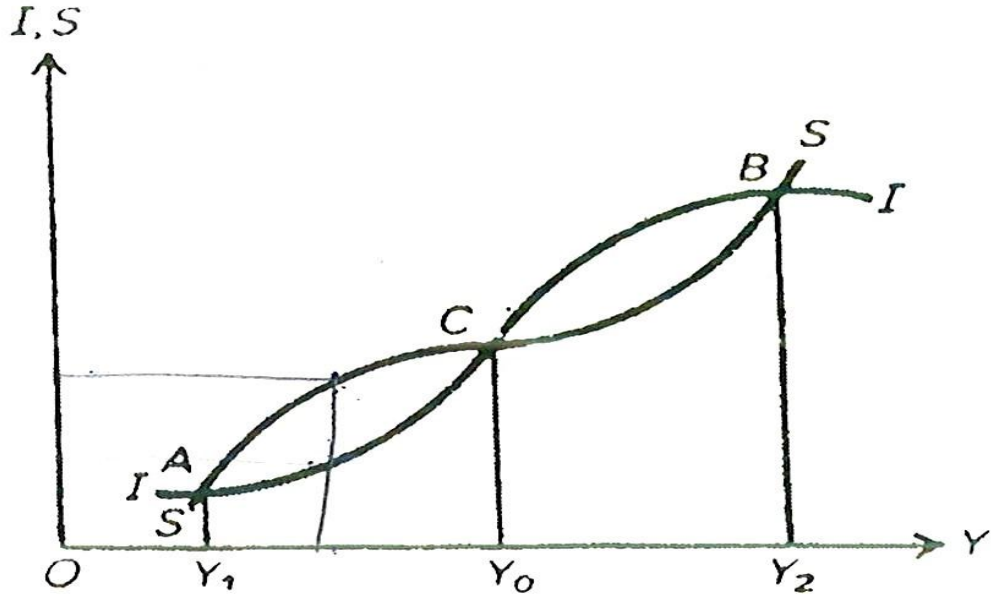

चित्र–2 में बचत व निवेश फलन द्वारा अर्थव्यवस्था का स्थिर तथा अस्थिर संतुलन दर्शाया गया है। बिन्दु A तथाC बिन्दु स्थिर संतुलन का बिन्दु है जबकि बिन्दु B अस्थिर संतुलन काA तथा की C स्थितियाँ दीर्घकाल में 'स्विच बिन्दु' है अर्थात् इन बिन्दुओं के मध्य अर्थव्यवस्था प्रसार अथवा संकुचन करती है। बिन्दु अस्थिर संतुलन बिन्दु है यदि इसमें असंतुलन होता है जैसाकि B से C के मध्य नियोजित बचत S नियोजित निवेश I से कम है तो अर्थव्यवस्था में तब तक प्रसार होता है जब तक कि बिन्दु C नहीं आ जाता है। इसी प्रकार बिन्दु के निचले भाग में नियोजित बचत S नियोजित निवेश से ज्यादा है जिससे अर्थव्यवस्था में संकुचन का दौर तब तक चलेगा जब तक कि बिन्दु A नहीं आ जाता है। इस प्रकार बिन्दु B तथा C मध्य अर्थव्यवस्था में संकुचन तथा प्रसार होगा।

सैमुएल्सन का व्यापार चक्र मॉडल

कींस, हाट्रे व हेयक के व्यापार चक्र सिद्धान्त व्यापार चक्रों की पूर्ण व्याख्या करने में असफल रहे। सेमुएल्सन मानते है कि गुणक अकेला व्यापार चक्र व्याख्या नही कर सकता है फलतः उन्होंने गुणक, त्वरक अंतरक्रिया पर आधारित व्यापार चक्र का सिद्धान्त दिया। गुणक जहाँ एक ओर निवेश वृद्धि के कारण आय में होने वाली वृद्धि को बताता है वही त्वरक आय वृद्धि के परिणाम स्वरूप निवेश में होने वाली वृद्धि की व्याख्या करता है।

सैमुएल्सन मानते है निवेश में परिवर्तन अथवा अस्थिरता, व्यापार चक्र का कारण है जो गुणक तथा त्वरक की अंतरक्रिया के कारण और बढ़ती जाती है। विस्तार की अवस्था उस समय होती है जब किसी कारण स्वायत्त निवेश बढ़ता है। स्वायत्त निवेश के गुणक क्रियाशीलन के कारण आय में अधिक वृद्धि लाता है। आय में होने वाली वृद्धि, समग्र मांग को बढ़ा देता है जिससे निवेश प्रेरित होता है, त्वरक मूल्य पूंजी–उत्पाद अनुपात के कारण निवेश में वृद्धि आय वृद्धि की तुलना में ऊँची होती है। निवेश में यह वृद्धि पुनः आय, रोजगार, समग्र मांग आदि में अधिक वृद्धि लाती है। इस प्रकार गुणक–वरक अंतरक्रिया आर्थिक गतिविधियों में संचयी प्रवृत्ति को जन्म देती है जो व्यापार चक्रों की गम्भीरता को उत्तरोत्तर बढाती जाती है। गुणक त्वरक अंतरक्रिया मॉडल को निम्नवत् समझा जा सकता है–

$Yt = Ct+It$ – (i)

$Ct = Co + C.Y\ (t-i)$ - (ii)

$It = Io+\propto (Y_{t-1} – Y_{t-2})$ – (iii)

जहाँ Ct, Yt तथाYt, t अवधि में क्रमश उपयोग, आय तथा निवेश को व्यक्त करता है जबकिCo तथाIo क्रमशः स्वायत्त उपभोग तथा स्वायत्त निवेश है। वहीC तथा∝ क्रमशः उपभोग की सीमांत प्रवृत्तिMPC तथा पूंजी उत्पाद अनुपात है।

समी0 ii तथा iii को समी0 i में प्रतिस्थापित करने पर–

$Yt = Co+c.Y_{(t-1)} + (Y_{t-1}-Y_{t-2})$ – (iv)

समी0 iv से स्पष्ट है कि उपभोग गत वर्ष की आय का फलन होता है जबकि प्रेरित निवेश (t-i) अवधि की आय वृद्धि का फलन माना गया है प्रेरित निवेश के$\propto, \Delta Y_{t-1}$ बराबर होता है जहाँ $\Delta Y_{t-1}, Y_{t-1,}$- Y_{t-2}के बराबर है। इस प्रकार यदि हमें दो अवधियों की आय ज्ञात हो तो अगली अवधि की आय ज्ञात किया जा सकता है तथा व्यापार चक्र की व्याख्या की जा सकती है। सैमुएल्सन ने यह मानते हुए कि का मूल्य शून्य से अधिक तथा एक से कम तथा त्वरक का मूल्य शून्य से अधिक है, पाँच प्रकार के उच्चावचन की व्याख्या की।

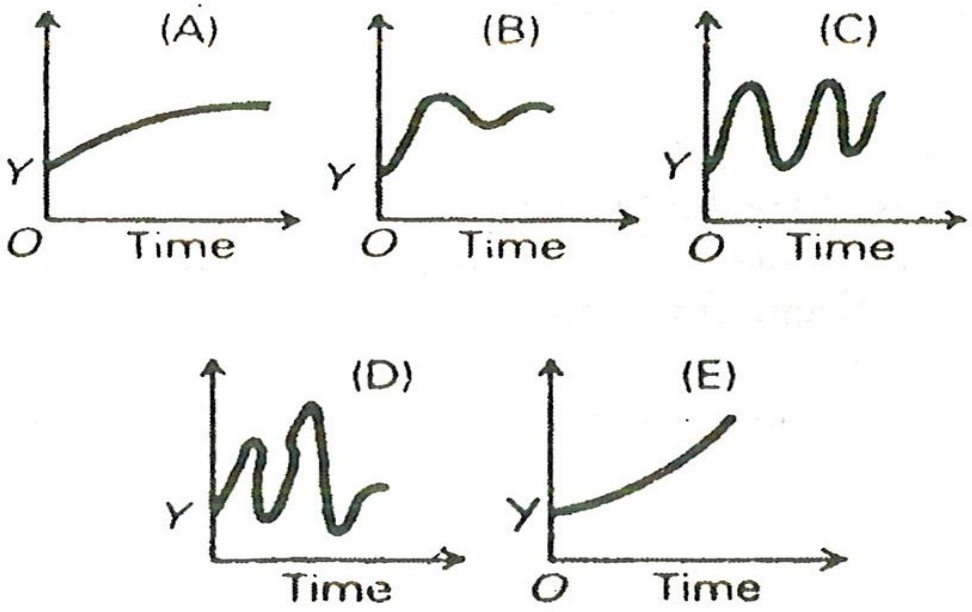

स्थिति

यदि MPC = O.5 तथा त्वरक = O हो तो केवल गुणक प्रभाव के क्रियाशीलन के कारण आय तेजी से किन्तु उच्चावच रहित होकर बढ़ेगी। चित्र1(A)

स्थिति–2

यदि C = 0.5 तथा∝=1 तो, परिमंदित उतार–चढ़ाव होगा अर्थात् व्यापार चक्र में उत्तरोत्तर कमी होती जायेगी। चित्र 1(B)

स्थिति–3

यदि C=0.5 तथा ∝=2 तो स्थिर विस्तार के साथ उच्चावचन अर्थात् नियमित चक्र को जन्म देंगे। चित्र 1 (C)

स्थिति–4

यदि C=0.5 तथा ∝=3तो विस्फोटक व्यापार चक्रो को जन्म देंगे अर्थात् समय के साथ व्यापार चक्रों की गहनता बढ़ती जायेगी। चित्र 1 (D)

स्थिति–5

यदि C=0.5तथा ∝=4 हो तो चक्रहीन विस्फोटक पथ का जन्म होगा अर्थात् आय में चक्रवृद्धि संवृद्धि होगी। चित्र 1 (E)

व्यापार चक्र की उक्त पाँच स्थितियों में से केवल स्थिति 2,3 व 4 में ही आय की प्रकृति चक्रिय है उसमें में भी स्थिति 3, स्थिर स्थिर चक्रक की स्थिति है।

मूल्यांकन

सैमुएल्सन की गुणक–त्वरक अतरक्रिया अधारित व्यापार चक्र सिद्धान्त व्यापार चक्रों के उतार–चढ़ाव की अधिक स्पष्ट व्याख्या करता है। कींस के विपरीत यह इस बात की व्याख्या करने में सफल रहा कि किस प्रकार व्यापार चक्रों की गम्भीरता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

आलोचना

- ❖ सैमुएल्सन मान लेते है कि उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति तथा त्वरक स्थिर है।
- ❖ यह व्यापार चक्रों की अवधि के संदर्भ में मौन है।
- ❖ यह व्यापार चक्रों के केवल आंतरिक कारकों पर बल देता है, वाहय

शब्दावली

गुणक

गुणक की अवधारणा कींस ने दी। यह निवेश वृद्धि के सापेक्ष आय में होने वाली वृद्धि को मापता है। अर्थात्

गुणक $K\frac{\Delta y}{\Delta I}$

स्वायत्त विनियोग

विनियोग की वह मात्रा जो आय परिवर्तन पर निर्भर नहीं करती है, स्वायत्त विनियोग कहलाता है। अर्थात् स्वायत्त विनियोग तथा आय परिवर्तन के मध्य शून्य सह सम्बन्ध पाया जाता है।

स्वायत्त उपभोग

उपभोग की वह मात्रा जो आय परिवर्तन पर नहीं निर्भर करती है, स्वायत्त उपभोग कहलाता है।

इकाई 03

हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त, वास्तविक व्यापार चक्र (RBC)

इकाई की रुपरेखा–

3.1 भूमिका

3.2 हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त

3.3 Real Business Cycle RBC

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त

हिक्स ने सेम्युलसन के गुणक, त्वरक, अन्तर किया का प्रयोग कर व्यापार चक्र की व्याख्या की। हिक्स के अनुसार ''जिस प्रकार मांग और पूर्ति मूल्य सिद्धान्त के पहलू है उसी प्रकार गुणक तथा त्वरक आर्थिक उच्चवचन सिद्धान्त के दो पहलू है।''

मान्यताएँ

- ❖ बचत तथा विनियोग के गुणांको के मूल्य इस प्रकार कार्य करते है। संतुलन बिन्दु से विचलन संतुलन से और दूर ले जाता है।
- ❖ साधनों की उपलब्धता उर्ध्वमुखी विस्तार पर अकुंश का कार्य करती है।
- ❖ गुणक तथा त्वरक के क्रियाशीलन के संदर्भ में समय–पश्चात पायी जाती है।

विस्तार की अवस्था

हिक्स मानते है कि विस्तार की प्रक्रिया उस समय शुरु होती है जब अर्थव्यवस्था में प्रावैगिक शक्तियों जैसे जनसंख्या वृद्धि, तकनीकि प्रगति, नये बाजार व कच्चे माल के स्रोतों का मिलना इत्यादि कारणों से स्वायत्त विनियोग होता है। स्वायत्त विनियोग में वृद्धि गुणक क्रियाशीलन के कारण राष्ट्रीय आय तथा रोजगार में अधिक वृद्धि लाती है। आय तथा रोजगार में होने वाली वृद्धि समग्र मांग (वस्तुओं और सेवाओं) में वृद्धि लाती है

जिससे पूंजीगत विनियोग में वृद्धि होगी ज्ञातव्य हो कि त्वरक क्रियाशीलन के कारण, विनियोग राष्ट्रीय आय में वृद्धि की तुलना में अधिक होगी। इस प्रकार विस्तार पथ पर गुणक तथा त्वरक एक ही दिशा में कार्य करते है फलतः आय, रोजगार आदि में तीव्र वृद्धि होती है। हिक्स मानते है कि गुणक–त्वरक अन्तरक्रिया के कारण अर्थव्यवस्था में उस बिन्दु तक प्रसार होगा जब तक कि पूर्णरोजगार प्राप्त न हो जाए, पूर्ण रोजगार प्रसार के विरूद्ध एक सीमा है जिसके पश्चात् आय व रोजगार में वृद्धि सम्भव नहीं है।

संकुचन की अवस्था

हिक्स मानते है कि विस्तार पथ के ऊपरी सीमा पूर्ण रोजगार बिन्दु पर पहुच जाने के पश्चात् अधि उत्पादन अथवा उत्पादन अतिरेक दृष्टिगोचर होने लगता है, इसके अलावा साधनों लागते भी बढ़ती जाती है फलतः विनियोग में गिरावट आती है। विनियोग में कभी गुणक प्रभाव के कारण आय तथा रोजगार में अधिक कमी लाती है। ज्ञातव्य हो कि हिक्स मानते है कि संकुचन की दशा में केवल गुणक कार्य करता है। त्वरक नहीं यही कारण है कि संकुचन की प्रक्रिया अभिवृद्धि की तुलना में धीमी गति से होता है। हिक्स मानते है कि संकुचन की भी एक सीमा होती है। अर्थात् आय तथा रोजगार में गिरावट उस सीमा से ज्यादा नहीं होगी। इसके दो कारण है प्रथम उपभोग में कमी की एक न्यूनतम सीमा है द्वितीय विनियोग में कमी शून्य से ज्यादा नही हो सकती है। इस प्रकार जब आर्थिक गतिविधियाँ अधिकतम संकुचन सीमा पर आ जाती है तो उन्हें पुनः विस्तार की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

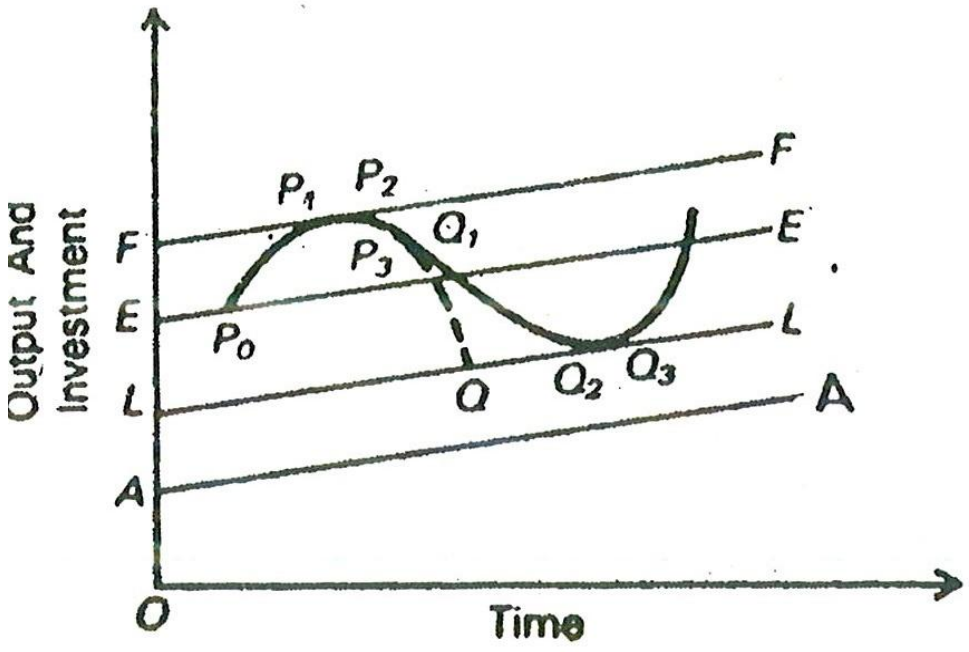

चित्र–1 मेंA स्वायत्त विनियोग जबकि C C संतुलन पथ को प्रदर्शित करता है। F F पूर्णरोजगार अर्थात् विस्तार की उच्चतम सीमा जबकि L L संकुचन की निचली सीमा को प्रदर्शित करता है। माना किसी समय अर्थव्यवस्था PO संतुलन में है किन्तु प्रावैगिक शक्तियों जैसे जनसंख्या, तकनीकि परिवर्तन के कारण स्वायत्त विनियोग के कारण असंतुलन होता है। असंतुलन की दशा में गुणक–त्वरक का क्रियाशीलन अर्थव्यवस्था को पूर्णरोजगार P_1 P_2पथ पर पहुचा देगा जिसके पश्चात् विनियोग में कमी आयेगी। विनियोग में कमी तथा गुणक के विपरीत दिशा में क्रियाशीलन के कारण आय व रोजगार में संकुचन लागेगा जिससे अर्थव्यवस्था Q_1 Q_2पथ पर चली जायेगी जो गिरावट की निचली सीमा है।

आलोचना

- ❖ हिक्स का व्यापार चक्र, स्थिर गुणक मूल्य की मान्यता पर आधारित है।
- ❖ हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त गुणक–त्वरक मान्यता पर आधारित है जो स्वयं कई अव्यवहारिक मान्यताओं पर आधारित है।
- ❖ हिक्स के व्यापार चक्र में ऊपरी मोड़ व निचला मोड़ की व्याख्या भ्रामक व यांत्रिक है।

खण्ड–4

इकाई–04

मौद्रिक नीति : अवधारणा, उद्देश्य

एवं

मौद्रिक नीति के अस्त्र

इकाई की रुपरेखा–

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 मौद्रिक नीति का अर्थ

4.4 अर्थव्यवस्था के विकास में मौद्रिक नीति की भूमिका

4.5 स्फीति दबाव का नियंत्रण

4.6 परिवर्तनशील रिजर्व अनुपात

4.7 ब्याज दर नीति

4.8 वित्तीय सेवाओं का प्रसार

4.9 अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक नीति के उद्देश्य

4.10 स्फीति एवं अपस्फीति नियंत्रण

4.11 अविकसित देशों में मौद्रिक नीति का दायरा

4.12 निष्कर्ष

4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्रस्तावना

आम तौर पर, एक अविकसित अर्थव्यवस्था को कम प्रगति के साथ आर्थिक विकास के शुरुआती चरण में माना जा सकता है। अर्थव्यवस्था के भीतर प्रचुर प्राकृतिक और मानव संसाधनों की मौजूदगी के बावजूद, आर्थिक विकास की दर काफी धीमी है। दरअसल, 'अविकसित' वाक्यांश का प्रयोग केवल किसी अर्थव्यवस्था के संबंध

में ही किया जाता है। विभिन्न देशों में विकास के स्तर में असमानता मौजूद है, कुछ देश दूसरों की तुलना में अधिक विकसित हैं जबकि कुछ समकक्षों की तुलना में कम विकसित हैं। विकास के मूल्यांकन के लिए उपयोग किये जाने वाले मापदण्ड क्या हैं? प्रोफेसर हर्बर्ट फ्रेंकल के अनुसार, किसी राष्ट्र का विकसित या अविकसित के रूप में वर्गीकरण उसके विकास के स्तर का आकलन करने के लिए उपयोग किए जाने वाले विशिष्ट मानदंडों पर निर्भर करता है।

अविकसित देशों में मौद्रिक नीति उन बाधाओं के अधीन है जो इसकी प्रभावशीलता को सीमित करती हैं। इस स्थिति का कारण इन देशों में सरकारी संपत्तियों के लिए पर्याप्त रूप से मजबूत बाजार का अभाव है, जो खुले बाजार की गतिविधियों की संभावना को सीमित करता है। इसके अलावा, फंडिंग आवश्यकताओं या छूट दर में बदलाव का प्रभाव सीमित है। लंबी अवधि में स्थिरता के साथ आर्थिक विकास एक अविकसित अर्थव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य है जिसे तब तक हासिल नहीं किया जा सकता जब तक कि सभी बुराइयों को दूर नहीं किया जाता। इसे प्राप्त करने के लिए, अविकसित देशों की मौद्रिक नीति का उद्देश्य न केवल आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन प्रदान करना चाहिए, बल्कि आर्थिक विकास के रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करना और उत्पादन, रोजगार और आय की दर को बढ़ावा देना भी होना चाहिए।

आय,संसाधन,रोजगार के अवसर एवं जीवन निर्वाह के स्तर के आधार पर विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को विकसित,विकासशील एवं अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के रुप मे परिभषित किया जाता है।एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसमें संसाधन की कमी या संसाधन की कमी या संसाधनों के दोहन के वैज्ञानिक तरिके अनुपास्थित है,रोजगार के अवसर कम है, मानवपूंजी का विकास नहीं हुआ या न के बराबर हुआ है, जीवन जीने का स्तर कम है, जनसंख्या ज्यादा है तथा कैपिटल ऑउटपुर अनुपात

एवं आय विषमता अधिक है। ऐसे में देश के समग्र विकास एवं नागरिक जीवन स्तर ऊँचा करने के लिए एक ठोस रणनीति आवश्यक होता है। इस प्रकार की रणनीति एवं देश के विकास की योजना बनाने में देश की उतरदायी सरकार एवं केन्द्रीय बैंक की मुज्य भूमिका हो जाती है।

सरकार जिन नीतियों का पालन करती है उसे राजकोषीय नीति कहते है। इसके अन्तगर्त वह कल्याणकारी बजट बनाकर एवं प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कराधान तंत्र के व्यवास्थित कर रोजगार एवं स्थिरता को बढ़ती है। बजट बनाने की प्रक्रिया में सरकार इस बात का पूर्ण ध्यान रखती है, कि समाज के कमजोर वर्गो का हित होने के साथ–साथ बचत एवं निवेश के बढ़ाया जाय तथा उद्योगो के संरक्षण एवं प्रोत्साहन के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक आधारभूत संरचना का विकास हो। अल्पविकसित अर्थ व्यवस्थायें– कृषि आधारित होती है।जिनके सकल घेरलू उत्पाद में कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र का योगदान, विनिर्माण क्षेत्र एवं सेवा क्षेत्र की तुलना मे ज्यादा होता हैं। ऐसे में सरकार का मुख्य फोकस कृषि श्रेत्र का विकास होता है तथा इससे सम्बन्धित उद्योगों एवं परियोजनाओं को प्रोत्साहित किया जाता है।

अल्पविकसित देशों की मुख्य समस्याओं में अधिक जनसंख्या एक कारण होती है क्योंकि अनुउत्पादक जनसंख्या सरकार के दायित्वों को बढ़ा देती है।जिसमें बजट का अधिक हिस्सा कल्याणकारी योजनाओं जैसे–स्वास्थ योजना, शिक्षा योजना, वस्तुओं और सेवाओं पर सबिनडी आदि के रुप में खर्च हो जाता है। ये उत्पादक परिसंपतियों नये रोजगार का सृजन कर आय वृद्धि करती है जिसमें बचत में वृद्धि होती है और पुनः निवेश को बढ़ावा मिलता है। परन्तु अल्प विकसित अर्थव्यवस्था में ऐसा देखने को कम प्राप्त होता है। हॉलाकि सरकार की राजकोषीय नीति अल्प विकास के दुश्चक्र को

काटने की बड़ी भूमिका में होती है परन्तु वह अकेले न काफी है जिसमें मौद्रिक नीति के आधार विस्तृत हो जाता है।

मौद्रिक नीति का निर्धारण करना देश की केन्द्रीय बैंक का कार्य होता है। वह अपने विभिन्न उपकारणों के द्वारा व्यापारिक एवं अन्य बैंक के माध्यम में या स्वयं देश की मौद्रिक तरलता के समायोजित करती है। मौद्रिक क्षेत्र में मिले इसके अधिकार आय एवं रोजगार के स्तर एवं देश की संवृद्धि तस विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

मौद्रिक नीति

मौद्रिक नीति, जिसे एक महत्वपूर्ण व्यापक आर्थिक साधन माना जाता है, का उपयोग भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) जैसे केंद्रीय बैंकों और अन्य नियामक निकायों द्वारा अर्थव्यवस्था के भीतर धन परिसंचरण की मात्रा और वेग का प्रबंधन करने के लिए बड़े पैमाने पर किया जाता है, जिससे ब्याज पर प्रभाव पड़ता है। दरें। किसी राष्ट्र का व्यापक आर्थिक माहौल उसकी मौद्रिक नीतियों से प्रभावित होता है। वित्तीय प्रणाली को संस्थागत ढांचे के रूप में वर्णित किया जा सकता है जिसके द्वारा किसी देश का मौद्रिक प्राधिकरण, अक्सर एक केंद्रीय बैंक, देश के अंदर धन के प्रवाह और बहिर्वाह पर नियंत्रण रखता है। यह नियंत्रण स्थिर आर्थिक विकास के रखरखाव और बढ़ी हुई धन सृजन की सुविधा सुनिश्चित करने के लिए नीति दरों का उपयोग करके हासिल किया जाता है। मौद्रिक नीति को अब आर्थिक शासन के लिए एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में मान्यता दी गई है। मौद्रिक नीति दो प्राथमिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किसी राष्ट्र के केंद्रीय बैंक द्वारा उपयोग की जाने वाली एक तंत्र के रूप में कार्य करती हैरू आर्थिक विकास को बढ़ावा देना, विशेष रूप से सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के संदर्भ में, और मुद्रास्फीति की दर को प्रभावी ढंग से प्रबंधित और

विनियमित करना। यदि किसी केंद्रीय बैंक के पास मुद्रास्फीति दर को विनियमित करने या उस पर नियंत्रण रखने की क्षमता है, तो इसका तात्पर्य यह है कि उसके पास आर्थिक विकास की गति को प्रभावित करने की भी क्षमता होगी। दोनों अवधारणाएँ परस्पर संबंधित हैं। मुद्रास्फीति दर को अर्थव्यवस्था के अंदर धन आपूर्ति में हेरफेर करके, इसे बढ़ाकर या घटाकर नियंत्रित किया जाता है।

देश की अर्थव्यवस्था के विकास में मौद्रिक नीति की भूमिका –

समकालीन समय में, नए उभरते राष्ट्र आर्थिक विस्तार को बढ़ावा देने के साधन के रूप में मौद्रिक नीति के प्रभावी उपयोग पर आशंका व्यक्त कर सकते हैं। एक कम विकसित राष्ट्र में, मौद्रिक नीति का कार्यान्वयन आर्थिक विकास को बढ़ावा देने, प्रारंभिक अविकसितता की स्थिति से स्थायी और स्वायत्त विकास के चरण में संक्रमण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

फिर भी, यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि औद्योगिक देशों की मौद्रिक नीतियों और पहलों का कार्यान्वयन हमेशा उभरते देशों के सामने आने वाली अनूठी चुनौतियों के सीधे जवाब के रूप में काम नहीं कर सकता है। मौद्रिक नीति का कार्यान्वयन उन्नत और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के बीच उल्लेखनीय भिन्नता प्रदर्शित करता है। इसलिए, विभिन्न प्रकार के राष्ट्रों में समान कार्य करना संभव नहीं है।

एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति साज की लागत तथा प्राप्त के प्रभावित करके स्फीति पर नियंत्रण तथा भुगतान शेष संतुलन के कायम रखकर आर्थिक वृद्धि की दर को बढ़ाने में महत्वपूर्ण कार्य करती है। अतः ऐसे देश में मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्य स्फीति को नियंत्रित करने तथा कीमतों के स्थिर रखने के लिए साज नियंत्रण करना, विनिमय दर के स्थिर करना, भुगतान शेषों में संतुलन प्राप्त

करना तथा आर्थिक विकास बढ़ाना है। आर्थिक विकास के अंतगर्त मात्रात्मक, धनात्मक परिवर्तन के साथ गुणात्मक परिवर्तन जैसे शिक्षा एवं स्वास्थ तथा सामाजिक पूॅजी के भी शामिल किया जाता है।

कीमत स्थिरता प्राप्त करना–(to achieve bice stoblity)

देश में वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमत स्थिरता प्राप्त करने के लिए केन्द्रीय बैंक का मौद्रिक उपकरण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह मुद्रा की मांग एवं पूर्ति में समुचित समायोजन लेकर आती है। इन दोनो के बीच असंतुलन कीमत स्तर में प्रतिलम्बित होता है। मुद्रा में कमी आर्थिक वृद्धि की बाधा बनती है जबकि इसकी अधिकता मूल्यों को बढ़ाकर आम जीवन को अस्त–व्यस्त कर देती है। जब अर्थव्यवस्था विकास की ओर अग्रसर हो तो कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि तथा गैर मौद्रिक श्रेत्र के मौद्रिक क्षेत्र में धीरे–धीरे परिवर्तन होने से मुद्रा के मांग में वृद्धि होती है। यहाँ गैर मौद्रिक क्षेत्र का मौद्रिक क्षेत्र में परिवर्तन से आशय नये संसाधनों के उपयोग एवं वितरण से है। इन परिवर्तनों से लेन–देन तथा सदा उददेश्य के लिए मुद्रा की मांग बढ़ेगी । इसलिए मौद्रिक अधिकारी को स्फीति रोकने के लिए तथा कीमतों में स्थिरता लाने के लिए मुद्रा की पूर्ति को मुद्रा की मांग के अनुपात से अधिक बढ़ाना पड़ेगा।

स्फीति दबाओं को नियंत्रित करना –(To control Imfartion)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उत्पन्न हाने वाले स्फीतिकारी कारको के प्रभाव को शून्य या कम करने के लिए मौद्रिक नीति को साज नियंत्रण के मात्रात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार के उपायें की आवश्यकता होती हैं, इसमें मात्रात्मक उपाय नियंत्रक तथा गुणात्मक उपाय निर्देश या सुझाव की प्रकृति के होते हैं मौद्रिक नीति के उपकारणों के रुप में मात्रात्मक उपाय व्यापरिक बैंकों की साज सृजन की क्षमता को

नियंत्रित करता है। स्फीति के दिनों में केन्द्रीय बैंक अपनी दरों को बढ़ाकर व्यापारिक बैंको के ऋण देय कोष को कम देती है। या उनके ऋण लेना महंगा पड़ने लगता है जिसमें अर्थव्यवस्था में मुद्रा की तरलता कम होती है और महंगाई पर काबू पा लिया जाता है।

मौद्रिक नीति के उपायों में खुले बाजार का प्रचालन अल्पविकसित या अविकसित देशों में स्फीती को नियंत्रित करने में सफल नहीं होते है क्योंकि प्रतिभूति बाजार छोटा एवं अविकसित होता है। इसके अतिरिक्त लोग सापेक्षतया कम व्याज दरों के कारण सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करने के अनिच्छुक होते है।साथ ही वे सरकारी प्रतिभूति में निवेश के बजार अपने रिजर्व को नकदी, स्वर्ण आदि में रखना पंसद करते है। व्यापारिक बैंक भी केन्द्रीय बैंक से उधार लेने या पुनर्वदृा करते रहना नहीं चाहते।

मौद्रिक नीति के उपकरण के रुप में परिवर्तनशील रिजर्व अनुपात–

(variable Reserve Ratio) या मात्रात्मक उपकरण का उपयोग अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में बैंक दर नीति और खुले बाजार प्रचातनों की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होता है। चूकि प्रतिभूतियों का बाजार बहुत छोटा एवं कुछ लोगों की पहुंच तक सीमित है। यह बाजार आर्थिक जागरुकता के आभाव के कारण भी पिछड़ा रह जाता है। परन्तु केन्द्रीय बैंक द्वारा परिवर्तनशील रिजर्व अनुपात में वृद्धि या कमी प्रतिभुतियों की कीमतों पर बिना विपरित प्रभाव डाले व्यापरिक बैंकों के पास उपलब्ध नकदी को बढ़ा या घटा देते है। जिसमें इन बैंको की कृपा की ऋण देय क्षमता बढ़ एवं घट जाती हैं। साथ ही यह ध्यान देने योग्य होगा कि व्यापरिक बैंक अपने पास विशाल नकद रिजर्व रखते है जो केन्द्रीय बैंक के द्वारा घटाये नहीं जा सकते परन्तु ऋण रिजर्व अनुपात को बढ़ाने से बैकों की तरलता घटती है। लेकिन अल्पविकसित

देशों में परिवर्तनशील रिजर्व अनुपात के उपयोग की कुछ सीमाएँ है–पहला चूंकि गैर बैंकिग वितीय मध्यस्था (Nan Bank) केन्द्रीय बैंक के पास जमाओं को नहीं रखते है, इसलिये वे इससे प्रभावित नहीं होते। दूसरे वे बैंक जो अतिरिक्त तरलता नहीं रखते है उनकी अपेक्षा जो इसे रखते हैं, अधिक प्रभावित होते है।किन्तु प्रभाविता एवं उपयोगिता के दृष्टिकोण से साज के आवंटन के प्रभावित करने में मात्रात्मक उपायों की अपेक्षा गुणात्मक साज नियंत्रण उपाय अधिक प्रभावकारी होते है। अल्पविकसित देशों में लोगों की यह प्रवृत्ति दिखाई देती ह। कि वे कृषि,खदान,प्लाटेशलन और उद्योग में उपलब्ध वैकल्पिक उत्पादकीय स्रोतो की अपेक्षा स्वर्ण,आभूषण,रियल स्टेट आदि में निवेश के अधिक इच्छुक होते है। इस प्रकार के अनुत्पादकीय उद्देश्यों के लिए साज सुविधाओं को नियंत्रित तथा सीमित करने में चयनात्मक साज नियंत्रण(qvalitative credit contral) अधिक उपयोगी है।

चयनात्मक साज नियंत्रण की उपयेगिता इस बात से भी सिद्ध होती है। कि वे खाद्यनो तथा कच्चे माल के विषय में सटा क्रियाओं के नियंत्रित करने में लाभदायक होते है। वे अर्थव्वस्था मे सेक्टोअल स्फीतियों को रोकने में अधिक उपयोगी साबित होते हैं साथ ही आयातकर्ताओं के लिए विदेशी मुद्रा के बराबर अग्रिम राशि में जमा करना अनिवार्य बनाकर अख्यात के लिए मांग में कटौती करते है। जिसमें इसका परिणाम यह होता है कि बैंको के रिजर्व घर जाते है और संतुलन की अवस्था बनी रहती है। इस प्रकार गुणात्मक साज नियंत्रण उपाय निश्चित प्रकार के जमानत, उपभोक्ता साज नियम और साज की राशनिंग के बाजार सीमा आवश्यकताओं के परिवर्तन के रुप मे हो सकते है।

रोजगार एवं आय वृद्धि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की मौद्रिक नीति का अंतिम उद्देश्य देश में रोजगार का सृजन करना जिसमें लोगों की आय में वृद्धि हो। आय वृद्धि के सहउत्पाद के रुप में शिक्षा एवं स्वास्थ्य में निवेश बढ़ता है जिसमेंदेश की मानवपूंजी में गुणात्मक परिवर्तन होता है। इन परिवर्तनों के चलते देश अल्पविकसित से विकासशील और अन्ततः विकसित देश में तब्दील हो जाता है। रोजगार एवं आी में वृद्धि अर्थव्यवस्था में निवेश को बढ़ा का प्राप्त की जा सकती है। निवेश में वृद्धि से उत्पादन एवं उपभोग में वृद्धि कें समय नियति के प्रोत्साहन मिलता है। जिससे भुगतान शेष असंतुलन की स्थिति में

सुधार होता हैं

भुगतान शेष धारा कम करना – (To Bridge Bop Beficit)

ब्याज दर नीति के रुप में मौद्रिक नीति भुगतान शेष के घाटे के पाटने के लिए एक महत्वपूर्ण हथियार हो सकती है। विकास के नियोजित लक्ष्यों के पूरा करने में अल्पविकसित देशों के गंभीर भुगताल संतुलन की स्थिति से गुजरना पड़ता है। इन देशों के तकनीकी ज्ञान एवं कौशल के अभाव कारण विद्युत सिंचाई, परिवहन आदि जैसी बुलियादी ढांचा सुविधाओं के स्थापित करने तथा लोहा,इस्पात,उर्वरक,रसायन आदि प्रत्यक्ष उत्पादकीय क्रियाओं के लिए पूंजी,मंशीन उपकरण, पुर्जो आदि आयात करने पड़ते है जिससे उनके आयातों में तो वृद्धि होती है। परन्तु नियति गतिहीन होते है और साथ ही स्फीति के कारण नियति के मध्य गहरी खाई हो जाती है। और भुगतान शेष असंतुलित हो जाता है। मौद्रिक नीति की ऊँची ब्याज दर द्वारा भुगतान शेष के घाटे को कम करने में मदद मिल सकती है।ऊँची ब्याज दर निवेशों के अन्तवृद्धि के प्रोत्साहित कर भुगतान शेष के समायोजित कर सकती हैं।

ब्याज दर नीति (Interest Rate Policy)

एक अल्पकिसित अर्थव्यवस्था में उच्च ब्याज दर नीति अधिक बचत दर के प्रोत्साहित करती है। साथ ही लोगो में बैंकिग आदतों को विस्तार होता है तथा अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण के गति मिलती है, जो पूंजी निर्माण एवं आर्थिक विकास का आवश्यक तत्व है। ऊंची ब्याज दर की नीति स्फीति के दूर करने वाली होती है। क्योंकि यह सट्टे तथा करेंसियों के लिए उधार लेने एवं निवेश करने के हतोत्साहित करती है। फिर भी यह नीति दुर्लभ पूंजी संसाधनों के आवंटन के अधिक उत्पादकीय स्रोता में बढ़ावा देती है।

हॉलाकि ऊँची ब्याज दरे घरेलू निवश में बाधक मानी जाती है। परन्तु आनुभविक प्रमाण यन बताते है कि अल्पविकसित देशों में व्यवसाय तथा उद्योग में निवेश बेलोच होते है। क्योंकि निवेश की कुल लागत में ब्याज का बहुत कम अनुपात होता है। इन परस्पर विपरित अवधारणाओं के बावजूद,मौद्रिक अधिकारी के लिए विभेदक (Discrimintory) ब्याज दरों की नीति के अनुसरण ारना उचित होता है इए नीति के अनुसार अनावश्यक तथा अनुत्पदकीय प्रयोगों के लिए ऊंची ब्याज दरें और उत्पादकीय प्रयोगो के लिए नीची ब्याज दरे होनी चाहिए।

वित्तीय सेवाओं का प्रसार (Expamsion of financial service)

अल्पविकसित देशों में मौद्रिक नीति के उद्देश्य वित्तीय सेवाओं का प्रसार होना चाहिए। इसके लिए बैंकिग और वित्तीय संस्थाओं की स्थापना एवं विकास करना होता है। जिससे बचतों के जुटाने एवं पूंजी निर्माण के लिए प्रोत्साहित करने में मदद मिलती है। मौद्रिक अधिकारी के बैकिंग सेवा में मदद मिलती है। मौद्रिक अधिकारी को बैंकिग सेवा के प्रसार के लिए भाषा विस्तार एवं ग्रामीण तथा शहरी वंचित क्षेत्रों तक पहुॅच

सुनिश्चित करनी होगी। ऐसी नीति गैर मौद्रिकृत क्षेत्र के मुद्रीकरण में सहायक होगी और पूॅजी निर्माण के लिए बचत एवं निवेश के प्रोत्सहित करेगी। साथ ही अल्पविकसित देशों में वित्तीय सेवा का प्रसार काल्याणकारी अर्थव्यवस्था का मुल्य लक्ष्य होता है। जिससे देश में गैर संस्थागत ऋण स्रोतो की प्रभाविता एवं मनमर्जी लगाम लगाती है एवं संस्थगत सेवाओं को प्रोत्साहल मिलता है।

सार्वजनिक ऋण का प्रबंधन (Management of the Public Debt)

एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में सार्वजानिक ऋण का प्रबंधन करना मौद्रिक नीति के उद्देश्य में शामिल होना चाहिए। सरकारी बाडी के उचित समय पर जारी करना, उनकी कीमतो के स्थिर करना और सर्वजानिक ऋण की सेवा लागत के न्यूनतम बनाना मौद्रिक अधिकारी का कर्तव्य होना चाहिए। ऐसे देशों में सार्वजनिक ऋण मुद्रा पूर्ति के नियंत्रित करने और विकास प्रोग्रमों के वित्र प्रदान करने के लिए आवश्यक होते है। इस प्रकार की नीतियों के कारण ही देश का सतत विकास सम्भव हो सकता है।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक नीति के उद्देश्य–

अर्थव्यवस्थाओं के मौद्रिक नीति के उद्दश्यों के संदर्भ में यदि कहा जाए तो ये वे लक्ष्य होते है जिनके भविष्य में प्राप्त करना है। क्योकि ये लक्ष्य ही विकास के वाहक होते है और साथ ही अर्थव्यवस्था के समग्र विकास के आधारभूत स्तम्भ है। इन उद्देश्यों के पूरा करने के लिये केन्द्रीय बैंक या सरकार द्वारा निद्रेशित निकाय विभिन्य उपागमों के अपनाते हुये इन लक्ष्यों या उददेश्यों के प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अपने आपमें ये लच्छ मूलभूत और अर्थव्यवस्थ के विकास के मानक है।इनको प्राप्त करने के दो तरीके है जिनमें पहला कठोर नियामक तंत्र हैं। इसके अंतगर्त लक्ष्यों के प्राप्त करने

के लिए मौद्रिक ईकाइयों के ऊपर कठोर नियामकीय कार्यवाईयॉ की जाती है और उन्हें स्पष्ट निर्देश दिया जाता है कि वे अपनी परिसम्पतियों के किस क्षेत्र में निवेशित करें। अर्थात उनके द्वारा प्रदान किये जा रहे ऋणों की दशा एवं दिशा में निर्धारित किया जाता है। इस तंत्र का उपयोग प्रायः शुरुआती चरणों में किया जाता है। जिसका उद्देश्य पिछड़े हुये मौलिक क्षेत्रों के साष की सुविधा उपलब्ध कराना क्योंकि ये क्षेत्रक मौद्रिक इकाइर्यों एवं संस्थाओं को व्यवसायिक लाभ उतना नहीं प्रदान करते बल्कि ये दीर्घकालिक सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव वाले होते है। कठोर नियामकीय तंत्र कल्याणकार तंत्र होता है परन्तु यह दूसरे प्रकार के तंत्र की अपेक्षा का प्रभावकारी होता है।

लचीले नियामक तंत्र के अंतगर्त मौद्रिक इकाइयों एवं संस्थाओं के सुझाव एवं सलाह दी जाती है कि उन्हें अपनी साष सृजन क्षमता का उपयोग कि दिशा में करना चाहिए। इस प्रकार के तंत्र में औद्योगिक ऋण बाजार,पूंजी की उधम क्षेत्र में सुलभता, व्यापार , प्रतिस्पर्धा निवेश वृद्धि आदि प्रकार की उपलब्धियॉ प्राप्त हो सकती है। लचीले नियामक तंत्र से मौद्रिक संस्थाओं को भी लाभ प्राप्त होता है जिससे उनकी संख्या एवं भाषा में प्रसार होता है और वे अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के छूने की प्रवत्ति में होती है।मौद्रिक निति के उद्देश्यों प्राप्त करने के दोनों तरीके अपनी स्थिति में सही हैं जहां पहला शुरुआती चरण में सल क्षेत्रों के सास लेकर चलने का सिद्धान्त रखता वही दूसरा अन्य चरणो में अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण क्षेत्रों के प्रदान करता है। उद्दश्यों की पूर्ति अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक लक्ष्य निधार्रित किये जोते है। उदाहरण के लिए दीर्घकालिक आर्थिक विकास के लक्ष्य के प्राप्त करने के लिए मूल्य स्थिरता, स्फीती नियंत्रण, निवेश वृद्धि,आयात में कमी तथा निर्यात वृद्धि जैसे अल्पकालिक लक्ष्यों को निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार में लक्ष्य को निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार

में लक्ष्य एवं उद्देश्य आपस में अन्तसंबंधित होते है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के मौद्रिक नीति उद्देश्यों को निम्न प्रकारों में परिभाषित किया जा सकता है।–

अर्थव्यवस्था का विकास–मौद्रिक नीतियों के उद्देश्यों के अंतिम लक्ष्यों के रुप में अर्थव्यवस्था के विकास को रख जाता है। क्योंकि होता है। आर्थिक में अन्य सभी मौद्रिक नीतिगत एवं राजाकोषीय नीतिगत उद्देश्य समाहित है। अन्य मौद्रिक नीतिगत उद्देश्यों के प्राप्त किये बिना आर्थिक विकास के उद्देश्यों प्राप्त नहीं किया जा सकता है। आर्थिक विकास के समस्त उद्देश्य एवं उपागमों का प्रतिफल होता है। इसके आर्थिक संवृद्धि के साथ–साथ क्षेत्रों जैसे शिक्षा,स्वास्थ जीवन प्रत्याश आदि जैसे गुणात्मक लक्ष्यों की संवृद्धि के साथ आकलित किया जात है। आर्थिक विकास के मात्रात्मक पहलु में सकल घरेलू उत्पाद,राष्ट्रीय आय, प्रतिव्यक्ति आय,व्यय स्तर आदि की गणना की जाती है। इन दोनों मात्रात्मक एवं गुणात्मक पहलुओ की संवृद्धि के आधार पर अर्थव्यवस्था के विकास को परिभाषित किया जाता है। अर्थव्यवस्था के विकास के अन्य पहलुओं में कार्यशील जनसंख्या का विभिन्न क्षेत्र में नियोजन के आधार पर भी परिभषित किया जाता हैं अर्थात अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के कार्यशील जनसंख्या का सर्वाधिक हिस्सा प्राथमिक के कार्यशील क्षेत्रक पानी कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र में नियोजित होगा तथा विकसित अर्थव्यवस्था के कार्यशील जनसंख्या को अधिकांश प्रतिशत क्षेत्रक पानी सेवा क्षेत्र में नियोजित होगा। इसलिए अल्पविकसित देशों में मौद्रिक नीति के अर्थव्यवस्था के विकास के उद्देश्य में प्राथमिक क्षेत्र से सेवा क्षेत्र की ओर प्रतिस्पादन के लक्ष्य निश्चित किया जाता है।

स्फीति एवं अपस्फीति नियंत्रण–

मौद्रिक संस्थाओं की साष सृजन की क्षमता के नियंत्रित करने की असफलता के कारण, हीनार्थ प्रबंध के कारण, लागत में वृद्धि या मांग की तुलना में पूर्ति की कमी के कारण अर्थव्यवस्था में स्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है। और इसके विपरित दशाओं में अपस्फीति का जन्म होता हैं दोनों स्थितियॉ अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक होता हैं जहॉ स्फीति सामान्य दशाओं में रोजगार एवं निवेश में वृद्धि तो करती है परन्तु उच्च स्थिति में यह आम जनता पर बोझ बढ़ देती है और साथ ही साष निगर्मन करने वाली सेस्थाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है वही अस्फीति प्रत्येक दशा के हानिकारक होती है। वह आर्थिक विकास की गति के धीमा कर देती हैं। मूल्यों में कमी,लाभ में कमी,निवेश में कमी, रोजगार मे कमी,करके एक दुःखचक्र कर निर्माण करती है। इसलिए यन जल अपने उच्च स्तर पर होती है तो स्फीति से ज्यादा खतरनाक होती है। मौद्रिक नीति के उद्देश्य इन दोनो प्रकार की नकारमत्क प्राभावों को कम करना और आर्थिक विकास के बल देना होता है। इसके अन्तगर्त मौद्रक संस्थाओं पर उचित नियाम मानदण्डों के कम लचीना बनाया जात है।

मूल्य स्थिरता–

मौद्रिक नीति के प्रमुख लक्ष्यों में वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों में स्थिरता प्राप्त करना शामिल होता है। मौद्रिक अधिकारी विभिन्न उपायें को अपनाकर आर्थिक गिरावट वाले वस्तु एवं सेवा के मूल्य में वृद्धि तथा अधिक उछाल वाले वस्तु एवं सेवा के मूल्य में कमी करने का प्रयत्न करता है। मूल्य स्थिरता उत्पादन एवं उपभोग की सीमा तक करती हैं मूल्यों में अत्यधिक अस्थिरता उत्पादन इकाईया साथ–साथ उपयोग करने वाले लोगों को अपने बचत एवं निवेश की योजनाओं के प्रातिकुल प्रभावित करती है।

मूल्य स्थिरता एवं भातिष्य में लाभ की आकांक्षा घरेलू निवेश के साथ.साथ विदेशी निवेश का भी आकर्षित करती है। इसलिए अर्थव्यवस्था में मूल्य स्थिरता एक आवश्यक तत्व है।

निवेश में वृद्धि– मौद्रिक अधिकारी ब्याज पर अधिक प्रतिफल की नीति का अनुसरण कर देश में विदेशी एवं घरेलू निवेश में वृद्धि कर सकता है।उच्च मौद्रिक उत्पादकता विदेशी निवेश अर्न्तवाह के गति प्रदान करता है निवेश में वृद्धि विदेशी मुद्रा प्राप्तियों में भी वृद्धि करती है। जिससे भुगतान असंतुलन के दुःप्रभावों के भी कम किया जा सकता है। भुगतान संतुलन एवं सरलस की स्थिति देश की सशक्ता के इंगित करता हैं जिससे देशी एवं विदेशी निवेशको के निवेश करने के लिये अवस्था बनता हैं इसलिए मौद्रिक नीतिपग उद्देशों में इसे भी शामिल किया जाता हैं।

भुगतान संतुलन– मौद्रिक नीति कीमत स्थिरता, स्फीति एवं अपरिथित नियंत्रण साष की अपलब्धता, निवेश में वृद्धि की दश,नियति वृद्धि एवं आयात प्रतिस्थापन के प्रति अनुकूल दशाओं का निर्माण कर भूगतान संतुलन को बनाने रखता है। भुगताल असंतुलन की स्थिति विदेशी मुद्राओं की कमी एवं नियति के अपेक्षा आयात में वृद्वि के फलस्वरुप उत्पन्न होती है। केन्द्रीय बैंक घरेलू मुद्रा के वाहय मूल्य के कम करके वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यात में वृद्धि कर सकता है। भुगतान संतुलन अर्थव्यवस्था की मौद्रिक नीति का अनिवार्य तत्व है जो देश है जो देश की साष (Status) में वृद्धि करता है।

रोजगार के अवसर – देश में पूर्ण रोजगार एक मनत्वपूर्ण लक्ष्य होता है। जो देश की आर्थिक नीति का प्रतिबिम्ब है। रोजगार हीन जनसंख्या देश के दायित्व में वृद्धि करती है। जो शक्ति सहित अउत्पादक का घातक है। रोजगार के अधिक अवसर सृजित करना मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य है।इससे आय, उपभोग,जीवन निर्वाह स्तर,

जीवन प्रत्याशा बचत एवं निवेश में वृद्धि होती है। जो अन्तत। अर्थव्यस्था, के विकास में महत्वपूर्ण योगदान निभाता है। मौद्रिक अधिकारी अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति के बढ़ाकर नये उद्योगों की स्थापना एवं उधमशीलता की क्षमता में वृद्धि कर सकता है। जिससे रोजगार में अवसर बढ़ जाते है। और वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग में वृद्धि होती है।

नियति में वृद्धि एवं आयात प्रतिस्थापन– घरेलू एवं सेवाओं की मूल्य वृद्धि या तो इनपुर लागतों में वृद्धि के कारण होती है। या बाजार में अधिक तरस्ता के कारण उत्पन्न हुई मां में वृद्धि के कारण इस अवस्था में निर्यात प्रतिकुल रुप से प्रभावित होता हैं और विदेशी बाजार में उसी प्रकार की वस्तु एवं सेवा की सस्ती कीमत आयात के प्रोत्साहित करती है जो किसी अर्थव्यवस्था खासकर अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के नकारात्मक रुप से प्रभावित करती है। इसलिए मौद्रिक नीति के उपायों के अधीन विनिमय दर एवं मुद्रा के आंतरिक नीति एवं बाहय मूल्य के नियंत्रित कर नियति में वृद्धि एवं आयात प्रतिस्थापन को उद्देश्य पूरा करना मौद्रिक नीति का लच्य होता है।

असमानता में कभी– अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में आय की अपमानता अधिक होती है। देश के शीर्ष कुछ लोगो के पास देश की सम्पत्ति का सर्वाधिक हिस्सा तथा अधिक लोगो में पास सम्पत्ति का कुछ हिस्सा होता है।एसे में भ्रष्टाचार एवं अपराध अपनी चरम स्थिति में होते है। जिससे देश की सरकार एवं नियामक संस्थाअं की नितियों में आय असमानता में कभी लाना प्रमुख उद्दश्य बन जाता है। मौद्रिक अधिकारी अपनी मौद्रिक संस्थाओं पर नियामक नीति के द्वारा आय असमानता में कभी कर सकता है। वह क्रेडिट रॉशनिंग या प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को उधार (Priority sector teding psc) नीति या लीड बैंक योजना जैसी योजना या अन्य योजना एवं बैंको के

वर्गीकरण की नीति का अनुसरण कर साष के विभिन्न सैक्टरों में मोविलाइज कर आप की समानता स्थापित करने में मदद कर सकता है। इसलिए यह मौद्रिक नीति के उद्देश्यों में शामिन एक सामाजिक लक्ष्य है।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति की भूमिका राजकोषीय नीति जितना ही महत्वपूर्ण होती है। जहॉ राजकोषीय नीति बजट में विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन एवं कराधान आदि नीति का पासन कर देश की अर्थव्यवस्था की विकास में योगदान देती है। वही मौद्रिक नीति वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में स्थिरता, स्फीतिकारी दवाओं को कम कर,उचित ब्याज दर नीति एवं सार्वजानिक ऋण का प्रबंधन कर अर्थव्यवस्था के गति प्रदान करती है। अर्थव्यवस्था के विकास में मौद्रिक नीति की विभिन्न भूमिका मौद्रिक नीति निर्णायक संस्था को महत्वपूर्ण बना देती है। इसलिए एक सशक्त मौद्रिक निति निर्माणक मशीनरी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्तम्भ होती है जो देश के विकास की दिश तय करती है। यह अपने द्वारा लक्षित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न उपकरणों (tools) के सहारा लेकर देश के अल्प विकसित पदनाम के परिवर्तित करती हैं अतः मौद्रिक नीति की भूमिका एवं स्पष्ट उद्देश्य अर्थव्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण होते है।

अविकसित देशों में मौद्रिक नीति का दायरा:

निम्न कारणों से उन्नत देशों में इसकी तुलना में विकसित देशों में मौद्रिक नीति का दायरा बेहद सीमित है:

- एक विकसित अर्थव्यवस्था में, मुद्रा बाजार में संगठन का अभाव होता है, जिसके परिणामस्वरूप केंद्रीय बैंक के मौद्रिक प्रबंधन में संभावित खामियां होती हैं।

- अधिकांश गरीब देशों में, धन आपूर्ति का प्राथमिक घटक प्रचलन में भौतिक नकदी द्वारा दर्शाया जाता है, जबकि बैंक जमा तुलनात्मक रूप से सीमित पैमाने पर होते हैं। आर्थिक रूप से वंचित देशों में व्यक्तियों के बीच स्थापित बैंकिंग प्रथाओं की अनुपस्थिति बैंकिंग क्षेत्र के विनियमन के माध्यम से अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालने की मांग करने वाले मौद्रिक अधिकारियों के लिए एक चुनौती है।
- विकासशील देशों में बैंक दर या अन्य मौद्रिक साधनों की कमी के कारण परिवर्तनों की अप्रभावीता को उनकी अर्थव्यवस्था के भीतर एक महत्वपूर्ण गैर–मुद्रीकृत क्षेत्र की उपस्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत अल्पविकसित देशों में मौद्रिक नीति किस हद तक प्रभावी हो सकती हैं, इसमें बाधाएँ डालती हैं। फिर भी, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि समग्र आर्थिक ढांचे में मौद्रिक नीति का अभी भी महत्व है। कुछ बाधाओं की उपस्थिति के बावजूद, एक विकासशील देश में मौद्रिक नीति ऋण उपलब्धता और उपयोग पर प्रभाव डालकर, मुद्रास्फीति के दबावों को संबोधित करके और अर्थव्यवस्था में संतुलन सुनिश्चित करके आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। एक तर्क यह भी है कि विकास की कमी के कारण अर्थव्यवस्था के अंदर मौद्रिक आपूर्ति का प्रमुख हिस्सा बैंक जमा के विपरीत भौतिक मुद्रा के रूप में प्रकट होता है। परिणामस्वरूप, केंद्रीय बैंक मुद्रा के प्रचलन को विनियमित करके व्यय की गति पर अधिक प्रभावी नियंत्रण रख सकता है। कम विकसित राष्ट्र में आर्थिक विकास की रणनीतिक योजना पर मौद्रिक नीति और प्रबंधन का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। प्राथमिक उद्देश्य पूरे देश में विकासात्मक प्रयासों के वित्तपोषण के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे की स्थापना या

सुधार को सुविधाजनक बनाना है। इसके अतिरिक्त, इसका उद्देश्य वित्तीय संसाधनों के उचित आवंटन की गारंटी देना है। संक्षेप में, अविकसित अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति के उपयोग का उद्देश्य विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना और स्थिरता के स्वीकार्य स्तर को बनाए रखते हुए आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए आदर्श परिस्थितियाँ प्रदान करना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अहमद, मोइद यू., मौद्रिक नीति परिवर्तनों की प्रभावशीलता का विश्लेषण (31 जुलाई, 2014)। http://dÛ-doi-org/10-2139/ssrn-2474594
2. पालकील, पी. (2007)। भारत में मौद्रिक नीति संचरण की गतिशीलता, साउथ एशियन जर्नल ऑफ मैनेजमेंट, 14(3), पीपी. 95–114
3. चन्द्रशेखर, सीपी और घोष, जे (2022) एक असमान विश्व अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीतिरू निम्न और मध्यम आय वाले देश कैसे प्रतिक्रिया दे सकते हैं? "वैश्विक मुद्रास्फीति आजरू क्या किया जाना है?" विषय पर सम्मेलन में पेपर प्रस्तुत किया गया। ", राजनीतिक अर्थव्यवस्था अनुसंधान संस्थान, मैसाचुसेट्स एमहर्स्ट विश्वविद्यालय, यूएसए, नवंबर।
4. **https://www.yourarticlelibrary.com/policies/monetary-policy-in-under-developed-countries/23467**
5. बर्मन आर.बी., "भारत में मौद्रिक नीति के लिए आर्थिक संकेतकों का पूर्वानुमान: एक आकलन", आईएफसी बुलेटिन, वॉल्यूम। 13, 2002, पृ.80–93.
6. अरुण घोष, "समायोजन कार्यक्रम और ब्याज दर नीति।" इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, वॉल्यूम। 29(25), जून 1994, पृ.1501–1505।
7. एरोल डिसूजा, "बदलता मौद्रिक वातावरण"। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, जनवरी 2001, पृ.299–301।

8. दीपक मोहंती, "भारत में मौद्रिक नीति का कार्यान्वयन। मार्च 2010 को बैंकर्स क्लब, एक्सश्श में दिया गया भाषण, www-rbi-org-in

9. राजवाड़े, ए.वी., "मौद्रिक नीति के परिप्रेक्ष्य", आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड। 34(48), नवंबर 1998, पृ.3339–3340

10. श्रीमती सीमा गोयल, एक अविकसित अर्थव्यवस्था का विवरण: भारत के संदर्भ में, खंड: 4, अंक : 5 , मई 2015, आईएसएसएन नंबर 2277 – 8179

11. https://sarkariguider.com/alpavikasit-arthavyavastha/

12. https://sarkariguider.in/अल्पविकसित-अर्थव्यवस्था

खण्ड–4

इकाई–5

राजकोषीय नीति : अवधारणा, उद्देश्य एवं अस्त्र

इकाई की रुपरेखा–

5.1 राजकोषीय नीति का अर्थ

5.2 राजकोषीय नीति के प्रकार

5.3 राजकोषीय नीति के उद्देश्य

5.4 राजकोषीय नीति के घटक

5.5 विकासशील अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति की भूमिका

5.6 राजकोषीय नीति में स्वर्णिम नियम

5.7 राजकोषीय नीति की विशेषताएं

5.8 निष्कर्ष

5.9 बोधात्मक प्रश्न

5.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

राजकोषीय नीति का अर्थ

आर्थिक परिस्थितियों, विशेष रूप से व्यापक आर्थिक कारकों को बदलने के प्रयास में शासी निकायों द्वारा किए गए खर्च और कर लगाने के निर्णयों को सामूहिक रूप से राजकोषीय नीति के रूप में जाना जाता है। यह वस्तुओं और सेवाओं की कुल मांग, आर्थिक विकास, साथ ही रोजगार और मुद्रास्फीति दरों को ध्यान में रखता है। जिस मुद्दे का उत्तर दिया जाना है वह यह है कि सरकार को करों से कितना पैसा मिलता है और उस पैसे का कितना हिस्सा रक्षा, कल्याण और शिक्षा पर खर्च किया जाता है।

इसके बावजूद, यह विचार मौद्रिक नीति को भी संदर्भित करता है, जिसे केंद्रीय बैंकरों द्वारा प्रबंधित किया जाता है और अर्थव्यवस्था में धन और ऋण की मात्रा को प्रभावित करता है। जब आर्थिक विस्तार धीमा होने लगता है, तो ये दोनों विचार इसे पुनर्जीवित करने और समग्र विकास को बढ़ावा देने में फायदेमंद हो सकते हैं। इसके अलावा, राजकोषीय नीति स्वास्थ्य और आय दोनों के पुनर्वितरण की प्रक्रिया में सहायक हो सकती है।

सबसे महत्वपूर्ण उपकरणों में से एक जिसका उपयोग सरकारें अपने व्यापक आर्थिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण और प्रभाव डालने के प्रयासों में करती हैं, उसे राजकोषीय नीति के रूप में जाना जाता है। राजकोषीय नीति, अपने सबसे बुनियादी रूप में, अर्थव्यवस्था की दिशा को प्रभावित करने के लिए सरकारी खर्च और कर नीति के उपयोग को संदर्भित करती है। यह आर्थिक विस्तार को बनाए रखने या प्रोत्साहित करने के लिए कर और व्यय जैसी राजकोषीय नीतियों का उपयोग करने वाली सरकार की प्रथा को संदर्भित करता है। दूसरे शब्दों में, जब लोग राजकोषीय नीति के बारे में बात करते हैं, तो वे सरकार की बजटीय नीति का उल्लेख करते हैं, जिसमें सरकार अर्थव्यवस्था के भीतर होने वाले खर्च और कर की मात्रा को निर्देशित करती है।

राजकोषीय नीति के प्रकार

राजकोषीय नीति के दो मुख्य प्रकार हैं। वे हैं:

- **तटस्थ राजकोषीय नीति:** जब एक निश्चित अवधि में कुल कर संग्रह और कुल सरकारी व्यय के अनुपात में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होता है, तो राजकोषीय नीति को तटस्थ कहा जाता है। ज्यादातर मामलों में, इस प्रकार की रणनीति तब लागू की जाती है जब अर्थव्यवस्था संतुलन की स्थिति में होती है, जिसका अर्थ है कि यह न तो तेजी से बढ़ रही है और न ही घट रही है। इस परिदृश्य में, आर्थिक गतिविधि की मात्रा सरकार के व्यय से किसी भी तरह से प्रभावित नहीं होती है क्योंकि ऐसे व्यय पूरी तरह से कर आय द्वारा समर्थित होते हैं।
- **विवेकाधीन राजकोषीय नीति:** शब्द षविवेकाधीन राजकोषीय नीतिष उस नीति को संदर्भित करता है जिसे सरकार तब लागू करती है जब वह करों या व्यय के स्तर को समायोजित करने का निर्णय लेती है। इसका लक्ष्य स्थिति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए

अर्थव्यवस्था के आकार को समायोजित करना है। इसे आगे दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) विस्तारवादी राजकोषीय नीति: जब सरकार करों के माध्यम से लाने से अधिक पैसा खर्च करती है, तो इस प्रकार की राजकोषीय नीति को विस्तारवादी कहा जाता है और विवेकाधीन राजकोषीय नीति की श्रेणी में आती है। आर्थिक मंदी के समय में, प्रोत्साहन व्यय एक सामान्य प्रकार की राजकोषीय नीति है जिसे समग्र आर्थिक गतिविधि को बढ़ावा देने के प्रयास में लागू किया जाता है।

(ii) संकुचनकारी राजकोषीय नीति: जब करों में एकत्रित धन की राशि सरकार द्वारा खर्च की जाने वाली राशि से कम होती है, तो विवेकाधीन राजकोषीय नीति को संकुचनकारी कहा जाता है। इस प्रकार की राजकोषीय नीति का कार्यान्वयन राष्ट्रीय ऋण को कम करने और मुद्रास्फीति को नियंत्रण में रखने के लक्ष्य के साथ किया जाता है।

राजकोषीय नीति के उद्देश्य

राजकोषीय नीति का लक्ष्य अर्थव्यवस्था को स्थिर करना, अर्थव्यवस्था की स्थिति के रूप में पूर्ण रोजगार बनाए रखना और विकास को ऐसी गति से बनाए रखना होना चाहिए जिसे नियंत्रित किया जा सके। राजकोषीय नीति के सामान्य उद्देश्यों की सूची निम्नलिखित है:

- पूर्ण रोजगार: विकासशील अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति का पहला और सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य किसी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार तक पहुँचना और उसे बनाए रखना राजकोषीय नीति का प्राथमिक लक्ष्य है। इन देशों में, बेरोजगारी को कम करने और पूर्ण रोजगार तक पहुंचने को बाकी सभी चीजों से ऊपर प्राथमिकता दी जाती है। इसलिए, सरकार को बेरोजगारी और अल्परोजगार को खत्म करने के लिए सामाजिक और आर्थिक बुनियादी ढांचे में पर्याप्त निवेश करना चाहिए। इन क्षेत्रों में निवेश से अर्थव्यवस्था में रोजगार की संभावनाएं और उत्पादकता बढ़ेगी।
- मूल्य स्थिरता: मूल्य परिवर्तन का समाज के कई अलग–अलग वर्गों पर प्रभाव पड़ता है, जिसमें ग्राहक, श्रमिक और कर्मचारी, किसान, उत्पादक और व्यापारी शामिल हैं। बढ़ती लागत का सीधा परिणाम पूरी आबादी को भुगतना पड़ता है। मूल्य वृद्धि और कमी के नकारात्मक

प्रभावों को समाप्त करके, राजकोषीय नीति मूल्य स्थिरता बनाए रखने के अपने लक्ष्य की दिशा में काम करती है। सब्सिडी देकर या करों को कम करके मूल्य वृद्धि के प्रभाव को कम करना संभव है।

- आर्थिक विकास की दर को तेज करना: एक ऐसी अर्थव्यवस्था में जो अभी भी बढ़ने की प्रक्रिया में है, देश की राजकोषीय नीति का प्राथमिक उद्देश्य उस गति को तेज करना होना चाहिए जिस गति से अर्थव्यवस्था का विस्तार हो रहा है। इसके आलोक में, यह सुनिश्चित करने के लिए कि उत्पादन, उपभोग और वितरण नकारात्मक रूप से प्रभावित न हों, अन्य विकल्पों के साथ–साथ कर, सार्वजनिक उधार और घाटे के वित्तपोषण जैसी राजकोषीय नीतियों का कुशल अनुप्रयोग आवश्यक है। इसे समग्र रूप से अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए काम करना चाहिए, जिससे राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय दोनों में वृद्धि में योगदान मिलेगा।
- संसाधनों का इष्टतम आवंटन: विभिन्न प्रकार के उद्योगों और व्यवसायों में संसाधनों का वितरण करों और सार्वजनिक व्यय जैसी मौद्रिक नीतियों से गहराई से प्रभावित हो सकता है। सब्सिडी और प्रोत्साहन के रूप में सार्वजनिक धन के खर्च के माध्यम से इच्छित चौनलों में संसाधनों के वितरण पर अनुकूल प्रभाव प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, छूट और रियायतों के रूप में कर छूट पसंदीदा व्यवसायों की ओर संसाधनों को आकर्षित करने में एक बड़ी सहायता हो सकती है। दूसरी ओर, भारी करों के कारण एक निश्चित क्षेत्र के संसाधनों को दूसरे क्षेत्र में स्थानांतरित किया जा सकता है।
- आय और धन का समान वितरण: यह एक कल्याणकारी राज्य की जिम्मेदारी है कि वह यह सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय को बनाए रखे कि धन और आय का उचित वितरण हो। अमीर और विकासशील दोनों देशों में, राजकोषीय नीति में समाजवादी लक्ष्य को पूरा करने के एक कुशल तरीके के रूप में कार्य करने की क्षमता है जिसकी व्यापक रूप से मांग की जाती है। एक अधिक प्रगतिशील कर संरचना इस लक्ष्य की दिशा में काम करने में बहुत मददगार हो सकती है। इसके अलावा, सार्वजनिक व्यय अमीरों से समाज के कम भाग्यशाली सदस्यों तक धन के पुनर्वितरण की सुविधा प्रदान करता है।
- आर्थिक स्थिरता: प्रभावी राजकोषीय नीति का प्राथमिक लक्ष्य आर्थिक स्थिरता बनाए रखना है। इस उद्देश्य के लिए पूर्ण रोजगार और कुछ

हद तक स्थिर कीमतों को संरक्षित करना आवश्यक है। मुद्रास्फीति और अपस्फीति दोनों को नियंत्रित करने की आवश्यकता है। संक्षेप में, एक विकासशील देश की राजकोषीय रणनीति आर्थिक विकास और स्थिरता दोनों हासिल करना चाहती है। साथ ही जैसे–जैसे मुद्रास्फीति का दबाव कम हो रहा है, आर्थिक प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने वाले कारकों को मजबूत किया जाना चाहिए। वैश्विक अर्थव्यवस्था में अस्थायी उतार–चढ़ाव के बावजूद बजटीय नीतियां अर्थव्यवस्था को स्थिर रखने में मदद करती हैं। इन बदलावों के कारण, व्यापार संतुलन भी बदल जाता है, सबसे लाभप्रद बदलाव से अधिक स्थापित देशों को लाभ होता है और सबसे नकारात्मक बदलाव उभरते देशों को होता है। परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था को आंतरिक और विदेशी दोनों झटकों से बचाने में राजकोषीय नीति महत्वपूर्ण है।

- पूंजी निर्माण: राजकोषीय रणनीति वाणिज्यिक और सरकारी दोनों क्षेत्रों में निवेश दरों को बढ़ाने का प्रयास करती है। विकासशील देशों में पूंजी निर्माण दर उच्च बेरोजगारी दर और प्रति व्यक्ति आय के निम्न स्तर जैसे कारकों से काफी बाधित है। इन देशों के सामने मुख्य समस्या गरीबी का सतत चक्र है। इसलिए, औद्योगिक देशों में अत्यधिक खर्च पैटर्न को कम करने के उद्देश्य से, राजकोषीय नीति को इस तरह से लागू किया जाता है कि उपभोग में कमी आए और बचत को बढ़ावा मिले।

उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि राजकोषीय नीति के उद्देश्य परस्पर विरोधी नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं।

राजकोषीय नीति के घटक

राजकोषीय नीति में करों, संसाधन जुटाने और खर्च से संबंधित सभी सरकारी विकल्प शामिल हैं। राजकोषीय नीति के चार मूलभूत घटक हैं, जो इस प्रकार हैंरू

कराधान नीति: सरकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के कार्यान्वयन के माध्यम से राजकोषीय संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती है, जिससे मूल्य स्थिरता सुनिश्चित करने के साथ–साथ धन भी उत्पन्न होता है। इसलिए, सरकार के लिए करों के लिए कानूनी ढांचे का पालन करना और प्रगतिशील कर प्रणाली जैसी सटीक कर दरों को लागू करना आवश्यक है। इसका श्रेय दो कारकों को दिया जा सकता है:

(क) कर जितना अधिक होगा, लोगों की क्रय शक्ति कम होगी। इससे निवेश और उत्पादन में कमी आएगी.

(ख) कम कर से लोगों के पास अधिक पैसा बचेगा जिससे अधिक खर्च होगा और इस प्रकार उच्च मुद्रास्फीति होगी

व्यय नीति: सरकार की व्यय नीति में आय और पूंजीगत व्यय दोनों शामिल हैं। सरकार के पूंजीगत व्यय में इमारतों या विनिर्माण उपकरण जैसी टिकाऊ संपत्तियों की खरीद शामिल है, जिनसे आर्थिक लाभ प्रदान करने या सरकार के लिए अधिक राजस्व उत्पन्न करने की उम्मीद की जाती है। राजस्व व्यय उन व्ययों को संदर्भित करता है जिनके परिणामस्वरूप उत्पादक परिसंपत्तियों का निर्माण नहीं होता है। ऐसे व्ययों के उदाहरण भारत सरकार द्वारा आंतरिक और विदेशी दोनों ऋणों पर किया गया ब्याज भुगतान, साथ ही सरकारी कर्मियों को पेंशन और वेतन का वितरण हैं।

निवेश और विनिवेश नीति: निवेश और विनिवेश नीति की अवधारणा किसी अर्थव्यवस्था के अंदर बाहरी संस्थाओं द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) या विदेशी संस्थागत निवेश (एफआईआई) के रूप में धन के आवंटन के साथ–साथ सरकार के विनिवेश से संबंधित है– सार्वजनिक या निजी शेयरधारकों के पास रखी संपत्ति।

ऋण/अधिशेष प्रबंधन: जब सरकार का राजस्व उसके व्यय से अधिक हो जाता है, तो इसे अधिशेष कहा जाता है। जब सरकार का व्यय उसके राजस्व से अधिक हो जाता है, तो इसे घाटा कहा जाता है। घाटे को पूरा करने के लिए, सरकार को घरेलू या अंतर्राष्ट्रीय स्रोतों से ऋण प्राप्त करना होगा। इसके अलावा, इसमें घाटे की वित्त व्यवस्था को संबोधित करने के लिए मुद्रा उत्पन्न करने की क्षमता है।

विकासशील अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति की भूमिका

एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति का प्राथमिक उद्देश्य पूंजी निर्माण दरों को अधिकतम करने की सुविधा प्रदान करना है। उभरती अर्थव्यवस्थाओं में लागू राजकोषीय नीति को आदर्श रूप से तेज आर्थिक विकास को बढ़ावा देने और सुविधाजनक बनाने के लिए डिजाइन किया जाना चाहिए। विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में, यह स्वीकार करना अनिवार्य है कि क्षतिपूर्ति उपाय के रूप में राजकोषीय नीति की प्रभावशीलता

अब व्यवहार्य नहीं है। एक विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में, यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य करता है और इसमें स्थिरता बनाए रखते हुए विकास हासिल करने की दोहरी चुनौती होती है। इस पेपर का उद्देश्य विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में राजकोषीय नीति द्वारा निभाई जाने वाली कई भूमिकाओं की जांच करना है।

संसाधन जुटाना: उभरते देशों में, तीव्र गरीबी की व्यापकता के कारण खर्च करने की सीमांत प्रवृत्ति काफी बढ़ गई है। नतीजतन, विचाराधीन अर्थव्यवस्थाओं में बचत का स्तर बहुत कम है। इसलिए, करों और सार्वजनिक उधार जैसे तंत्रों के माध्यम से प्राप्त पूंजी विकास के उद्देश्य के लिए बचत के संचय को सुविधाजनक बनाने में राजकोषीय नीति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके अलावा, कर कटौती और सब्सिडी के प्रावधान का निजी क्षेत्र के भीतर पूंजी निर्माण और बचत पर प्रभाव पड़ सकता है।

निजी क्षेत्र का विकास: विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में, निजी क्षेत्र अर्थव्यवस्था के मूलभूत घटक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राजकोषीय नीति में निजी क्षेत्र के उत्पादन और उत्पादकता पर प्रभाव पड़ने की संभावना है। निजी क्षेत्र के भीतर उत्पादक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने और बढ़ाने के साधन के रूप में कर राहत, छूट और सब्सिडी प्रदान की जा सकती है। निजी क्षेत्र के लिए संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता की गारंटी के लिए पूंजी बाजार को प्रोत्साहित करने के लिए राजकोषीय उपकरणों और नीतियों का उपयोग किया जा सकता है।

संसाधनों के आवंटन का अनुकूलन: उभरती अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में, संसाधनों के सबसे कुशल आवंटन को प्राप्त करने के लिए राजकोषीय उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है। अक्सर, निजी क्षेत्र के भीतर संसाधनों को उन वस्तुओं के निर्माण के लिए आवंटित किया जाता है जो मुख्य रूप से समाज के अधिक समृद्ध वर्गों की जरूरतों और प्राथमिकताओं को पूरा करते हैं। जुटाए गए संसाधनों को निवेश के पसंदीदा माध्यमों में स्थिर करने के लिए राजकोषीय उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है। इसलिए, कई कर प्रोत्साहन उपायों और सब्सिडी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन से पुनर्आवंटन की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाया जा सकता है।

सामाजिक और आर्थिक उपरिव्ययों का निर्माण: उभरती अर्थव्यवस्थाओं में, मौलिक बुनियादी ढांचे को उनकी पूरी क्षमता से विकसित नहीं किया जा रहा है। जब शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल जैसे सामाजिक उपरिव्यय प्रदान किए

जाते हैं तो जनसंख्या की उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है। औद्योगीकरण को गति देने के लिए, परिवहन बुनियादी ढांचे, बिजली संयंत्रों और संचार नेटवर्क जैसे आर्थिक उपरिव्ययों पर पैसा खर्च किया जाना चाहिए। इस प्रकार सरकारों को सामाजिक और आर्थिक बुनियादी ढांचे के निर्माण के वित्तपोषण के लिए करों और व्यय योजनाओं का उपयोग करना चाहिए।

संतुलित क्षेत्रीय विकास: विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के सामने आर्थिक विकास के संदर्भ में क्षेत्रीय असमानताओं की चुनौती है। संतुलित विकास को बढ़ावा देने के लिए, आर्थिक रूप से वंचित क्षेत्रों में काम करने वाले निजी निवेशकों को विभिन्न वित्तीय साधन जैसे कर छूट, कर अवकाश, सब्सिडी और बुनियादी ढांचे के उपयोग के प्रोत्साहन की पेशकश की जा सकती है। इन उपायों का उद्देश्य इन क्षेत्रों में निजी निवेश को प्रोत्साहित करना है।

आर्थिक स्थिरता: कर और व्यय कार्यक्रम जैसे राजकोषीय उपकरणों का उपयोग आर्थिक विकास के दौरान उभरने वाले चक्रीय उतार–चढ़ाव के प्रबंधन के लिए एक व्यवहार्य तंत्र के रूप में किया जा सकता है। मुद्रास्फीतिकारी और अपस्फीतिकारी दोनों परिस्थितियों से निपटने के लिए कराधान एक शक्तिशाली उपकरण है।

असमानता में कमी: आय, धन और अवसरों के उचित वितरण का प्रावधान उभरती अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है। असमानता को कम करने में राजकोषीय नीति का कार्य महत्वपूर्ण है। आय पुनर्वितरण की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने में कराधान उपकरणों का उपयोग महत्वपूर्ण है। आय, धन और अवसर असमानताओं को कम करने के उद्देश्य से कई राजकोषीय उपाय हैं। इन उपायों में आय और संपत्ति पर प्रगतिशील कराधान लागू करना, विलासिता की वस्तुओं पर पर्याप्त कर लगाना, बड़े पैमाने पर उपभोग वाली वस्तुओं पर कर छूट या रियायतें देना, राहत कार्यक्रमों के लिए सरकारी धन आवंटित करना और व्यक्तियों के लिए उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से रियायती मूल्य पर आवश्यक वस्तुएं प्रदान करना शामिल है।

राजकोषीय नीति में स्वर्णिम नियम

राजकोषीय नीति का स्वर्णिम नियम यह है कि सरकार को उधार ली गई नकदी (ऋण) को उन पहलों में नियोजित करना चाहिए जो भविष्य की पीढ़ियों को लाभान्वित करती हैं जिन्हें ऋण वापस करना होगा। "स्वर्णिम सिंध्दान्त कहता है कि एक आर्थिक चक्र के दौरान, सरकार को केवल निवेश

के लिए उधार लेना चाहिए, मौजूदा खर्च के लिए नहीं।" इस प्रकार, राजकोषीय नीति को सुनहरे नियम के तहत अंतर–पीढ़ीगत न्याय को प्राथमिकता देनी चाहिए। यह उन सरकारों के लिए विशेष रूप से सच है जो अपने बजट को पूरा करने के लिए भारी उधार लेती हैं। सुनहरे नियम का तात्पर्य यह है कि ऋण का उपयोग सरकारी मशीनरी (राजस्व व्यय), पेंशन, मजदूरी आदि का समर्थन करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए, जिससे वर्तमान पीढ़ी को लाभ होता है। राजकोषीय नीति का सुनहरा नियम यह है कि सरकार को पूरे आर्थिक चक्र में निवेश के लिए विशेष रूप से उधार लेना चाहिए, न कि वर्तमान व्यय के लिए। सीधे शब्दों में कहें तो, सरकार को भविष्य की परियोजनाओं के वित्तपोषण के लिए उधार लेना होगा।

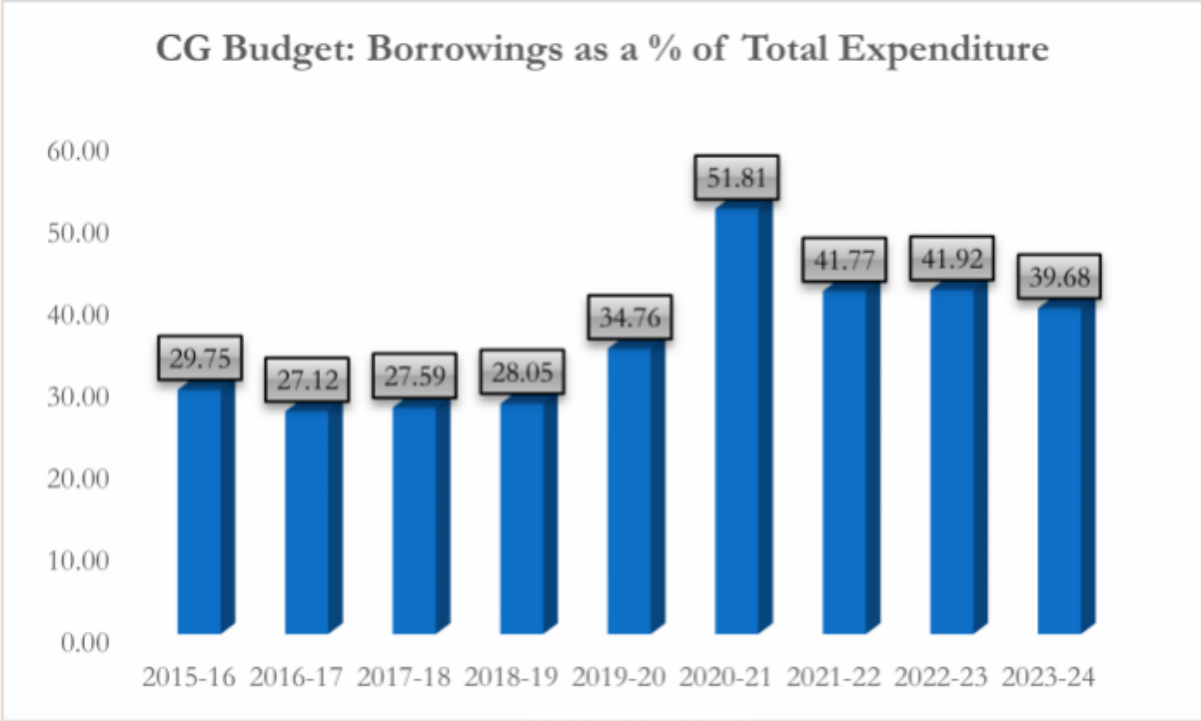

https://www-indianeconomy-net.translate.goog/splclassroom/what-is-golden-rule-in-fiscal-policy

भारत में संघीय सरकार और अधिकांश राज्यों में ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण आय अंतर रहा है। पूंजीगत बजट में अतिरिक्त राशि का उपयोग आय में कमी को पूरा करने के लिए किया जाता है। पूंजीगत बजट में इस अधिकता का कारण भारी उधारी है। यदि पूंजी बजट में अधिशेष उधार लेने का परिणाम है, तो आय में कमी बढ़ी हुई सब्सिडी, ब्याज भुगतान आदि के कारण है। वर्तमान समाज को ऐसे सभी हस्तांतरणों से लाभ होता है। हालाँकि, आने वाली पीढ़ियाँ कर्ज चुकाने के लिए जिम्मेदार होंगी। इसका समाधान यह है कि सरकार उधार ली गई धनराशि को दीर्घकालिक पहलों में निवेश करे।

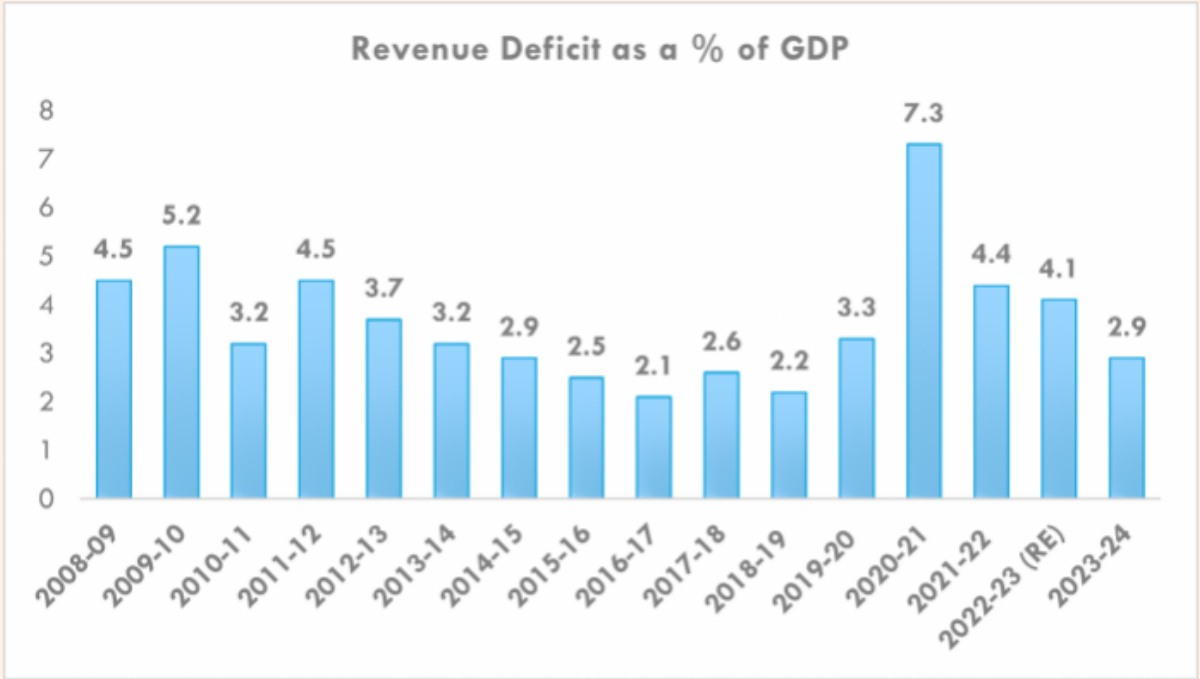

स्वर्णिम सिध्दान्त यह निर्देश देता है कि सरकार को खर्च संबंधी निर्णय लेते समय भावी पीढ़ियों के साथ उचित व्यवहार करना चाहिए। यदि सरकार उधार ली गई नकदी का उपयोग वेतन और पेंशन जैसे चल रहे खर्चों के भुगतान के लिए करती है तो वर्तमान पीढ़ी को लाभ मिलेगा। हालाँकि, यह आने वाली पीढ़ियाँ हैं जिन्हें कर्ज चुकाने के लिए जिम्मेदार ठहराया जाएगा। इस प्रकार सरकारी उधारी और व्यय से इसका भुगतान करने के लिए जिम्मेदार समूह या आने वाली पीढ़ियों को लाभ होना चाहिए। यहां कार्रवाई का सबसे बुद्धिमान तरीका उधार ली गई धनराशि को दीर्घकालिक परिसंपत्तियों, जैसे बुनियादी ढांचे में निवेश करना है।

इसके अन्तर्गत सरकार के बजट में राजस्व में कोई कमी न हो। जब सरकार का कर और गैर–कर आय से दैनिक मुनाफा उसके दैनिक कार्यों का समर्थन करने के लिए अपर्याप्त होता है, तो राजस्व अंतर मौजूद होता है।

2022के बजट के कार्यान्वयन के बाद पूंजीगत व्यय के अनुपात में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वित्तीय वर्ष 2020– 21में, पूंजीगत व्यय का अनुपात मात्र %12था, जो बाद में वर्ष 2023– 24के अनुमानित बजट में %22तक बढ़ गया। धनराशि का बढ़ा हुआ आवंटन सरकार के स्वर्णिम नियम के सिद्धांत के सक्रिय पालन का प्रतीक है।

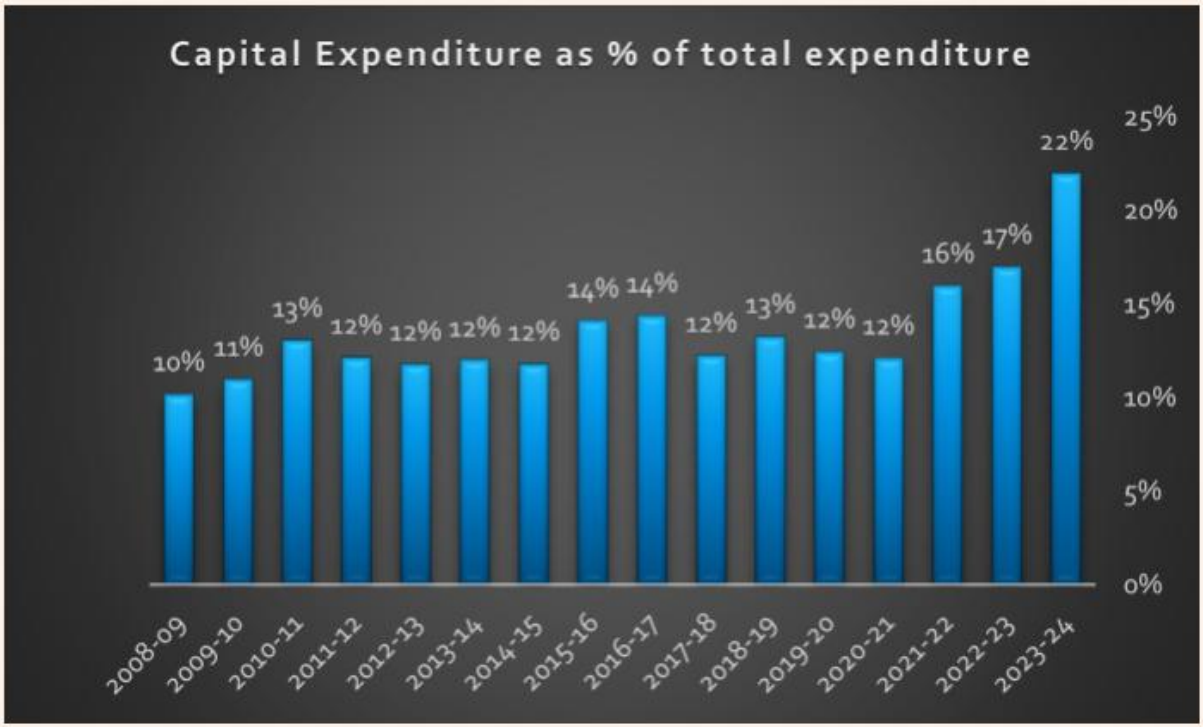

राजकोषीय नीति की विशेषताएँ

राजकोषीय नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित है–

वित्त मंत्रालय की बजट नीति को राजकोषीय नीति के रूप में जाना जाता है।

किसी देश की राजकोषीय नीति उसकी आर्थिक नीति की सहयोगी होती है और उसे पूर्व के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए प्रशासित किया जाता है।

कर खर्च, उधार और ब्याज सभी प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

यह आमतौर पर देश में रोजगार, आय, मूल्य निर्धारण या उत्पादन में सुधार की आशा से किया जाता है।

राजकोषीय नीति हस्तक्षेप के दौरान, सरकार स्वंय कदम उठाती है।

> जब सरकार का खर्च, कर, ऋण और बजट निर्माण सभी एक ही लक्ष्य – पूर्ण उपभोग, आर्थिक स्थिरता और त्वरित आर्थिक पूर्ण रोजगार – की ओर निर्देशित होते हैं, तो इसे राजकोषीय नीति के रूप में जाना जाता है। दूसरे शब्दों में, राजकोषीय नीति इस बात से चिंतित है कि पैसा कैसे सरकार से लोगों तक और फिर वापस दोनों तरफ जाता है।

निष्कर्ष

राजकोषीय नीति सरकारी व्यय और करों का एक मूलभूत घटक है, जो विशेष रूप से मैक्रोइकॉनॉमिक्स के दायरे में रहते हुए व्यापक आर्थिक परिदृश्य पर प्रभाव डालने के साधन के रूप में कार्य करती है, राजकोषीय नीति के लक्ष्यों में पूर्ण रोजगार की प्राप्ति, आर्थिक विकास को बढ़ावा देना और सरकारी अधिकारियों द्वारा कार्यान्वित उचित उपायों के माध्यम से मुद्रास्फीति के दबाव का प्रबंधन शामिल है। आर्थिक प्रबंधन के संदर्भ में, राजकोषीय नीति उपकरण, अर्थात् कर और व्यय, व्यय के लिए वित्तीय संसाधनों के प्रावधान और कुल आर्थिक विकास के प्रक्षेप पथ को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परिणामस्वरूप, सरकारों के पास मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों दोनों के कार्यान्वयन के माध्यम से अपनी अर्थव्यवस्थाओं के प्रदर्शन को प्रभावित करने की क्षमता होती है।

बोधात्मक प्रश्न–

1. राजकोषीय नीति का अर्थ एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

   .....

   .....

2. राजकोषीय नीति के घटक बताइए।

   .....

   .....

3. राजकोषीय नीति के महत्व को बताएं।

   .....

   .....

अभ्यासार्थ प्रश्न–

1. राजकोषीय नीति क्या है?
2. राजकोषीय नीति के प्रकार बताइए।
3. राजकोषीय नीति के उद्देश्य बताइए।
4. राजकोषीय नीति एवं मौद्रिक नीति में सम्बन्ध बताइए।
5. विकासशील अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति का उद्देश्य बताइए।
6. भारत में राजकोषीय नीति के औचित्य की विवेचना कीजिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ. बलराज सराफ, राजकोषीय नीति और उसके महत्व पर एक अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस इन्वेंशन (आईजेएचएसएसआई), खंड 8 अंक 01 क्रमांक, द्वितीय, जनवरी 2019, पीपी. 88–90
- बेन बाउजियन, एम., चिबी, ए., और शोकोरी, एस.एम. (2017), अल्जीरिया में राजकोषीय नीति के झटके के व्यापक आर्थिक प्रभाव: एक व्यावहारिक अध्ययन, शोध पत्र, अर्थशास्त्र संकाय, अबी बक्र बल गेद विश्वविद्यालय, तल्मसन, अल्जीरिया।
- कब्बोर, एन.ए. (2018), आर्थिक विकास पर राजकोषीय नीति की भूमिका: एक मॉडल के रूप में अल्जीरिया, एम.ए. शोध प्रबंध. अर्थशास्त्र संकाय, फराहत अब्बास विश्वविद्यालय, अल्जीरिया
- ओक्रान, एम.के. (2017), दक्षिण अफ्रीका में राजकोषीय नीति और आर्थिक विकास, जर्नल ऑफ इकोनॉमिक स्टडीज, 38(5), 604–618
- खलोट, एफ. (2014), वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय विकास के तहत विकासशील देशों में आर्थिक स्थिरता और विकास प्राप्त करने में राजकोषीय नीति की भूमिका, एम.ए शोध प्रबंध, विधि एवं अर्थशास्त्र संकाय। बस्करा: मोहम्मद खेदर
- लार्च, एम. और जे. नोगीरा मार्टिंस (2009), यूरोपीय संघ में राजकोषीय नीति निर्माण: वर्तमान अभ्यास और चुनौतियों का आकलन, रूटलेज
- हैनसेन, बेंट (2003), राजकोषीय नीति का आर्थिक सिद्धांत, खंड -3 रूटलेज
- घोष, ए.आर., किम, जे.आई., मेंडोजा, ई.जी., ओस्ट्री, जे.डी., और कुरेशी, एम.एस. (2013), उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में राजकोषीय थकान, राजकोषीय गुंजाइश और ऋण स्थिरता, द इकोनॉमिक जर्नल, 123(566), एफ4–एफ30
- हेनीमैन, एफ., मोएसिंगर, एम.–डी., येटर, एम. (2018), क्या राजकोषीय नियम राजकोषीय नीति को बाधित करते हैं? एक मेटा–रिग्रेशन–विश्लेषण, ईयूआर, जे. पोलित. इकोन. 51,69 –92

- कोपिट्स, एम.जी., सिमांस्की, एम.एस.ए. (1998), राजकोषीय नीति नियम. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष।

- https://jncollegeonline-co-in/attendence/classnotes/files/1627067195-pdf

- स्टुपक, जे.एम. (2019), राजकोषीय नीति, आर्थिक प्रभाव. कांग्रेसनल रिसर्च सर्विस, रिपोर्ट, 1–11

- पडोअन, पी.सी. (2009), संकट में राजकोषीय नीति: प्रभाव, स्थिरता, और दीर्घकालिक निहितार्थ, एडीबीआई वर्किंग पेपर श्रृंखला, संख्या 178 दिसंबर 2009

इकाई 06

आंतरिक एवं वाह्य संतुलन, IS-LM-FE मॉडल

इकाई की रुपरेखा–

6.1 भूमिका

6.2 आंतरिक एवं वाह्य संतुलन मॉडल

6.3 आलोचना

6.4 LS-LM-FE **मॉडल**

6.5 आलोचना

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

आन्तरिक एवं वाह्य संतुलन

आन्तरिक एवं वाह्य संतुलन के अन्तर्गत सरकारों द्वारा भुगतान समायोजन अथवा संतुलन के तरीको का विश्लेषण करते है। इसके अन्तर्गत निम्नवत् संतुलन शामिल है।

(A) कीमत स्थिरता तथा पूर्ण रोजगार के साथ आन्तरिक संतुलन।

(B) विदेशी विनिमय दर के साथ भुगतान संतुलन।

मीड ने अपनी पुस्तक'Balance of Payment' में आन्तरिक एवं वाह्य संतुलन के दो उपयों की व्याख्या की प्रथम व्यय परिवर्तनकारी तथा व्यय बदलावकारी नीतियाँ। इसके माध्यम से कोई सरकार कुल व्यय तथा विनिमय दर नियंत्रण कर आन्तरिक व वाह्य संतुलन का प्रयास करता है।

व्यय परिवर्तनकारी मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति

इसके अन्तर्गत कोई सरकार मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति के माध्यम से समग्र व्यय में उपयुक्त परिवर्तन कर भुगतान शेष असंतुलन को दूर करने का प्रयास करती है। इसके

लिए LS-LM-BP तकनीक का प्रयोग करते है जहाँIS वक्र राजकोषीय नीति,LM वक्र मौद्रिक नीति तथा BP वक्र भुगतान शेष नीति को अभिव्यक्त करता है। भुगतान शेष BP वक्र की विदेशी विनिमय EF वक्र होता है। भुगतान शेषवक्रBP ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय के उन संयोगों को अभिव्यक्त करता है, जिस पर भुगतान शेष संतुलन पैदा होता है। राष्ट्रीय आय में कमी, आयातों में कमी लायेगी जिससे चालू घाटे के भुगतान शेष में कमी आयेगी वही ब्याज दर में कमी, विदेशी पूंजी के वर्हिगमन को प्रेरित करेगी जिससे पूंजी खाता में कमी आयेगी और विलोमशः भी।

व्यय परितर्वनकारी मौद्रिक नीति

सरकार द्वारा अपनायी गयी संकुचित मुद्रा नीति ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय को प्रभावित करते है। जो अन्ततः विनिमय दर तथा भुगतान शेष को प्रभावित करत है। एक संकुचन कारी मौद्रिक नीति जहाँ भुगतान शेष में अतिरेक उत्पन्न करती है वही विस्तारक मौद्रिक नीति भुगतान शेष में घाटा लाती है।

मान्यताएँ Assumblion

- ❖ सरकार व्यय स्थिर है अर्थात् वक्र अपरिवर्तित होते है।
- ❖ पूंजी पूर्णतः गतिशील है।
- ❖ विनिमय दर स्थिर है।

व्यय घटाने वाली मौद्रिक नीति

माना किसी देश के भुगतान शेष में घाटा है जिसे कम करने के लिए संकुचन अथवा व्यय कमी नीति को अपनाया जाता है। संकुचनकारी मौद्रिक नीति, मुद्रा पूर्ति में कमी तथा ब्याज दरों को बढ़ाती है जिससे राष्ट्रीय उत्पादन तथा समग्र मांग में कमी आती है जो कुल आयातों को कम करता है। इसके अलावा ब्याज दर में वृद्धि घरेलू देश में पूंजी अन्तर्वाह को बढ़ाता है जिससे पूंजी खाता अधिशेष बढ़ता है जो भुगतान शेष संतुलन को कम करता है।

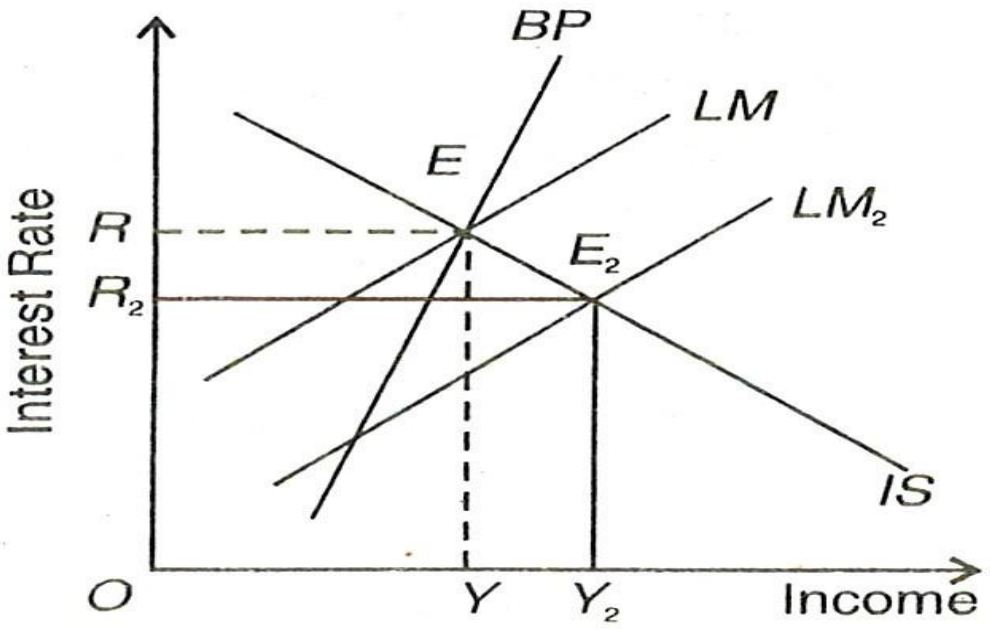

चित्र–1 में प्रारम्भ में अर्थव्यवस्था RO ब्याज दर तथा % आय पर संतुलन में है जिस पर IS-LM-BP वक्र एक दूसरे को प्रतिच्छेदित करते है। यदि सरकार मुद्रा पूर्ति में कमी लाती है जिससे LMवक्र विवर्तित होकर LM_1हो जाता है तथा ब्याज दरRO_1 आय आय OY_1निर्धारित होता है। ऊँची ब्याज दर जहाँ एक ओर अर्थव्यवस्था में पूंजी अन्तर्वाह को बढ़ाएगा वही आय में कमी आयातों में कमी लायेगा जिससे अर्थव्यवस्था में भुगतान शेष में अतिरेक उत्पन्न होगा। ज्ञातव्य हो किE_1 अर्थव्यवस्था का स्थायी संतुलन बिन्दु नहीं है क्योंकि भुगतान शेष अतिरेक अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति बढ़ाएगा जिससे LM_1वक्र पुनः LM पर पहुच जाएगा तथा अर्थव्यवस्था पुनःEO पर आ जाएगा।

बढ़ाने वाली मौद्रिक नीति

विस्तारवादी मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था में ब्याज दर में कमी लायेगा जिससे निवेश व राष्ट्रीय आय में वृद्धि आयेगा। राष्ट्रीय आय में वृद्धि एक ओर आयातों को बढ़ाएगा तो दूसरी ओर ब्याज दर में कमी पूंजी पलायन (पूंजी वर्हिगमन) को जिससे भुगतान शेष में घाटा उत्पन्न होगा।

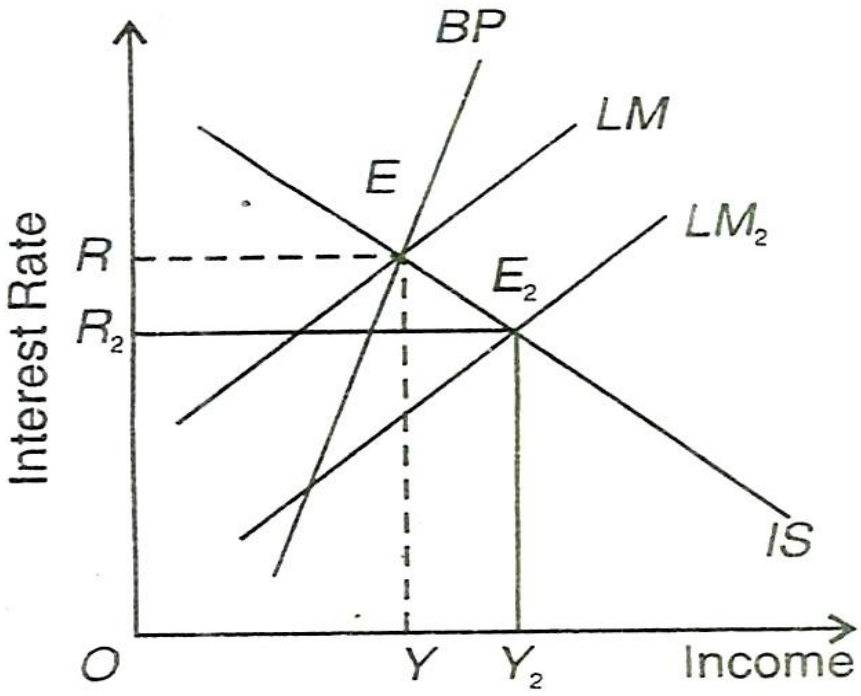

चित्र–2 में बिन्दु EO पर अर्थव्यवस्था संतुलन में है जिस पर IS-LM-BP वक्र एक दूसरे को काटते है। तथा संतुलनकारी आय % तथा ब्याज दरOR निर्धारित होता है। यदि केन्द्रीय बैंक मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि कर देता है तो LMवक्र विवर्तित LM_1होकर पर आ जाता है। जिससे ब्याज दर में कमी OR_1तथा आय में वृद्धि % होती है। आय में वृद्धि आयात में वृद्धि लाता है जबकि ब्याज दर में कमी पूंजी वर्हिवाह को बढ़ता है जिसका परिणाम व्यापार शेष में घाटा के रूप में होता है। इस प्रकार विस्तारवादी मौद्रिक नीति भुगतान शेष में घाटा उत्पन्न करता है। ज्ञातव्य हो किE_2 स्थायी संतुलन बिन्दु नहीं है, भुगतान शेष में घाटा मुद्रा आपूर्ति को कम करेगा जिससेLM_1 वक्र विवर्तित होकर LMहो जायेगा तथा पुनःEo संतुलन बिन्दु हो जायेगा।

व्यय परिवर्तनकारी राजकोषीय नीति

मान्यताएँ

- ❖ विनिमय दर स्थिर है
- ❖ पूंजी में सापेख गतिशीलता है।
- ❖ मौद्रिक नीति अपरिवर्तित है जिससेLM वक्र स्थिर है।

सरकार द्वारा विस्तारक राजकोषीय नीति (सार्वजनिक व्यय में वृद्धि तथा करो में कमी) तथा संकुचनकारी राजकोषीय नीति (करो में वृद्धि) का भुगतान शेष पर प्रभाव का अध्ययन निम्नवत् किया जा सकता है।

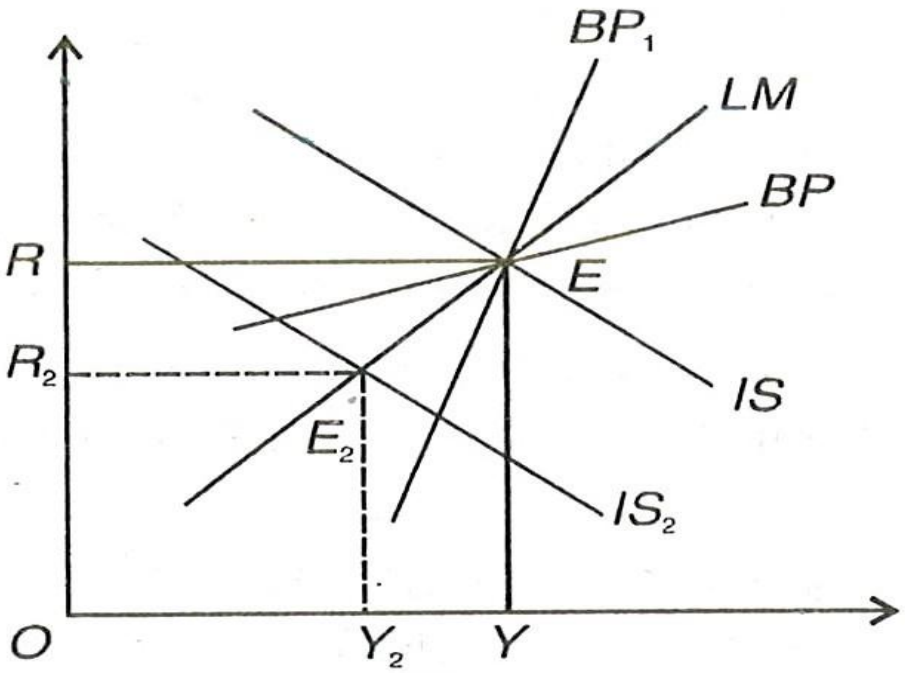

चित्र–3 में प्रारम्भिक संतुलन बिन्दु है जिस पर ब्याज दर तथा आय है। यदि सरकार सार्वजनिक व्यय में कमी अथवा करारोपण में वृद्धि द्वारा संकुचन कारी राजकोषीय नीति अपनाती है तो वक्र विवर्तित हो जाता है। जिससे ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय में कमी आती है। ब्याज दर में कमी पूंजी वर्हिवाह को बढ़ता है। जबकि आय में कमी आयातों में कमी लाता है इन दोनों का भुगतान शेष पर समग्र प्रवाह, की लोच पर निर्भर करता है। यदि लोचदार है तो भुगतान शेष पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

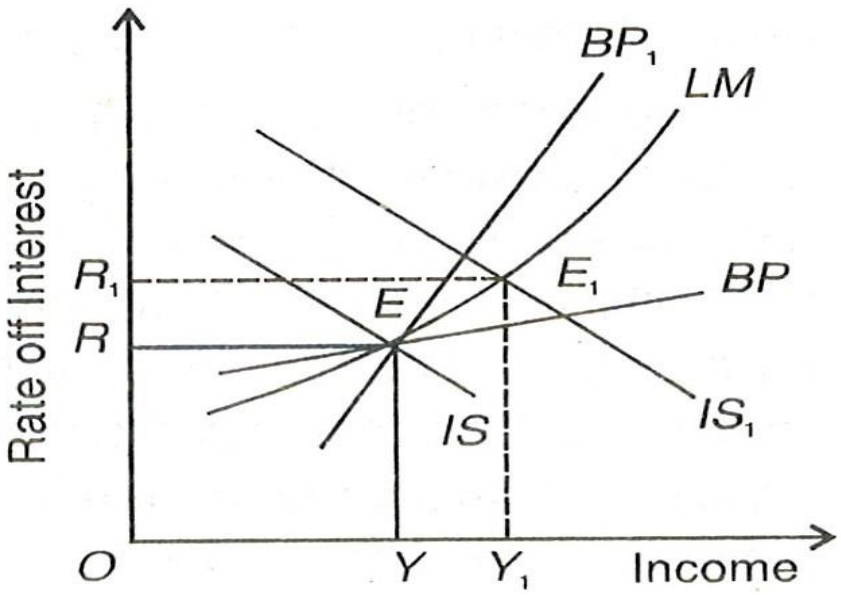

चित्र–4 में विस्तारवादी राजकोषीय नीति IS वक्र का विवर्तित करIS कर देती है। जिससे ब्याज दरOR से OR_1 तथा आय% से % हो जाती है। ब्याज दर में वृद्धि पूंजी अन्तर्वाह को बढ़ता है जो पूंजी खाता पर अतिरेक पैदा करता है जबकि आय में वृद्धि आयातों को बढ़ाता है जो चालू खाते में घाटा को जन्म देता है। दोनों का भुगतान शेष पर समग्र प्रभाव BP की लोच पर निर्भर करता है।

यदि BP लोचदार है तो भुगतान शेष में अतिरेक जबकि कम लोचदार है तो भुगतान शेष में घाटा होगा।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संकुचनकारी राजकोषीय नीति तथा विस्तार वादी राजकोषीय नीति का भुगतान संतुलन पर प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक हो सकता है जो भुगतान शेष की लोच पर निर्भर करता है। भुगतान शेष BP संतुलन के लिए मौद्रिक व राजकोषीय नीति का उपयुक्त मिश्रण अधिक उपयोगी है।

मण्डल–फ्लेमिंग मॉडल

1960 के दशक में मण्डल–फ्लेमिंग ने खुली अर्थव्यवस्था में मौद्रिक व राजकोषीय नीति के प्रभावों के विश्लेषण हेतु मण्डल–फ्लेमिंग मॉडल प्रतिपादित की। इसके अंतर्गत उन्होंने दो उपकरणों ब्याज दर मौद्रिक नीति व सार्वजनिक व्यय राजकोषीय नीति द्वारा दो उद्देश्यों कीमत स्थिरता व पूर्ण रोजगार आंतरिक संतुलन और भुगतान शेष वाह्य संतुलन का विश्लेषण किया। इसे LS-LM-FE मॉडल भी कहा जाता है।

मान्यताएँ

- ❖ मौद्रिक नीति तथा ब्याज दर में सह–सम्बन्ध पाया जाता है।
- ❖ आयात व आय के मध्य धनात्मक सह सम्बन्ध पाया जाता है।
- ❖ अंतर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाह, घरेलू ब्याज दर से प्रभावित होती है।
- ❖ निर्यात वाह्य तौर से दिए है।

(i) पूंजी गतिशीलता के साथ स्थिर विनिमय दर

खण्ड 5

कल्याणवादी अर्थशास्त्र

इकाई 01

सामाजिक कल्याण के मानक राष्ट्रीय आय में वृद्धि, बेंथम मानक

1.1 भूमिका

1.2 सामाजिक कल्याण फलन

प्रारम्भिक अर्थशास्त्रियों जैसे एड्म स्मिथ, मार्शल इत्यादि ने अर्थशास्त्र को मुद्रा अथवा धन के विज्ञान तक सीमित रखा। इसके अन्तर्गत अर्थशास्त्र को केवल उत्पादन, उपभोग व राष्ट्रीय सम्पदा सृजन के अध्ययन तक सीमित रखा गया। प्रो0 पीगू प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने अर्थशास्त्र को समाजिक कल्याण से सम्बद्ध किया जिसके कारण उन्हें कल्याणकारी अर्थशास्त्र का पिता कहा गया।

कल्याण एक मनोवैज्ञानिक व मानसिक संतुष्टि है जो अमूर्त होती है। प्रो0 पीगू व्यक्तिगत कल्याण को व्यक्ति द्वारा की गयी सभी संतुष्टियों का योग बताया तथा सामाजिक कल्याण को सभी व्यक्तियाँ के व्यक्तिगत कल्याणों का जोड़ बतायां कल्याण को दो भागों में बॉटकर विश्लेषण करते है– आर्थिक कल्याण तथा गैर आर्थिक कल्याण (आर्थिकेत्तर कल्याण)। आर्थिक कल्याण, मानवीय कल्याण का वह हिस्सा हिस्सा है जिसे प्रत्यय अथवा परोक्ष रूप में मुद्रा में मापा जा सकता है जबकि गैर आर्थिक कल्याण वह है जिसे मुद्रा में मापना सम्भव नहीं है। प्रो0 पीगू का मुख्य उद्देश्य आर्थिक कल्याण का विश्लेषण करना था। आर्थिक कल्याण, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वस्तुओं तथा सेवाओं के उपभोग व उत्पादन मात्रा व प्रक्रिया पर निर्भर करता है। इस प्रकार यह राष्ट्रीय आय पर निर्भर करता है।

आर्थिक कल्याण न केवल आय पर निर्भर करता है बल्कि आय अर्जन तथा व्यय की प्रक्रिया पर भी निर्भर करता है जैसे काम के घंटे को बढ़ाकर आय स्तर को बढ़ाया जा

सकता है। जिससे आर्थिक कल्याण का स्तर बढ़ेगा किन्तु आराम के घंटो में कभी, आर्थिक कल्याण में कमी लायेगा। इसी प्रकार व्यय करने की प्रक्रिया भी आर्थिक कल्याण को प्रभावित करती है जैसे– शिक्षा, स्वास्थ आदि पर व्यय दीर्घकाल में कल्याण को बढ़ाएगा जबकि मादक व्यसनों पर व्यय आर्थिक कल्याण में कमी लायेगा।

आर्थिक कल्याण व राष्ट्रीय आय में सम्बन्ध

राष्ट्रीय आय किसी वित्तीय वर्ष में घरेलू अर्थव्यवस्था में उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का मौद्रिक मूल्य होता है जिसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय भी शामिल होती है। पीगू के अनुसार राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण दोनों मुद्रा में मापनीय है जिससे दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि अंततः वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा में वृद्धि लाता है। राष्ट्रीय आय का आर्थिक कल्याण पर दो प्रकार से प्रभाव पड़ता है प्रथम– राष्ट्रीय आय के आकार में परिवर्तन तथा दूसरा राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन।

राष्ट्रीय आय में परिवर्तन, राष्ट्रीय आय में होने वाला धनात्मक परिवर्तन वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा तथा उपभोग स्तर को बढ़ता है जिससे आर्थिक कल्याण बढ़ता है और विलोमशः भी। किन्तु यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि केवल मौद्रिक परिवर्तन (कीमत वृद्धि) के कारण हो तो आर्थिक कल्याण में कमी आती है।

राष्ट्रीय आय में वृद्धि की प्रक्रिया, यदि राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि श्रमिको के शोषण व पर्यावरणीय विनाश पर आधारित हो तो इससे आर्थिक कल्याण बढ़ने के बजाए कम हो जाता है।

जनसंख्या वृद्धि, यदि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि, राष्ट्रीय आय की वृद्धि से ज्यादा हो तो प्रतिव्यक्ति आय कम हो जाती है जो आर्थिक कल्याण में कमी लायेगा। किन्तु इससे अंतिम निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि अथवा कमी, आर्थिक कल्याण में वृद्धि अथवा कमी लायेगा।

राष्ट्रीय आय का वितरण

यदि राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि कुछ व्यक्तियों अथवा क्षेत्रों तक सीमित हो अर्थात् आय का असमान वितरण हो तो इससे आर्थिक कल्याण (समाजिक कल्याण) नकारात्मक

रूप से प्रभावित होते है। इसके विपरित यदि राष्ट्रीय का हस्तांतरण उच्च आय क्षेत्र से निम्न आय क्षेत्र की ओर होता है तो आर्थिक कल्याण बढ़ता है।

व्यय करने की प्रक्रिया, आर्थिक कल्याण केवल आय अर्जन की प्रक्रिया पर ही निर्भर नहीं करता है बल्कि व्यय की प्रक्रिया पर भी। निर्भर यदि लोग करता है। अपनी आय को वस्तुओं व सेवाओं, शिक्षा, स्वास्थ इत्यादि पर व्यय करते है तो अल्पकाल व दीर्घकाल में आर्थिक कल्याण बढ़ता है इसके विपरीत मादक पदार्थों व विलासिता पूर्ण उत्पादों पर व्यय आर्थिक कल्याण में कमी लायेगा।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय GNP आर्थिक कल्याण का संतोषजनक उत्तर देने में असफल है। ज्ञातव्य हो कि राष्ट्रीय आय का संतुचित धारणा है जिसमें अनेक ऐसे चर शामिल नही है जो आर्थिक कल्याण को प्रभावित करते है जैसे–

विश्राम, यह आर्थिक कल्याण को प्रभावित करने वाला प्रमुख चर है यदि विश्राम अवधि कम हो तो राष्ट्रीय आय में वृद्धि के वावजूद, आर्थिक कल्याण में कमी आती है।

पर्यावरणीय लागत, आर्थिक क्रियाओं से उत्पन्न सकारात्मक व नकारात्मक पर्यावरणीय वाह्यताएँ राष्ट्रीय आय में शामिल नही होती जो आर्थिक कल्याण को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है जैसे किसी फैक्ट्री से निसृत अपशिष्ट वायु व जल प्रदूषण को बढ़ाता है जिससे लोगों का कल्याण कम होता है।

जीवन की गुणवत्ता, यदि लोगों का जीवन तनाव भरा हो, समाज में अपराध, पर्यावरण प्रदूषण आदि की समस्या हो तो राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ने के बावजूद आर्थिक कल्याण में कमी आती है।

गैर बाजार लेन–देन गृहणी की सेवाएँ, धार्मिक उत्सव, बच्चों के देखभाल आदि राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं होते है किन्तु आर्थिक कल्याण को व्यापक रूप से प्रभावित करते है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आर्थिक कल्याण अनेक आर्थिक व गैर आर्थिक चरो पर निर्भर करता है अतः आर्थिक कल्याण की माप हेतु GNP दृष्टिकोण एक संकुचित अवधारणा है।

शब्दावली

वाह्यता

किसी व्यक्ति के उत्पादन अथवा उपभोग का अन्य व्यक्तियों पर पड़ने वाले सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रभाव, वाह्यता कहलाता है ज्ञातव्य हो कि वाह्यता उत्पादन लागत अथवा कीमत में शामिल नहीं होती है। जैसे– किसी फैक्ट्री से निसृत प्रदूषण द्वारा जल व वायु प्रदूषण, लोगों के लिए नकारात्म्क वाह्यता पैदा करता है।

प्रतिव्यक्ति आय

कुल राष्ट्रीय आय तथा, कुल जनसंख्या का अनुपात

प्रति व्यक्ति आय कहलाता है अर्थात्

प्रति व्यक्ति आय $\mathrm{PCL} = \frac{\mathrm{GNP}}{}$

मुद्रा

वह वित्तीय प्रतिभूति जिसे लोग लेन–देन हेतु सामान्यतः स्वीकार करते है, मुद्रा कहलाता है। मुद्रा सर्वाधिक तरल परिसम्पत्ति है।

इकाई 2

परेटो अनुकूलतम

2.1 भूमिका

2.2 परेटो अनुकूलतम की परिभाषा

विलाफ्रेडो परेटो प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने उपयोगिता के क्रमवाचक माप पर आधारित अनधिमान वक्र का प्रयोग कर कल्याणकारी अर्थशास्त्र का विश्लेषण किया। परेटो मानते है कि पूर्ण प्रतियोगिताा बाजार में ही अनुकूलतम सामाजिक कल्याण सम्भव है।

परेटो सामाजिक अनुकूलतम वह स्थिति है, जिसके अन्तर्गत साधनों का पुरावंटन द्वारा बिना किसी को हीनतर बनाए किसी अन्य को श्रेष्ठतर बनाना सम्भव न हो।' अर्थात् अनुकूलतम सामाजिक कल्याण की दशा में अन्य की उपयोगिता स्थिर रखते हुए किसी व्यक्ति को श्रेष्ठतर नही बनाया जा सकता है। इस प्रकार परेटो मानते है साधनों का ऐसा पुनर्वितरण जो किसी को हीनतर बनाए बिना अन्य को श्रेष्ठतर बनाता है, सुधार कहलाता है।

मान्यताएँ

- उपयोगिता का क्रम वाचक माप सम्भव है।
- उपभोक्ता विवेकशील है तथा अपने उपभोग को अधिकतम करना चाहता है।
- सभी वस्तुएँ तथा साधन पूर्णतः विभाज्य है।
- पूर्ण प्रतियोगिता तथा वस्तुओं व साधनों की पूर्ण गतिशीलता।
- उत्पादक दी गयी लागत पर उत्पादन अधिकतम करना चाहता है।

उपर्युक्त मान्यताओं को लेते हुए परेटो ने अनुकूलतम कल्याण की तीन दशाओं की व्याख्या की।

(1) उपभोग का परेटो अनुकूलतम अथवा वितरण का अनुकूलतम

परेटो के अनुसार उपभोग का परेटो अनुकूलतम उस बिन्दु पर होगा जिसमें किसी व्यक्ति के उपभोग संतुष्टि को कम किए बिना अन्य व्यक्ति के उपभोग संतुष्टि को बढ़ाया न जा सके। अर्थात् आवश्यक है कि एक व्यक्ति के संतुष्टि स्तर को बढ़ाया जाए तो अन्य व्यक्ति का संतुष्टि कम हो जिससे कल्याण का स्तर यथावत् रहे। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए वस्तु प्रतिस्थापन की सीमांत दर MRSxyसमान होना चाहिए। अर्थात्

$[MRSxy]_A = [MRSxy]_B$

जहाँ A तथा B दो व्यक्ति है X तथा Y दो वस्तु है।

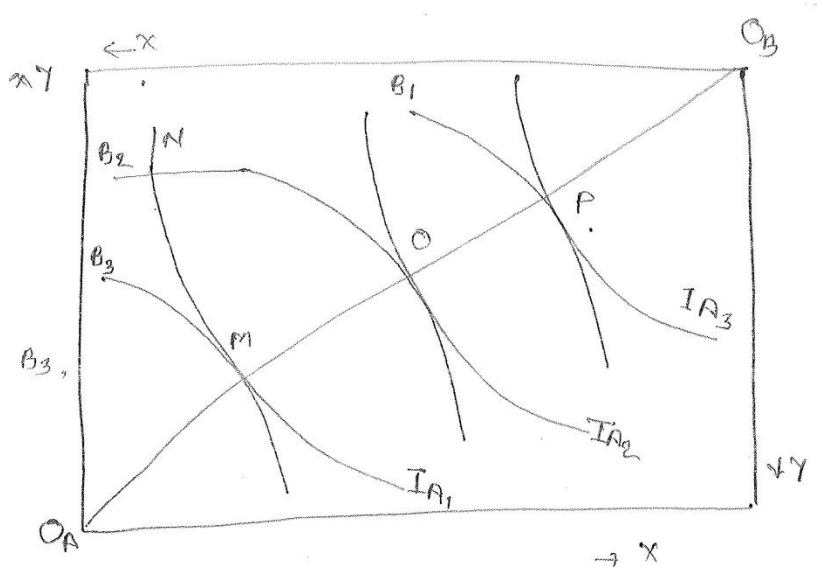

चित्र–1 में एजवर्थ वाउले वाक्स माध्यम से दो व्यक्तियों A तथा B व दो व्यक्तियों X तथा Y के में उपयोग का परेटो अनुकूलतम दर्शाया गया है। $L_{A1,}$ I_{A2}वाI_{A3} क्रमशः Aव्यक्ति के लिए जबकिB_1 B_2व B_3व्यक्ति Bके लिए अनधिमान वक्र है। दोनों अनधिमान वक्र M, O बिन्दुP तथा पर स्पर्श करती है जिनको मिलाकरO_A O_B प्रसंविदा वक्र रेखा खीची गयी जिसके प्रत्येक बिन्दु पर परेटो अनुकूलतम होगा।

क्योंकि इसके प्रत्येक बिन्दु पर$[MRS_{XY}]_A = [MRS_{XY}]_B$ है।

उत्पादन में परेटो अनुकूलतम

परेटो के अनुसार उत्पादन का परेटो अनुकूलतम उस स्थिति में होगा जबकि किसी विशेष वस्तु का उत्पादन करने वाली किन्ही दो फर्मों के लिए साधनों की तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमांत दरMRT_{SLK} बराबर हो अर्थात्–

$[MRTS_{LK}]_A = [MRTS_{LK}]_Y$

जहाँ L व K दो साधन क्रमशः श्रम व पूंजी है तथाX तथाY दो वस्तुएँ

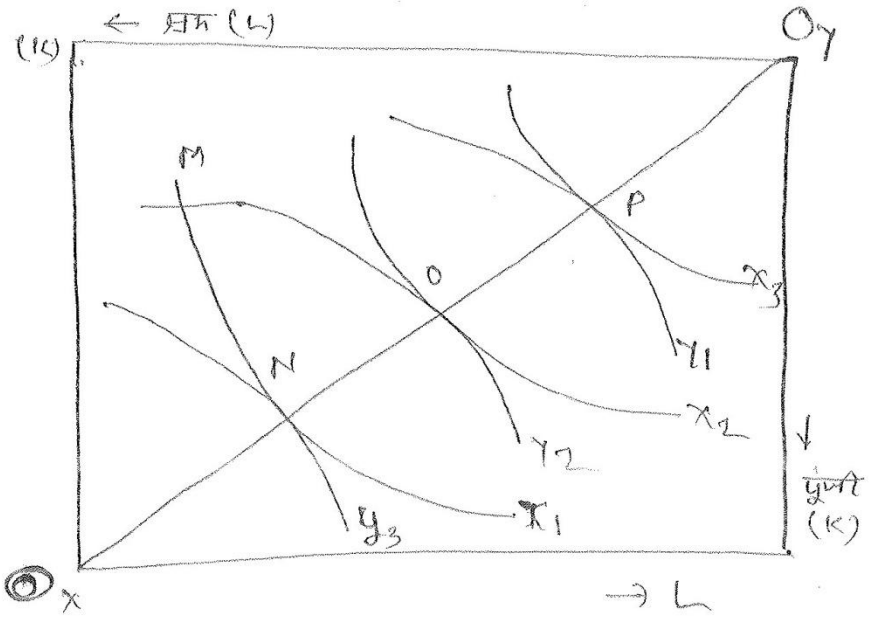

चित्र–2 में X के लिए समोत्पाद वक्र X_1, X_2तथाX_3 है जबकि Yके लिए Y_1Y_2तथाY_3 है। दोनों समोत्पाद वक्र एक दूसरे को N, O तथाP बिन्दु पर स्पर्श करती है जिन्हे मिलाकरO_XO_Y रेखा खीची गयी है जिसे प्रसंविदा वक्र कहते हे। प्रसंविदा वक्र का प्रत्येक बिन्दु परेटो अनुकूलतम बिन्दु है क्योंकि इसके प्रत्येक बिन्दु $[MRTS_{LK}]_X = [MRTS_{LK}]_Y$पर है।

आवण्टन अनुकूलतम

परेटो आवण्टन कुशलता वह स्थिति हहै जिस पर विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में पूंजी एवं श्रम का कुशल आवण्टन करते हुए उत्पादित पदार्थ की आपूर्ति ठीक उसके योग के बराबर हो। यह स्थिति तभी प्राप्त होगी वस्तुओं के रूपांतरण की दर $[MRTS_{XY}]$, उपभोक्ता के लिए वस्तुओं की प्रतिरथापन की सीमांत $[MRTS_{XY}]$ दर बराबर हो। अर्थात्

$MRPT_{XY} = MRS_{XY}$

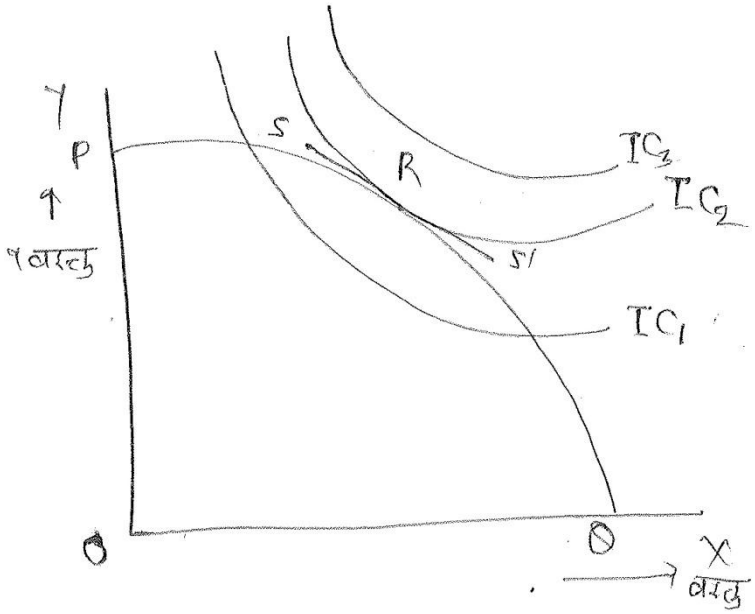

चित्र–3 में आवण्टन का परेटो अनुकूलतम दर्शाया गया है। PQ, दो वस्तुओं X तथा Y के लिए उत्पादन सम्भावना वक्र अथवा रूपांतरण वक्र है जबकि C1,व समाज के लिए अनधिमान वक्र है। बिन्दु अनुकूलतम आवण्टन बिन्दु है जिस पर दो वस्तुओं के लिए पदार्थ रूपांतरण दर तथा उपभोग के लिए प्रतिस्थापन की सीमांत दर समान है।

आलोचना

- यह अद्वितीय परेटो अनुकूलतम बिन्दु निर्धारण में असफल है क्योंकि प्रसंविदा वक्र का प्रत्येक बिन्दु परेटो अनुकूलतम होता है।
- पूर्ण प्रतियोगिता, वस्तुओं व साधनों की पूर्ण विभाज्यता की अव्यवहारिक मान्यता।
- परेटो अनुकूलम उन व्यवहारों की व्याख्या करने में असफल है जिसमें किसी व्यक्ति को हीन बनाकर अन्य को श्रेष्ठतर बनाया जाता है अतः इसकी व्यवहारिकता सीमित है।

शब्दावली

पूर्ण प्रतियोगिता, वह बाजार स्थिति जिसमें क्रेताओं व विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है तथा कोई एक क्रेता अथवा कोई एक विक्रेता बाजार शक्तियों (मांग व पूर्ति) को प्रभावित करने में असफल होता है।

उत्पादन सम्भावना वक्र, दिए गए साधनों के संयोग से अधिकतम सम्भव उत्पादन को दर्शाने वाला वक्र, उत्पादक सम्भावना वक्र कहलाता है।

अनधिमान वक्र, दो अथवा दो से अधिक वस्तुओं के उन संयोगों को दर्शाने वाला वक्र जिसके प्रत्येक बिन्दु पर किसी उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।

इकाई 03

काल्डार–हिक्स 'प्रतिपूरक प्रतिमान'

इकाई की रुपरेखा–

3.1 भूमिका

3.2 प्रतिपूरक प्रतिमान

3.3 आलोचना

कॉल्डोर–हिक्स क्षतिपूरक अवधारणा

अधिकतम सामाजिक कल्याण के संदर्भ में परेटो अनुकूलतम की अवधारणा की उपादेयता सीमित है, क्योंकि यह उन नीतिगत निर्णयों की व्याख्या करने में असफल है जिसमें साधनों के पुनर्वितरण द्वारा कुछ को हीनतर बनाकर अन्य व्यक्तियों को पहले से श्रेष्ठतर बनाया जाता है। परेटो की इन कमियों को दूर करते हुए हिक्स–कॉल्डोर ने कल्याण का क्षतिपूरक अथवा प्रतिपूरक मापदण्ड प्रस्तुत किया।

कल्याण के क्षतिपूरक मापदण्ड के अनुसार कोई नीतिगत परिवर्तन जिसमें साधनों पुनरावण्टन द्वारा कुछ व्यक्तियों को पहले से हीनतर बनाकर अन्य को श्रेष्ठकर बनाया जाता है तो कुल सामाजिक कल्याण में वृद्धि लायेगा यदि वे जो लाभान्वित हुए है उनकी क्षतिपूर्ति कर दे जिनको हानि हुई है तथा फिर भी कुछ शेष बचे।

मान्यताएँ

- व्यक्ति के लिए उपभोग की रूचियाँ स्थिर है।
- कल्याण की अंतर–वैक्तिक तुलना सम्भव नहीं है।
- एक व्यक्ति का कल्याण अन्य व्यक्तियों के कल्याण से स्वतंत्र है।
- सामाजिक कल्याण का स्तर केवल उत्पादन स्तर पर निर्भर है।

कॉल्डोर प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने क्षतिपूरक भुगतान पर आधारित सामाजिक कल्याण के माप का मापदण्ड प्रस्तुत किया। कॉल्डोर के अनुसार ''एक परिवर्तन सुधार होता है

यदि वे जो लाभान्वित होते है, क्षतिग्रस्त व्यक्तियों द्वारा उनकी हानियों के निर्धारित मूल्य की अपेक्षा लाभों को ऊँचे मूल्य पर मूल्यांकित करे।'' अन्य शब्दों में यदि किसी निषचित परिवर्तन द्वारा समाज के कुछ व्यक्तियों को हानि तथा कुछ व्यक्तियों को लाभ होता है तो यह सामाजिक कल्याण में वृद्धि लायेगा यदि लाभान्वित व्यक्ति अपने लाभों को, हानि सहने वाले व्यक्तियों की तुलना में अधिक मूल्य प्रदान करता है।

प्रो0 हिक्स ने भी कॉल्डोर के क्षतिपूरक मापदण्ड का समर्थन किया तथा इसे अन्य शब्दों में व्यक्त किया। हिक्स के अनुसार यदि किसी नीतिगत परिवर्तन द्वारा A को इतना श्रेष्ठतर बना दिया जाए कि वह B की हानि की क्षतिपूर्ति कर सके तथा फिर भी उसके पास कुछ अतरिक्त शेष बचा रहे तो यह पुर्नावस्था स्पष्ट रूप से कल्याण में सुधार होगा।' अन्य शब्दों में किसी नीतिगत परिवर्तन से जिन व्यक्तियों को लाभ होता है, वे हानि उठाने वाले व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति करने के बाद भी पहले की अपेक्षा श्रेष्ठ स्तर पर हो, सामाजिक कल्याण को बढ़ायेगा।

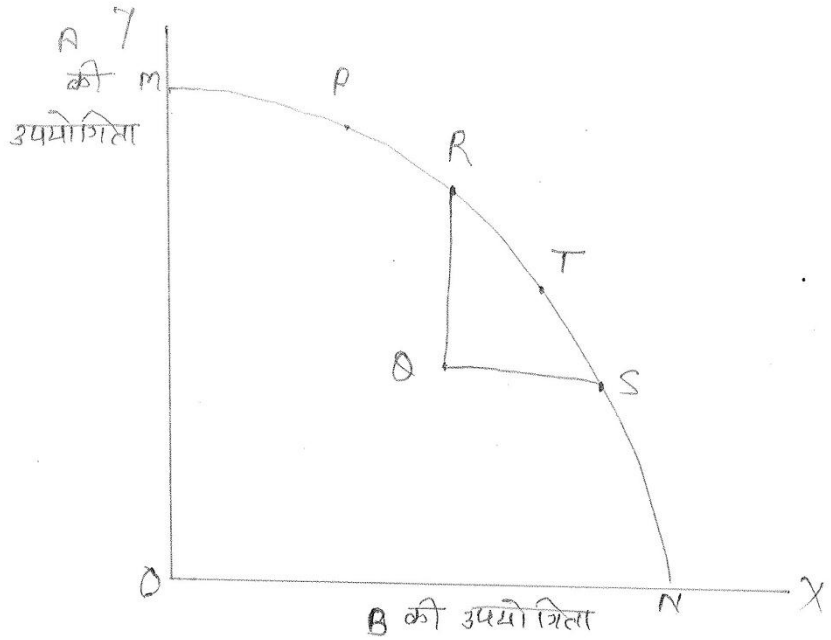

चित्र–1 में M.N दो व्यक्तियों A तथा के B लिए उपयोगिता सम्भावना वक्र है। माना दोनों व्यक्ति प्रारम्भ Q में बिन्दु पर संतुलन में है। Q से S पर चलन, B व्यक्ति की उपयोगिता को बढ़ाती है जबकि A की स्थिर है Q जबकि से की ओर प्रति को श्रेष्ठतर बनाता है जबकि B को अपरिवर्त्रित रखता है। यदि किसी नीतिगत परिवर्तन से दोनों बिन्दु पर P पहुच जाते है जिसमें A की उपयोगिता बढ़ जाती है जबकि B की उपयोगिता में कमी आती है।

यदि दोनों व्यक्ति आय पुनर्वितरण द्वारा (A व्यक्ति द्वारा B की क्षतिपूर्ति किया जाता है) बिन्दु R पर पहुच जाए तो Aव्यक्ति, क्षतिपूर्ति करने के बाद भी श्रेष्ठतर स्थिति में है जो सामाजिक कल्याण में वृद्धि को प्रदर्शित करता है।

काल्डार के अनुसार यदि किसी नीतिगत परिवर्तन द्वारा उपयोगिता सम्भावना वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है यह एक सुधार होगा जो सामाजिक कल्याण में वृद्धि लायेगा। इसे निम्नवत् चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

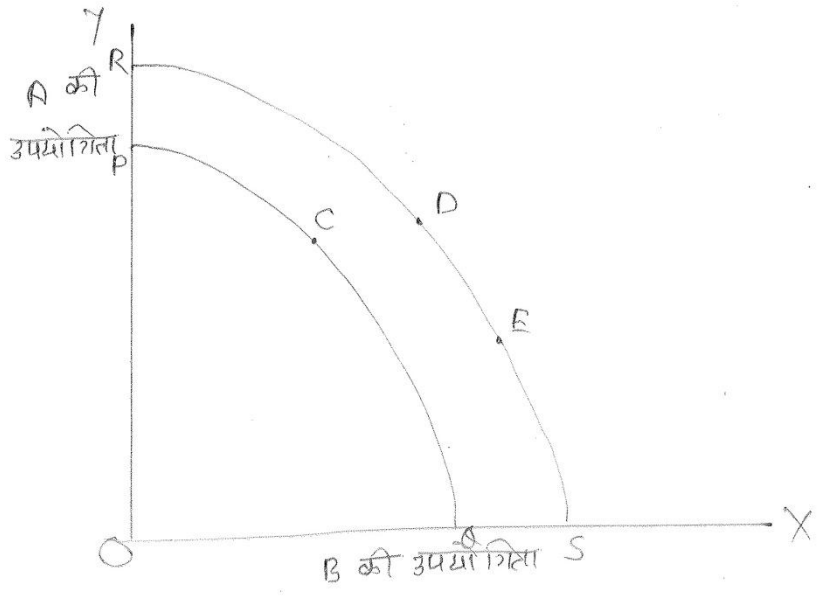

चित्र–2 में प्रारम्भिक उपयोगिता सम्भावना वक्रPQ है जिसके बिन्दुC पर दोनों व्यक्ति संतुलन में है। यदि किसी व्यक्ति संतुलन में है। यदि किसी नीतिगत परिवर्तन द्वारा उत्पादन सम्भावना वक्र ऊपर की ओर विवर्तित होकर हो जाता है जिसके बिन्दु पर दोनों व्यक्ति संतुलन में है। बिन्दु पर बिन्दु की तुलना में की उपयोगिता में कमी जबकि की उपयोगिता में वृद्धि लाती है। यदि दोनों व्यक्ति आय पुनर्वितरण द्वारा (द्वारा की हानि क्षतिपूर्ति करके) बिन्दु पर पहुच जाते है तो की क्षतिपूर्ति के बावजूद श्रेष्ठतर स्थिति में पहुच जाता है इसप्रकार बिन्दु निश्चित ही बिन्दु से श्रेष्ठ है।

आलोचना

- अव्यवहारिक मान्यता जैसे किसी व्यक्ति की उपयोगिता, अन्य व्यक्ति की उपयोगिता से स्वतंत्र है।
- हिक्स–कॉल्डोर का क्षतिपूरक सिद्धान्त भी नैतिक निर्णयों से मुक्त नहीं है।

- वितरण से स्वतंत्र उत्पादन में वृद्धि का कई अर्थ नहीं है।
- क्षतिपूरक मापदण्ड उत्पादन तथा उपभोग पर वाह्य प्रभावों की उपेक्षा की गयी है।

इकाई 04

बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन

इकाई की रुपरेखा–

4.1 भूमिका

4.2 वर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन व्याख्या

4.3 आलोचना

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

कल्याणकारी अर्थशास्त्र के संदर्भ में अनेक अर्थशास्त्रियों ने अपने–अपने दृष्टिकोण प्रतिपादित किए किन्तु इनके विचार अपर्याप्त तथा असंतोषजन रहे। परेटो का अधिकतम सामाजिक कल्याण अथवा परेटो अनुकूलतम तथा काल्डार–हिक्स का क्षतिपूरक दृष्टिकोण उपयोगिता के क्रमवाचक मापदण्ड पर आधारित मूल्यगत निर्णयों से स्वतंत्र है। वर्ग सन एवं सैमुएल्सन ने इनकी आलोचना करते हुए कहा कि मूल्यगत निर्णयों को शामिल किए बिना सामाजिक कल्याण फलन का कोई महत्व नहीं है फलतः उन्होंने मूल्यगत निर्णयों पर आधारित सामाजिक कल्याण फलन का प्रतिपादन किया।

प्रो0 वर्गसन ने अपने लेख A Retormulation of cartion aspect of welftare economics में मूल्यगत निर्णयों पर आधारित सामाजिक कल्याण फलन किया। मूल्यगत निर्णय किसी नीतिगत निर्णय में नीति निर्माता की सहायता करते है। सामाजिक कल्याण फलन समाज के विभिन्न व्यक्तियों की व्यक्तिगत उपयोगिता सूचकांक का योग होता है। वर्गसन मानते है कि सामाजिक कल्याण फलन का स्वरूप उस व्यक्ति अथवा संस्था के विवेक अथवा निर्णय पर निर्भर करेगा जिसे मूल्यगत निर्णय होने का अधिकार दिया गया है। वर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन निम्नवत् लिखा जा सकता है।

$w = w (u_1, u_2, u_3 ..... un)$

जहाँ w सामाजिक कल्याण फलन को अभिव्यक्त करता है जबकिu_1, u_2,u_3.....un विभिन्न व्यक्तियों की क्रमवाचक उपयोगिताओं को तथा wसामाजिक कल्याण फलन तथा विभिन्न उपयोगिता के मध्य फलनात्मक सम्बन्ध को दर्शाता है।

वर्गसन मानते है मूल्यगत निर्णय किसी निष्पक्ष व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा लिया जाना चाहिए जिसे वह हितैषी तानाशाह अथवा महापुरुष (मति–मानव) के रूप में कल्पित किया। सामाजिक कल्याण फलन में उत्पादन माता, वस्तु की प्रकृति व गुणधर्म तथा उपभोग व वितरण सम्बन्धी निर्णय महापुरुष द्वारा लिए जाते है जिसे समाज के सभी व्यक्तियों को स्वीकार करना पड़ता है। वर्गसन एवं सैमुएल्सन जानते है कि महापुरुष के सभी नीतिगत निर्णय, पस्पर संगत होना चाहिए जिसका आशय है कि यदि किसी परिस्थिति में वहA को B पर वरीयता प्रदान करता है तथा Bको C पर तो उसी परिस्थिति में उसके लिएA, C से अधिक वरीय (अधिमान वाला) होना चाहिए।

सामाजिक कल्याण फलन की विशेषताएँ

- वर्गसन एवं सैमुएल्सन का सामाजिक कल्याण फलन उपयोगिता के क्रमवाचक माप तथा अंतवैयक्तिक तुलना पर आधारित मूल्यगत निर्णयों से युक्त है।
- सामाजिक कल्याण फलन सभी प्रकार के मूल्यगत निर्णयों को शामिल करता है साथ ही मूल्यगत निर्णयों में संगतता का गुण भी पाया जाता है।
- सामाजिक कल्याण फलन में शामिल नैतिक मापदण्ड क्रमवाचक है न कि गणनवाचक माप कर आधारित।
- सामाजिक कल्याण फलन निर्धारित हो जाने के पश्चात् मूल्य/कीमत सिद्धान्त द्वारा साधनों का इस प्रकार आवण्टन किया जा सकता है जो सामाजिक कल्याण को अधिकम करे।

चित्र की सहायता से सामाजिक कल्याण फलन की व्याख्या

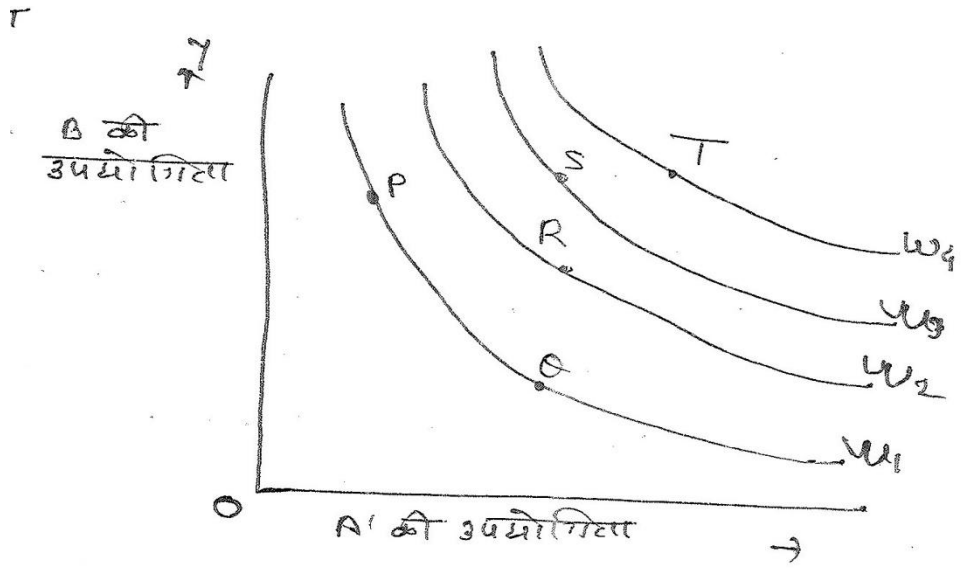

चित्र–1 में X अक्ष पर A व्यक्ति तथा Y अक्ष पर B की उपयोगिता को मापा गया है। यह मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि समाज में दो ही व्यक्ति है। W_1, W_2, W_3व W_4आदि A तथाB व्यक्तियों के लिए सामाजिक अधिमान वक्र है। सामाजिक अधिमान वक्र AतथाB के उपयोगिता के उन संयोगों को दर्शाता है जो समान सामाजिक कल्याण स्तर उत्पन्न करते है। ऊँचा सामाजिक अधिमान वक्र, ऊँचे सामाजिक कल्याण स्तर को दर्शाता है। चित्र से स्पष्ट है कि यदि कोई नीतिगत निर्णय जो अर्थव्यवस्था को बिन्दु Q सेR पर ले जाता है तो सामाजिक कल्याण में वृद्धि जबकि यदि अर्थव्यवस्था को S बिन्दु सेR पर लाता है तो सामाजिक कल्याण में कमी लायेगा। इसके विपरीत P से Q पर जाने पर सामाजिक कल्याण पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा अर्थात् पूर्ववत् रहेगा।

सामाजिक कल्याण का निर्धारण–अधिकता की अवस्था (वरदान का बिन्दु)

कल्याण सम्बन्धी परेटो अनुकूलम विश्लेषणा अद्वितीय परेटो अनुकूलम बिन्दु प्राप्त करने में असफल रहता है क्योंकि प्रसंविदा वक्र पर स्थित समस्त बिन्दु परेटो अनुकूलम होता है। परेटो की इस समस्या का समाधान वर्गसन ने अपने सामाजिक कल्याण फलन के

माध्यम से किया। इसके लिए बर्गसन ने 'उच्चतम तुष्टिगुण सम्भावना वक्र' का प्रयोग किया जिसका प्रत्येक बिन्दु परेटो अनुकूलतम बिन्दु होता है।

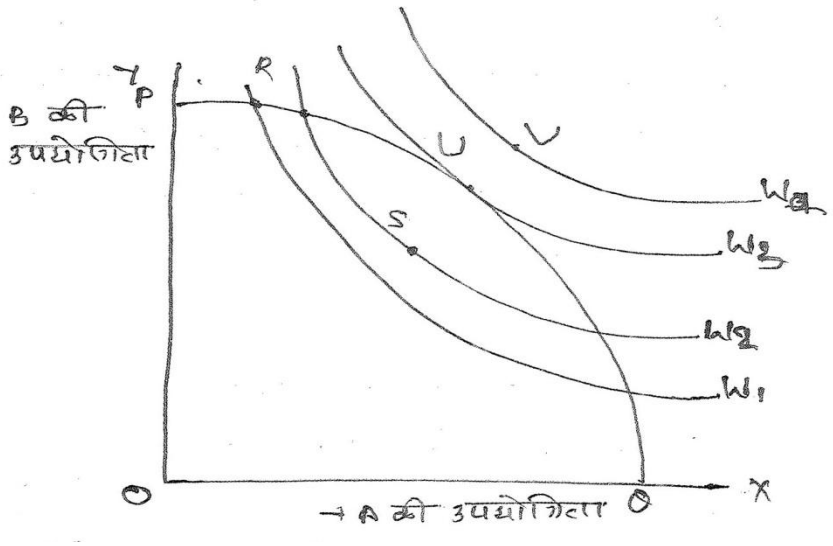

चित्र दो में PQ, A तथाB के लिए उच्चतम तुष्टिगुण सम्भवना वक्र' है जिसका प्रत्येक बिन्दु परेटो अनुकूलतम बिन्दु को प्रदर्शित करता है अतः इसे आर्थिक दृष्टि से कुशल बिन्दु भी कहा जाता है। इस प्रकार उच्चतम तुष्टिगत वक्र दो व्यक्तियों के उन तुष्टिगुण संयोगों का दर्शाता है जो साधनों की मात्रा, तकनीकि परिवर्तन व उपभोक्ता अधिमान दिए होने पर परेटो मापदण्ड से कुशल है। PQ रेखा के एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर जाने पर एक व्यक्ति को हीनतर जबकि दूसरे को श्रेष्ठतर बनाता है।

W_1, W_2, W_3दो W_4व्यक्तियों AतथाB के लिए सामाजिक कल्याण फलन है जो दोनों व्यक्तियों की उपयोगिता के उन संयोगों को दर्शाता है जो समान सामाजिक कल्याण को अभिव्यक्त करे। समाजिक कल्याण फलन का स्तर जितना ऊँचा होगा, सामाजिक कल्याण का स्तर उतना ही ज्यादा होगा।

चित्र से स्पष्ट है कि बिन्दु U अधिकतम सामाजिक कल्याण का बिन्दु है जिस पर सामाजिक कल्याण फलनW_3 तथा उच्चतर तुष्टिगुण सम्भावना वक्र APQ स्पर्श करते है। U बिन्दु दिए गये परेटो प्रतिबंध पर अधिकतम सामाजिक कल्याण बिन्दु है जिसे प्रतिबंधित अधिकतमContrained Bliss संतोष बिन्दु भी कहा जाता सकता है। PQ पर स्थितR बिन्दु अधिकतम कल्याण का बिन्दु नहीं होगा क्योंकि W_2पर स्थितS बिन्दु R से अधिक है

जबकिW_3 पर स्थित V बिन्दुU तथा दोनों से अधिक है। W_4पर स्थित V बिन्दु,U से अधिक कल्याण को दर्शाता है किन्तु इसे दिए गये परेटो शर्त PQ रेखा से प्राप्त नहीं किया जा सकता हे। अतःU बिन्दु एक मात्र अधिकतम सामाजिक कल्याण बिन्दुPoint of Bliss होगा।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

- प्रो0 मेहता के अनुसार मूल्यगत निर्णयकर्ता को पूर्णतः निष्पक्ष व स्वार्थहीन होना चाहिए जो आवश्यकता विहीनता की दशा में ही सम्भव है। चूंकि आवश्यकता विहीनता असम्भव है अतः पूर्णतः निष्पक्ष मापदण्ड पर आधारित कल्याण फलन का निर्धारण असम्भव है।
- प्रो0 ऐरो के अनुसार एक सामाजिक कल्याण फलन का निर्माण सम्भव हे। किन्तु इसका प्रत्येक व्यक्ति के अधिमानों पर आधारित होना असम्भव है।
- प्रो0 लिटिल के अनुसार प्रजातांत्रिक देशों में इसकी उपादेयता सीमित है क्योंकि इन देशों में जितने व्यक्ति होंगे उतनी ही संख्या में सामाजिक कल्याण फलन होंगे।
- सामाजिक कल्याण, उपयोगिता सम्बन्धी चरों के अतरिक्त अन्य चरों पर भी निर्भर करते है जैसे प्रदूषण स्तर, प्रजातांत्रिक मूल्य, लिंग व आर्थिक समानता इत्यादि।

उपर्युक्त आलोचना के बावजूद वर्गसन का समाजिक कल्याण फलन प्रथम उपागम था जिसने प्राचीन वे नवीन कल्याण सम्बन्धी विचारों को समाहित करते हुए परेटो मापदण्डों में सुधार किया। यदि मूल्यगत निर्णयों में निष्पक्षता का गुण शामिल हो जाए तो इसकी उपादेयता अत्यधिक बढ़ जायेगी।

शब्दावली

उपयोगिता की गणना वाचक माप, इसकी अवधारणा मार्शल ने दी। उनके अनुसार उपयोगिता को गणितीय इकाईयों जैसे–1,2,3,.....में मापा जा सकता है, इसे उपयोगिता का गणनावाचक दृष्टिकोण कहा गया।

उपयोगिता, किसी वस्तु अथवा सेवा में निहित वह गुण जो किसी व्यक्ति का एक अथवा अनेक आवश्यकता को पूरा करे, उपयोगिता कहलाता है।

अनधिमान वक्र, यह दो अथवा दो से अधिक वस्तुओं के उन संयोगों को दर्शाता है जिसके प्रत्येक बिन्दु पर किसी व्यक्ति को समान उपयोगिता प्राप्त होती है।

उत्पादन, आगतों के माध्यम से किसी वस्तु में उपयोगिता का सृजन, उत्पादन कहलाता है।

इकाई – 5

कल्याण का निर्धारण - अधिकता अवस्था - वरदान का बिंदु (Point of Bliss)

5.1 प्रस्तावना- कल्याण और "अधिकतम स्थिति बिंदु"

5.2 कल्याण का निर्धारण

5.3 "अधिकतम स्थिति बिंदुपर आनंद "

5.4 कल्याण निर्धारण और अधिकतम स्थिति बिंदु पर आनंद के बीच संबंध

5.5 निष्कर्ष

5.1 कल्याण और "अधिकतम स्थिति बिंदु"

प्रस्तावना

आर्थिक विज्ञान में, कल्याण और) पर आनंद "अधिकतम स्थिति बिंदु"Maximum Stage Point of Bliss) महत्वपूर्ण अवधारणाएं हैं। ये दोनों सिद्धांत समाज की भलाई, व्यक्तियों की खुशी, और संसाधनों के उपयोग की सीमा को समझने में सहायक हैं। इस निबंध में, हम कल्याण के निर्धारण की प्रक्रिया, "अधिकतम स्थिति बिंदुपर आनंद के सिद्धांत ", और इनके नीतिगत प्रभावों पर चर्चा करेंगे। इन अवधारणाओं की गहरी समझ से हम आर्थिक विकास और सामाजिक समृद्धि को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं और नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू कर सकते हैं।

5.2 कल्याण का निर्धारण

1. कल्याण की परिभाषा और ढांचे

कल्याण वह स्थिति है जिसमें समाज या व्यक्ति की भलाई और संतोष अधिकतम होता है। इसे आमतौर पर उपयोगिता सिद्धांत के माध्यम से समझा जाता है, जो यह बताता है कि विभिन्न वस्त्रों और सेवाओं का उपभोग कैसे व्यक्तियों और समाज की खुशी को प्रभावित करता है।

- **उपयोगिता सिद्धांत:** उपयोगिता सिद्धांत के अनुसार, कल्याण को व्यक्तियों की उपयोगिता के योग के रूप में मापा जाता है। उपयोगिता का मतलब है व्यक्तियों की खुशी और संतोष, जो उनके उपभोग के विकल्पों और प्राथमिकताओं के आधार पर मापा जाता है।
- **सामाजिक कल्याण फ़ंक्शन:** इसे विभिन्न सामाजिक कल्याण फ़ंक्शनों के माध्यम से मापा जाता है, जैसे कि:
    - **यूटिलिटेरियन दृष्टिकोण:** यह समाज की कुल उपयोगिता को अधिकतम करने की कोशिश करता है, ताकि कुल खुशी अधिकतम हो।
    - **समानतावादी दृष्टिकोण:** यह समाज में संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित करता है ताकि असमानताओं को कम किया जा सके।

- **रॉव्लियन दृष्टिकोण:** यह समाज के सबसे कमजोर वर्ग की भलाई को प्राथमिकता देता है, ताकि उनका कल्याण अधिकतम हो सके।

2. आर्थिक दक्षता और समानता

कल्याण का निर्धारण केवल आर्थिक दक्षता पर निर्भर नहीं करता, बल्कि समानता पर भी निर्भर करता है।

- **आर्थिक दक्षता:** यह तब प्राप्त होती है जब संसाधन इस तरीके से आवंटित किए जाते हैं कि समाज की कुल उत्पादन क्षमता और उपयोगिता अधिकतम होती है। Pareto दक्षता एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जहां कोई भी व्यक्ति किसी अन्य को खराब किए बिना बेहतर स्थिति में नहीं आ सकता।
- **समानता:** यह सुनिश्चित करता है कि संसाधनों का वितरण न्यायपूर्ण तरीके से किया जाए, जिससे सभी व्यक्तियों को बुनियादी जरूरतों और अवसरों तक समान पहुंच मिले। यह समाज के कुल कल्याण को बढ़ाता है और सामाजिक स्थिरता को सुनिश्चित करता है।

3. कल्याण की माप

- **सकल घरेलू उत्पाद)GDP):** यह अक्सर आर्थिक भलाई के माप के रूप में उपयोग किया जाता है, लेकिन यह वितरणात्मक पहलुओं और गैररकों को नहीं दर्शाता है।बाजार का-
- **मानव विकास सूचकांक)HDI):** यह स्वास्थ्य, शिक्षा, और जीवन की गुणवत्ता जैसे प्रमुख मानव विकास आयामों को मापता है, और समाज की समग्र भलाई को अधिक सटीक रूप से दर्शाता है।
- **खुशी और जीवन संतोष सर्वेक्षण:** ये सर्वेक्षण व्यक्तियों की खुशी और जीवन संतोष को सीधे मापते हैं, जो पारंपरिक आर्थिक संकेतकों से परे के पहलुओं को पकड़ते हैं।

5.3 "अधिकतम स्थिति बिंदुपर आनंद "

"अधिकतम स्थिति बिंदुपर आनंद एक सिद्धांतिक बिंदु को दर्शाता है जहां व्यक्ति या सम "ाज की भलाई अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है, और किसी भी अतिरिक्त उपभोग या संसाधन उपयोग से खुशी में कोई वृद्धि नहीं होती है।

1. सिद्धांतिक पृष्ठभूमि

- **उपयोगिता अधिकतमकरण:** उपयोगिता सिद्धांत के तहत, "अधिकतम स्थिति बिंदुपर " आनंद उस बिंदु को दर्शाता है जहां किसी व्यक्ति की उपयोगिता अधिकतम होती है। इस बिंदु के बाद, अतिरिक्त उपभोग या संसाधन उपयोग से उपयोगिता में वृद्धि नहीं होती, और कभीकभी यह नकारात्मक प्रभाव भी डाल सकता है।-
- **संतोष बिंदु:** इसे भी कहा जाता है "संतोष बिंदु", और यह दर्शाता है कि उपभोग का एक स्तर ऐसा होता है जिसके बाद अतिरिक्त इकाइयाँ भलाई को बढ़ा नहीं सकतीं। यह बिंदु उपभोक्ता संतोष की सीमाओं और सीमित रेशनलिटी को समझाने में सहायक है।

2. नीतिगत निहितार्थ

- **संसाधन आवंटन:** "अधिकतम स्थिति बिंदुपर आनंद की अवधारणा से नीतिकार अधिक " प्रभावी संसाधन आवंटन कर सकते हैं। यह मानते हुए कि किसी बिंदु के बाद अतिरिक्त संसाधन भलाई में महत्वपूर्ण सुधार नहीं करते, नीतियाँ इस बात पर ध्यान केंद्रित कर सकती हैं कि आदर्श परिणाम कैसे प्राप्त किया जाए।
- **सतत विकास:** यह अवधारणा सतत विकास के लिए महत्वपूर्ण है, जो यह दर्शाती है कि आर्थिक वृद्धि के साथध्यान में रखा साथ पर्यावरणीय और सामाजिक कारकों को भी- जाए। अधिकतम स्थिति बिंदु पर आनंद प्राप्त करने से यह संकेत मिलता है कि संसाधन उपयोग का एक संतुलित स्तर होना चाहिए जो दीर्घकालिक भलाई को बनाए रखे बिना संसाधनों को नष्ट किए।

3. आलोचनाएँ और सीमाएँ

- आनंद की व्यक्तित्व: अधिकतम स्थिति बिंदु पर आनंद की अवधारणा की आलोचना की जाती है क्योंकि यह व्यक्तिपरक होती है। विभिन्न व्यक्तियों और समाजों की प्राथमिकताएँ भिन्न होती हैं, जिससे यह चुनौतीपूर्ण होता है कि एक ऐसा बिंदु परिभाषित किया जाए जो सभी पर लागू हो।
- गतिक प्राथमिकताएँ: लोगों की प्राथमिकताएँ और ज़रूरतें समय के साथ बदलती रहती हैं, जिससे अधिकतम स्थिति बिंदु भी बदल सकता है। वास्तविक दुनिया के परिदृश्यों पर स्थैतिक आनंद के मॉडल को लागू करना जटिल हो सकता है।

5.4 कल्याण निर्धारण और अधिकतम स्थिति बिंदु पर आनंद के बीच संबंध

1. अवधारणाओं का एकीकरण

- **आदर्श कल्याण:** आदर्श कल्याण प्राप्त करने में संसाधन आवंटन को अधिकतम स्थिति बिंदु पर आनंद के साथ मेल करना शामिल है। जब अतिरिक्त संसाधन भलाई में महत्वपूर्ण सुधार नहीं करते हैं, तो नीतियाँ यह सुनिश्चित करने के लिए डिज़ाइन की जानी चाहिए कि समाज की भलाई अधिकतम हो।
- **आर्थिक नीतियाँ:** प्रभावी आर्थिक नीतियाँ कल्याण निर्धारण और आनंद के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए तैयार की जानी चाहिए। ऐसी नीतियाँ जो भलाई को बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करती हैं, उन्हें दक्षता और समानता के बीच संतुलन बनाए रखना चाहिए।

2. वास्तविक दुनिया के अनुप्रयोग

- **सामाजिक कार्यक्रम:** सामाजिक कार्यक्रमों और हस्तक्षेपों को डिज़ाइन करते समय, अधिकतम स्थिति बिंदु पर आनंद की अवधारणा पर विचार करना शामिल है। उदाहरण के लिए, शिक्षा, स्वास्थ्य, और सामाजिक सेवाओं को लक्षित करने वाले कार्यक्रमों को उनके प्रभावशीलता के आधार पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि वे आदर्श संतोष और उपयोगिता प्राप्त करने में कितने प्रभावी हैं।

- **पर्यावरणीय और संसाधन प्रबंधन:** आनंद की अवधारणा सतत संसाधन प्रबंधन प्रथाओं के लिए मार्गदर्शक हो सकती है। यह सुनिश्चित करना कि पर्यावरणीय नीतियाँ और संसाधन उपयोग उस बिंदु को पार न करें जहां अतिरिक्त उपभोग नकारात्मक प्रभाव डालता है, दीर्घकालिक भलाई बनाए रखने में सहायक है।

5.5 निष्कर्ष

कल्याण और पर आनंद आर्थिक विकास और सामाजिक भलाई को "अधिकतम स्थिति बिंदु" समझने में महत्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं। कल्याण निर्धारण समाज की खुशी को अधिकतम करने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है, जबकि पर आनंद उपभोग और "अधिकतम स्थिति बिंदु" संसाधन उपयोग के आदर्श बिंदु को दर्शाता है। इन अवधारणाओं को एकीकृत करके, नीतिगत निर्माण को आर्थिक दक्षता और समानता के बीच संतुलन बनाने, सतत विकास को बढ़ावा देने, और समग्र समाज के कल्याण को अधिकतम करने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत प्राप्त होते हैं। जबकि आनंद की अवधारणा व्यक्तिपरक हो सकती है, इसका अनुप्रयोग नीति निर्माण में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

इकाई- 6

सामाजिक कल्याण और सामाजिक न्याय एवं संपोषणीय विकास के प्रश्न

6.1 आर्थिक न्याय और सामाजिक न्याय को परिभाषित करना

6.2 आर्थिक न्याय को परिभाषित करना

6.3 भारत में सामाजिकआर्थिक विषमता-

6.4 निष्कर्ष

6.5 समावेशी विकास

6.6 समावेशी विकास हेतु सरकार द्वारा पहल

6.7 समावेशी विकास के समक्ष चुनौतियाँ

6.1 आर्थिक न्याय और सामाजिक न्याय को परिभाषित करना

न्याय की एक परिभाषा है "प्रत्येक को वह देना जो उसका हक है।" समस्या यह जानना है कि "क्या हक है"।

कार्यात्मक रूप से, "न्याय" सार्वभौमिक सिद्धांतों का एक समूह है जो लोगों को यह निर्णय लेने में मार्गदर्शन करता है कि क्या सही है और क्या गलत है, चाहे वे किसी भी संस्कृति और समाज में रहते हों। न्याय शास्त्रीय नैतिक दर्शन के चार "प्रमुख गुणों" में से एक है, साथ ही साहस, संयम (आत्म-नियंत्रण) और विवेक (दक्षता)। (विश्वास, आशा और दान को तीन "धार्मिक" गुण माना जाता है।) गुण या "अच्छी आदतें" व्यक्तियों को उनकी मानवीय क्षमताओं को पूरी तरह से विकसित करने में मदद करती हैं, इस प्रकार उन्हें अपने स्वयं के हितों की सेवा करने के साथ-साथ दूसरों के साथ उनके सामान्य हित के लिए सामंजस्य में काम करने में सक्षम बनाती हैं।

सभी सद्गुणों का अंतिम उद्देश्य मानव की गरिमा और संप्रभुता को बढ़ाना है।

न्याय और दान में अंतर

न्याय को अक्सर भ्रमित किया जाता है, लेकिन यह दान के गुण से अलग है। दान, लैटिन शब्द *कैरिटास* या "दिव्य प्रेम" से लिया गया है, जो न्याय की आत्मा है। न्याय दान के लिए भौतिक आधार प्रदान करता है।

जहाँ न्याय सामान्य, रोज़मर्रा के मानवीय संबंधों को निर्देशित करने के लिए पदार्थ और नियमों से संबंधित है, वहीं दान मानवीय संबंधों की भावना से संबंधित है और उन असाधारण मामलों से संबंधित है जहाँ नियमों का सख्त अनुप्रयोग उचित या पर्याप्त नहीं है। दान मुश्किल समय में सहायता प्रदान करता है। दान हमें ज़रूरतमंद व्यक्ति की पीड़ा को दूर करने के लिए देने के लिए

बाध्य करता है। दान का सर्वोच्च उद्देश्य न्याय के सर्वोच्च उद्देश्य के समान ही है: प्रत्येक व्यक्ति को उस स्तर तक ऊपर उठाना जहाँ उसे दान की आवश्यकता न हो बल्कि वह स्वयं दानशील बन सके।

सच्चे दान में बिना किसी बदले की उम्मीद के देना शामिल है। लेकिन यह न्याय का विकल्प नहीं है।

सामाजिक न्याय को परिभाषित करना

सामाजिक न्याय में आर्थिक न्याय शामिल है। सामाजिक न्याय वह गुण है जो हमें उन संगठित मानवीय अंतर्क्रियाओं को बनाने में मार्गदर्शन करता है जिन्हें हम संस्थाएँ कहते हैं। बदले में, सामाजिक संस्थाएँ, जब न्यायोचित रूप से संगठित होती हैं, तो हमें व्यक्तिगत रूप से और दूसरों के साथ हमारे संबंधों में व्यक्ति के लिए जो अच्छा है, उस तक पहुँच प्रदान करती हैं। सामाजिक न्याय हम में से प्रत्येक पर दूसरों के साथ सहयोग करने की व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी भी डालता है, चाहे हम "सामान्य भलाई" के किसी भी स्तर पर भाग लें, व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए अपने संस्थानों को डिज़ाइन और निरंतर परिपूर्ण करें।

6.2 आर्थिक न्याय को परिभाषित करना

आर्थिक न्याय, जो व्यक्ति के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था को भी प्रभावित करता है, उन नैतिक सिद्धांतों को समाहित करता है जो हमें अपनी आर्थिक संस्थाओं को डिजाइन करने में मार्गदर्शन करते हैं। ये संस्थाएँ निर्धारित करती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति किस तरह जीविकोपार्जन करता है, अनुबंध करता है, दूसरों के साथ वस्तुओं और सेवाओं का आदान-प्रदान करता है और अन्यथा अपने आर्थिक निर्वाह के लिए एक स्वतंत्र भौतिक आधार तैयार करता है। आर्थिक न्याय का अंतिम उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को अर्थशास्त्र से परे असीमित कार्य, मन और आत्मा में रचनात्मक रूप से संलग्न होने के लिए स्वतंत्र करना है।

आर्थिक न्याय के तीन सिद्धांत

हर व्यवस्था की तरह, आर्थिक न्याय में इनपुट, आउट-टेक और फीडबैक शामिल होता है, ताकि इनपुट और आउट-टेक के बीच सामंजस्य या संतुलन बहाल किया जा सके। लुइस केल्सो और मोर्टिमर एडलर द्वारा परिभाषित आर्थिक न्याय की व्यवस्था में, तीन आवश्यक और परस्पर निर्भर सिद्धांत हैं: **सहभागी न्याय** (इनपुट सिद्धांत), **वितरणात्मक न्याय** (आउट-टेक सिद्धांत), और **सामाजिक न्याय** (फीडबैक और सुधारात्मक सिद्धांत)। तीन पैरों वाले स्टूल के पैरों की तरह, अगर इनमें से कोई भी सिद्धांत कमज़ोर या गायब है, तो आर्थिक न्याय की व्यवस्था ध्वस्त हो जाएगी।

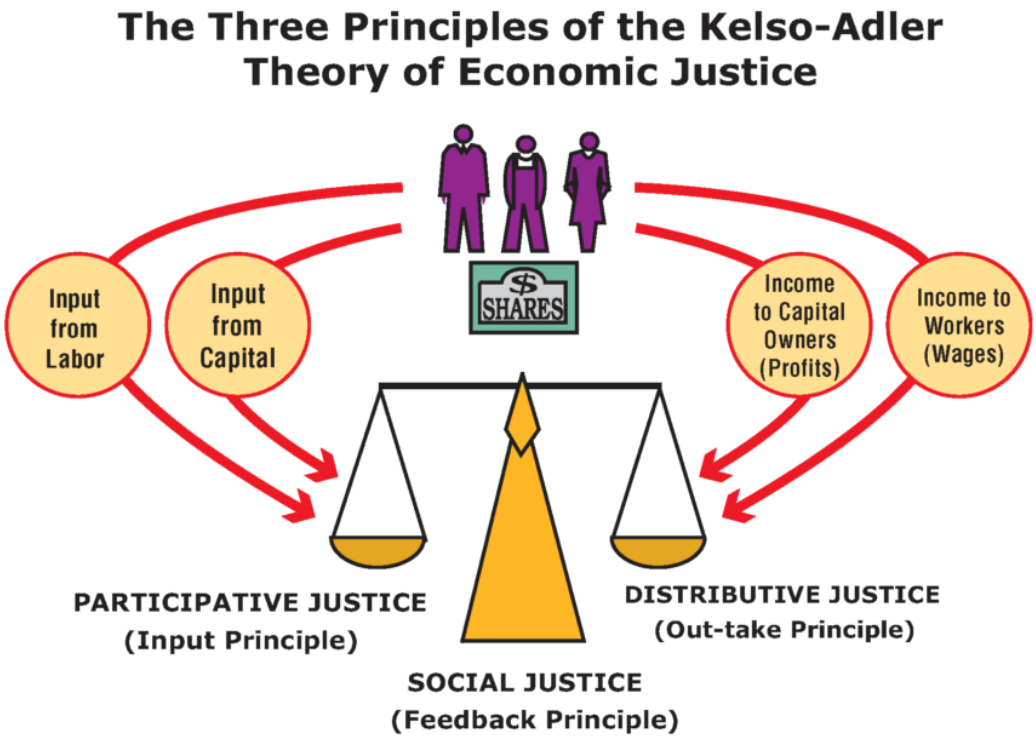

सहभागी न्याय

"सहभागी न्याय" बताता है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए आर्थिक प्रक्रिया में किस तरह से "इनपुट" देता है। इसके लिए उत्पादक परिसंपत्तियों में निजी संपत्ति अर्जित करने के साधनों (हमारे धन और ऋण प्रणाली जैसे सामाजिक संस्थानों के माध्यम से) तक समान पहुंच की आवश्यकता होती है, साथ ही उत्पादक कार्य में संलग्न होने के समान अवसर की भी आवश्यकता होती है।

भागीदारी का सिद्धांत समान परिणामों की गारंटी नहीं देता है। हालाँकि, इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को विपणन योग्य वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में भाग लेने/योगदान करने का समान मानव अधिकार हो - अपने श्रम (एक श्रमिक के रूप में) और/या अपनी उत्पादक पूंजी (एक मालिक के रूप में) के माध्यम से। इस प्रकार, यह सिद्धांत प्रत्येक व्यक्ति की पूर्ण भागीदारी और आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए एकाधिकार, विशेष विशेषाधिकार और अन्य बहिष्कृत सामाजिक बाधाओं को अस्वीकार करता है।

वितरात्मक न्याय

"वितरण न्याय" प्रत्येक व्यक्ति के श्रम और पूंजी इनपुट से मेल खाने वाली आर्थिक प्रणाली के "आउटपुट" या "आउट-टेक" अधिकारों को परिभाषित करता है। एक मुक्त और खुले बाजार के भीतर निजी संपत्ति की वितरण सुविधाओं के माध्यम से, वितरण न्याय स्वचालित रूप से

सहभागी न्याय से जुड़ जाता है, और आय उत्पादक योगदान से जुड़ जाती है। वितरण न्याय के सिद्धांत में संपत्ति और अनुबंधों की पवित्रता शामिल है। यह उचित मूल्य, उचित मजदूरी और उचित लाभ निर्धारित करने के लिए सबसे वस्तुनिष्ठ और लोकतांत्रिक साधन के रूप में सरकार की बजाय मुक्त और खुले बाजार की ओर मुड़ता है।

कई लोग न्याय के वितरण सिद्धांतों को दान के सिद्धांतों से भ्रमित करते हैं। दान में "प्रत्येक को उसकी ज़रूरतों के अनुसार" की अवधारणा शामिल है, जबकि "वितरण न्याय" "प्रत्येक को उसके योगदान के अनुसार" के विचार पर आधारित है। इन सिद्धांतों को भ्रमित करने से अंतहीन संघर्ष और कमी होती है, जिससे सरकार को सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए अत्यधिक हस्तक्षेप करने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

वितरणात्मक न्याय, भागीदारीपूर्ण न्याय का अनुसरण करता है और तब टूट जाता है जब सभी व्यक्तियों को आय-उत्पादक संपत्ति अर्जित करने और उसके फलों का आनंद लेने का समान अवसर नहीं दिया जाता।

सामाजिक न्याय

"सामाजिक न्याय" वह "प्रतिक्रिया और सुधारात्मक" सिद्धांत है जो इनपुट और/या आउट-टेक सिद्धांतों की विकृतियों का पता लगाता है और सभी के लिए न्यायपूर्ण और संतुलित आर्थिक व्यवस्था को बहाल करने के लिए आवश्यक सुधारों का मार्गदर्शन करता है। इस सिद्धांत का उल्लंघन भागीदारी में अन्यायपूर्ण बाधाओं, एकाधिकार द्वारा या कुछ लोगों द्वारा अपनी संपत्ति का उपयोग दूसरों को नुकसान पहुँचाने या उनका शोषण करने के लिए किया जाता है।

आर्थिक सामंजस्य तब बनता है जब किसी व्यवस्था या संस्था के भीतर प्रत्येक व्यक्ति के लिए भागीदारी और वितरणात्मक न्याय पूरी तरह से संचालित हो रहा हो। *ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी ने* "आर्थिक सामंजस्य" को "सामाजिक समायोजन के नियमों" के रूप में परिभाषित किया है, जिसके तहत एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के स्वार्थ को अगर स्वतंत्र रूप से खेलने दिया जाए, तो इससे अन्य व्यक्तियों और पूरे समुदाय को अधिकतम लाभ मिलने वाले परिणाम मिलेंगे।" सामाजिक न्याय एकाधिकार को नियंत्रित करने, सामाजिक संस्थाओं के भीतर नियंत्रण और संतुलन बनाने और वितरण (आउट-टेक) को भागीदारी (इनपुट) के साथ फिर से समन्वयित करने के लिए दिशानिर्देश प्रदान करता है। आर्थिक न्याय के पहले दो सिद्धांत सामान्य रूप से न्याय के लिए शाश्वत मानवीय खोज से निकलते हैं, जिसके लिए इनपुट और आउट-टेक के बीच संतुलन की आवश्यकता होती है, *यानी*, "प्रत्येक को उसके अनुसार मिलना चाहिए।" दूसरी ओर, सामाजिक न्याय सत्य, प्रेम और सौंदर्य जैसे अन्य सार्वभौमिक मूल्यों के लिए मानवीय प्रयास को दर्शाता है। यह लोगों को यह देखने के लिए मजबूर करता है कि क्या *है*, क्या *होना चाहिए*, और प्रत्येक व्यक्ति की भलाई के लिए अपनी प्रणालियों की निरंतर मरम्मत और सुधार करें।

संदर्भ

निस्संदेह भारत एक अत्यधिक विषमतापूर्ण अर्थव्यवस्था है। भारत का घरेलू सर्वेक्षण उपभोग, आय और धन को व्यापक रूप से कम करके दिखाने की प्रवृत्ति रखते हैं।

इसके साथ ही इस अनुमान पर संदेह कर सकना कठिन है कि कोविड-19 ने विद्यमान दोषों को और गहरा कर दिया है, जिससे गहन रूप से व्याप्त असमानताओं में और वृद्धि हो रही है।

इस अवधि के दौरान अत्यंत अमीर लोगों की संपत्ति में हुई वृद्धि की तुलना पैदल ही अपने गाँव लौटने को विवश उन लाखों प्रवासी श्रमिकों की विपदा के साथ करें तो देश में आर्थिक विषमताओं की चरम स्थिति स्पष्ट नज़र आ जाती है।

इस संदर्भ में, **विश्व असमानता रिपोर्ट (2022)** का नवीनतम संस्करण एक उपयोगी अनुस्मारक के रूप में कार्य करता है और यह दर्शाता है कि आय की एकाग्रता पिरामिड के शीर्ष पर हो रही है।

6.3 भारत में सामाजिक:आर्थिक विषमता-

- **असमानता के क्षेत्र:** सामान्यतः समग्र रूप से भारत में असमानता की चर्चा उपभोग, आय और धन के मामले में असमानताओं के इर्द गिर्द-केंद्रित होने की प्रवृत्ति रखती है।
    - किंतु देश में 'अवसरों' के मामलों में भी उच्च स्तर की असमानता विद्यमान है।
- **अवसरों में असमानता को प्रभावित करने वाले कारक:** किसी व्यक्ति की उत्पत्ति का वर्ग, उसके जन्म का घर, उसके मातापिता कौन- हैंये सभी विषय उसकी शैक्षि -क उपलब्धि, रोज़गार और आय की संभावनाओं पर उल्लेखनीय प्रभाव डालते हैं और इसके परिणामस्वरूप उसके गंतव्यउपलब्धि का/ वर्ग तय करते हैं।
    - पीढ़ीपीढ़ी सामाजिक गतिशीलता के निम्न-दर- स्तर पर स्थित कमज़ोरवंचित / परिवारों में पैदा होने वाले बच्चों के लिये आय की सीढ़ी पर आगे बढ़ने की संभावना कम होती है।

विश्व असमानता रिपोर्ट के भारत संबंधित विशिष्ट निष्कर्ष:

- रिपोर्ट के अनुसार, भारत अब दुनिया के सर्वाधिक विषमतापूर्ण देशों में से एक है।
- भारत में शीर्ष 10% आबादी राष्ट्रीय आय का 57% अर्जित करती है।
- शीर्ष 10% के अंदर शीर्षस्थ 1% अभिजात वर्ग 22% आय अर्जित करता है।
- इसकी तुलना में राष्ट्रीय आय में निचले स्तर के 50% की हिस्सेदारी घटकर मात्र 13% रह गई है।
- भारत में महिला श्रमिकों की आय में हिस्सेदारी 18% है जो एशिया में उनके औसत से पर्याप्त कम है]21% चीन को छोड़कर।[
- **कोविड-19 महामारी का प्रभाव:** कोविड ने शिक्षा में व्याप्त असमानता की स्थिति को और बदतर किया है एवं श्रम बाज़ार पर नकारात्मक दीर्घकालिक प्रभाव डाला है और आय असमानता में वृद्धि की है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक गतिशीलता के अवरुद्ध होने की संभावना है।

- **शिक्षा पर प्रभाव:** ASER 2021 ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि लंबे समय तक स्कूलों के बंद रहने और शिक्षा के ऑनलाइन मोड की ओर संक्रमण ने गरीब और अमीर परिवारों के बच्चों के बीच 'लर्निंग' अंतराल में वृद्धि की है।
    - निम्नआय परिवारों के छोटे बच्चे स्मार्टफोन-, टैबलेट, इंटरनेट जैसे लर्निंग करने के तकनीकी माध्यमों से अधिक वंचित हुए।
    - इसके अलावा स्मार्टफोन उपलब्धता वाले परिवारों में भी एकचौथाई से अधिक - बच्चे इसके उपयोग से वंचित रहे।
- **रोज़गार पर प्रभाव:** महामारी की शुरुआत से ही भारत में श्रम बल की भागीदारी में गिरावट आई है, विशेष रूप से महिला श्रमबल के बीच यह गिरावट दर्ज की गई।
    - इसी अवधि में बेरोज़गारी दर 7.5% से बढ़कर 8.6% हो गई, जिसका अर्थ यह है कि नौकरी की तलाश करने वालों लोगों में से नौकरी पाने में असमर्थ रहे यहाँ) लोगों की (तक कि संभवतः कम वेतन पर भी संख्या में वृद्धि हुई।
    - जिन लोगों के पास नौकरी है, उनमें से भी अधिकाधिक अनियमित आकस्मिक/ वेतनभोगी श्रमिक के रूप में नियोजित किये जा रहे हैं।
    - कार्यबल के बढ़ते 'कैज़ुअलाइज़ेशन' (casualization) या 'कॉन्ट्रैक्टुअलाइज़ेशन'/संविदाकरण (contractualisation) का अर्थ है अच्छे भुगतान वाली नौकरियों का अभाव।

आगे की राह

- **नॉर्डिक इकोनॉमिक मॉडल:** धन के वर्तमान पुनर्वितरण को अधिक न्यायसंगत बनाने के लिये वर्तमान नव उदारवादी मॉडल को-'नॉर्डिक इकोनॉमिक मॉडल' (Nordic Economic Model) द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है।
    - इस मॉडल में सभी के लिये प्रभावी कल्याणकारी सुरक्षा, भ्रष्टाचार मुक्त शासन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा का मौलिक अधिकार, अमीरों के लिये उच्च कराधान आदि शामिल हैं।
- **राजनीतिक सशक्तीकरण:** यह निर्धनता उन्मूलन का पहला प्रमुख घटक है। राजनीतिक सक्षमता वाले लोग बेहतर शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा की माँग कर सकेंगे और इसे प्राप्त कर सकेंगे।
    - यह समाज में व्याप्त संरचनात्मक असमानता और सांप्रदायिक विभाजन को भी मिटाएगा।
- **धन का पुनर्वितरण:** विश्व असमानता रिपोर्ट, 2022 अरबपतियों पर एक उपयुक्त / प्रगतिशील संपत्ति कर)Progressive Wealth Tax) अधिरोपित करने का सुझाव देती है।
    - बड़ी मात्रा में धन संकेंद्रण को देखते हुए प्रगतिशील कर सरकारों के लिये उल्लेखनीय मात्रा में राजस्व उत्पन्न कर सकते हैं।
    - 1 मिलियन डॉलर से अधिक की संपत्ति के लिये 1.2% की वैश्विक प्रभावी संपत्ति कर दर वैश्विक आय का 2.1% राजस्व उत्पन्न कर सकती है।
- **बुनियादी आवश्यकताओं की पहुँच बढ़ाना:** भारत में बढ़ती असमानता को देखते हुए स्पष्ट सार्वजनिक नीतियाँ लानी चाहिये। जनसंख्या के बीच स्वास्थ्य और शिक्षा का अधिकाधिक व्यापक प्रसार करने की आवश्यकता है।

- सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा लाभ, रोज़गार गारंटी योजनाओं जैसी सार्वजनिक वित्तपोषित उच्च गुणवत्तायुक्त सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित कर असमानता को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

- **रोज़गार सृजन:** कपड़ा, वस्त्र, ऑटोमोबाइल, उपभोक्ता सामान जैसे विनिर्माण क्षेत्रों के विकास में व्याप्त बाधाएँ बढ़ती असमानताओं का एक महत्त्वपूर्ण कारण हैं।
  - श्रमविनिर्माण क्षेत्र में उन लाखों लोगों को समाहित करने की प्रधान- क्षमता है, जो खेती छोड़ रहे हैं जबकि सेवा क्षेत्र शहरी मध्यम वर्ग को लाभान्वित कर सकता है।
- **वेतन असमानताओं को कम करना:** अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन)ILO) ने अनुशंसा की है कि एक न्यूनतम वेतन सीमा इस तरह से निर्धारित की जानी चाहिये जो व्यापक आर्थिक कारकों के साथ श्रमिकों और उनके परिवारों की आवश्यकताओं को संतुलित करे।
- **नागरिक समाज को बढ़ावा देना:** पारंपरिक रूप से उत्पीड़ित और दमित समूहों को अधिकाधिक अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करना जहाँ इन समूहों के भीतर यूनियन और संघ जैसे नागरिक समाज समूहों को सक्षम करना शामिल है।
  - अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को उद्यमी बनने के लिये प्रेरित किया जाना चाहिये; स्टैंड अप इंडिया जैसी योजनाओं का वित्तपोषण बढ़ाकर इसकी पहुँच को व्यापक करने की आवश्यकता है।
- **लैंगिक समानता को आत्मसात करना:** अर्थव्यवस्था में महिलाओं के पूर्ण समावेशन हेतु बाधाओं को दूर करने की आवश्यकता है। इसमें श्रम बाज़ार, संपत्ति के अधिकार और लक्षित ऋण एवं निवेश तक पहुँच प्रदान करना शामिल है।
  - अधिकाधिक महिलाओं को उद्यमी बनने के लिये प्रोत्साहित करने से दीर्घकालिक समाधान प्राप्त होगा।
  - रोज़गार सृजन और स्वास्थ्य एवं शिक्षा में निवेश को बढ़ावा देकर महिलाओं में उद्यमिता की वृद्धि भारत की अर्थव्यवस्था और समाज को रूपांतरित कर सकती है।

6.4 निष्कर्ष

- यह स्पष्ट है कि कोविड-19 महामारी ने समाज के कमज़ोर वर्ग को विशेष रूप से रोज़गार और शिक्षा के मामले में अधिक गंभीर रूप से प्रभावित किया है। सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों के साथसाथ इन- वर्गों को शिक्षित और नियोजित करने के लिये सक्षम परिस्थितियों को सुनिश्चित करने हेतु उन्हें श्रम बाज़ार में एकसमान अवसर प्रदान करने हेतु ठोस प्रयासों की आवश्यकता है।
- इसके अलावा अत्यधिक अमीर लोगों पर धन कर के अधिरोपण और एक सुदृढ़ पुनर्वितरण व्यवस्था से बढ़ती असमानता की मौजूदा प्रवृत्ति को अगर व्युत्क्रमित नहीं किया जा सकता, तो इस पर रोक तो अवश्य लगाया जा सकता है।

6.5 समावेशी विकास

भारतीय संदर्भ में समावेशी विकास की अवधारणा कोई नई बात नहीं है। प्राचीन धर्मग्रंथों का अवलोकन करे तो उनमें भी सब लोगों को साथ लेकर चलने का भाव निहित है। 'सर्वे भवन्तु सुखिन' में इसी बात की पुष्टि की गई है। नब्बे के दशक में उदारीकरण के बाद विकास की यह अवधारणा नए रूप में उभरी क्योंकि उदारीकरण के दौरान वैश्विक

अर्थव्यवस्थाओं को एक साथ जुड़ने का मौका मिला तथा यह धारणा देश एवं राज्यों की परिधि से बाहर निकलकर वैश्विक संदर्भ में अपनी महत्ता बनाए रखने में सफल रही।

समावेशी विकास से आशय

समावेशी विकास के अर्थ को समझने के लिये इसे विभिन्न संदर्भों में देखे जाने की आवश्यकता है, जैसे-

- समावेशी विकास का अर्थ ऐसे विकास से लिया जाता है जिसमें रोज़गार के अवसर पैदा हों तथा जो गरीबी को कम करने में मददगार साबित हो।
- इसमें अवसर की समानता प्रदान करना तथा शिक्षा व कौशल के लिये लोगों को सशक्त करना शामिल है, अर्थात् अवसरों की समानता के साथ विकास को बढ़ावा देना।
- दूसरे शब्दों में ऐसा विकास जो न केवल नए आर्थिक अवसरों को पैदा करे, बल्कि समाज के सभी वर्गो के लिये सृजित ऐसे अवसरों तक समान पहुँच को भी सुनिश्चित करे।
- वस्तुनिष्ट दृष्टि से समावेशी विकास उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ सकल घरेलू उत्पाद उच्च संवृद्धि दर के साथ प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद की उच्च संवृद्धि दर परिलक्षित होती है जिसमें आय एवं धन के वितरण के बीच असमानता में कमी आती है।
- समावेशी विकास का बल जनसंख्या के सभी वर्गों के लिये बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराने पर होता है, अर्थात् आवास, भोजन, पेयजल, शिक्षा, स्वास्थ के साथसाथ एक - गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिये आजीविका के साधनों को उत्पन्न करना। इन सब के साथ समावेशी विकास के लिये पर्यावरण संरक्षण का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है क्योंकि पर्यावरण की कीमत पर किये गए विकास को न तो टिकाऊ कहा जा सकता है तथा न ही समावेशी।

6.6 समावेशी विकास हेतु सरकार द्वारा पहल:

- समावेशी विकास की अवधारणा सर्वप्रथम 11वीं पंचवर्षीय योजना में प्रस्तुत की गई। इस योजना में समाज के सभी वर्गों के लोगों के जीवन की गुणवत्ता सुधारने और उन्हें अवसरों की समानता उपलब्ध कराने की बात कही गई ।
- 12वीं पंचवर्षीय योजना वर्ष)2012-17) पूरी तरह से समावेशी विकास पर केंद्रित थी तथा इसकी थीम **'तीव्र, समावेशी एवं सतत् विकास'** थी । इस योजना में गरीबी, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा आजीविका के अवसर प्रदान करने पर विशेष ज़ोर दिया गया ताकि योजना में निर्धारित 8 प्रतिशत की विकास दर को हासिल किया जा सके।

- सरकार द्वारा समावेशी विकास की स्थिति प्राप्त करने के लिये कई योजनाओं की शुरुआत की गई । इनमें शामिल है- दीनदयाल अंत्योदय योजना, समेकित बाल विकास कार्यक्रम, मिडडे मील-, मनरेगा, सर्व शिक्षा अभियान इत्यादि।
- वित्तयी समावेशन के लिये सरकार द्वारा कई पहलों की शुरुआत की गई है। इनमें मोबाइल बैंकिंग, प्रधानमंत्री जन धन योजना, प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, वरिष्ठ पेंशन बीमा इत्यादि महत्त्वपूर्ण योजनाओं को शामिल किया गया है ।
- महिलाओं को मद्देनज़र रखते हुए सरकार द्वारा स्टार्टअप इंडिया-, सपोर्ट टू ट्रेनिंग एंड एम्प्लॉयमेंट प्रोग्राम फॉर वीमेन जैसी योजनाओं की शुरुआत की गई है। इसके अलावा महिला उद्यमिता मंच तथा प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना जैसे प्रयास भी महिलाओं के लिये किये गए वित्तीय समावेशन के प्रयासों में शामिल हैं ।
- किसानों एवं कृषि कार्य हेतु वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिये सरकार द्वारा मृदा स्वास्थ्य कार्ड, नीम कोटेड यूरिया, प्रधानमंत्री कृषि सिचाई, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन जैसी महत्त्वपूर्ण योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है।
- दिव्यागजनों को समावेशी विकास में शामिल करने के लिये सरकार द्वारा निःशक्तता अधिनियम 1995, कल्याणार्थ राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1999, सिपडा, सुगम्य भारत अभियान, स्वावलंबन योजना तथा इसके अलावा दिव्यांगजन अधिकार नियम, 2017 जैसे कदम उठाए गए हैं।

समावेशी विकास का मापन:

- समावेशी विकास को मापने का सबसे बेहतर तरीका है, राष्ट्र की प्रगति को उसके सबसे गरीब हिस्से की प्रगति के आधार पर मापा जाए अर्थात् जनसंख्या के सबसे निचले 20 प्रतिशत हिस्से की प्रगति के आधार पर प्रति व्यक्ति आय को मापना।
- यदि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर्ज होती है तो यह स्वस्थ समावेशी विकास का सूचक है।
- समावेशी विकास की अवधारणा इस बात पर निर्भर करती है कि यदि उच्च विकास दर को हासिल करना है तो समाज के सबसे कमज़ोर वर्ग को भी विकास की गति में शामिल करना होगा।

समावेशी विकास की आवश्यकता:

समावेशी विकास न केवल आर्थिक विकास है बल्कि यह एक सामाजिक एवं नैतिक अनिवार्यता भी है। समावेशी विकास के अभाव में कोई भी देश अपना विकास नहीं कर सकता है। निम्नलिखित संदर्भों में हम समावेशी विकास की महत्ता को समझ सकते हैं-

- समावेशी विकास, धारणीय विकास के लिये आवश्यक है यदि विकास धारणीय नहीं होगा तो अर्थव्यवस्था में गिरावट की स्थिति उत्पन्न होगी।
- समावेशी विकास न होने पर आय वितरण में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होगी जिससे धन का संकेंद्रण कुछ ही लोगों के पास होगा, परिणामस्वरूप मांग में कमी आएगी तथा GDP वृद्धि दर में भी कमी होगी।
- एकसमान समावेशी विकास न हो पाने के कारण देश के विभिन्न हिस्सों में विषमता में वृद्धि होती है जिससे वंचित वर्ग विकास की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाते है।

- समावेशी विकास के अभाव के चलते कभीकभी- देश में असंतोष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है परिणामस्वरूप देश की भौगोलिक सीमा में सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद जैसी विघटनकारी प्रवृत्तियों का जन्म होता है।

6.7 समावेशी विकास के समक्ष चुनौतियाँ:

- गॉव में बुनियादी सविधाएँ न होने के कारण गाँव से लोग शहरों की तरफ पलायन करते हैं। इसके चलते शहरों में जनसंख्या का दवाब बढ़ता है।
- शहरी क्षेत्रों की तरफ पलायन से कृषि अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है जिससे कृषि उत्पादकता में कमी दर्ज की जा रह है।
- भ्रष्टाचार भी देश की अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डालता है जो समावेशी विकास की गति में बाधा उत्पन्न करता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी स्थायी एवं दीर्घकालीन रोज़गार साधनों की ज़रूरत है क्योंकि मनरेगा एवं अन्य कई रोज़गारपरक योजनाओं का क्रियान्वयन ग्रामीण क्षेत्रों में किया तो जा रहा है परंतु इन्हें रोज़गार के स्थायी साधनों में शामिल नहीं किया जा सकता है।

आगे की राह:

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 2030 तक गरीबी के सभी रूपों (बेरोज़गारी, निम्न आय, गरीबी इत्यादि) को समाप्त करने का लक्ष्य सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल के लक्ष्य-1 में निर्दिष्ट किया गया हैI चूँकी कृषि क्षेत्र देश में कुल श्रम बल के आधे श्रम बल को रोज़गार उपलब्ध कराता है। इसके अलावा सरकार द्वारा भी वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने का लक्ष्य रखा गया है परंतु इस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति उत्पादकता काफी कम है जिसके कारण यह गरीबी के सबसे उच्चतम क्षेत्र से जुड़ी है। अत: यदि भारत में तीव्र समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो कृषि क्षेत्र पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत होगीI हालाँकि 1.21 बिलियन जनसंख्या वाले देश में सबसे बड़ी चुनौती यह है कि विकास के लाभ को समाज के सभी वर्गों और सभी हिस्सों तक कैसे पहुँचाया जाए तथा यहीं पर तकनीक के उपयुक्त इस्तेमाल की भूमिका सामने आती है। हाल हीं में शुरू किया गया डिजिटल इंडिया कार्यक्रम इस चुनौती का सामना करने के लिये एक अच्छी पहल है।